नागरिक शास्त्र

व

भारत शासन पद्धति

मिहिर कुमार सेन, एम० ए०

अध्यापक नागरिक शास्त्र व अर्थनीति, विद्यासागर कालेज,

अध्यापक राष्ट्र विज्ञान व अर्थनीति,

कलकत्ता विश्वविद्यालय

प्रथम संस्करण

हिन्दुस्थान पब्लिकेशन लिमिटेड

५० डेक प्लेस कलकत्ता।

संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम्,

देवाभागं यथापूर्वे संजानाना उपासते ।

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषां:,

समानं मन्त्र माभि मन्त्रयेवः समानेन वो हविष जुहोमि ।

समाना व आकूति समाना हृदयानि वः

समान मस्तु वो मनो यथावः सुसहासति

—ऋग्वेद

यूनाइटेड कमर्शियल प्रेस लि०, ३२, सर हरिराम गोयनका स्ट्रीट, कलकत्ता में
परमानन्द पोद्दार द्वारा मुद्रित ।

भूमिका

नागरिक-शास्त्र विश्व के नागरिकों के लिये अत्यन्त महत्व का विषय है। संसार के सभी देशों में इसकी शिक्षा पर अधिकाधिक ध्यान दिया जा रहा है। विश्व का भविष्य-स्वरूप उसके वर्तमान नागरिकों की निर्माण-भावना पर अवलंबित है।

एशिया और योरोप में स्वतन्त्रता और गणतंत्र के लिये अविराम संघर्ष अभी तक पूर्ण रूपेण सफल नहीं हो सका है। नागरिकों के सम्मुख नई-नई समस्यायें, उपस्थित हो रही हैं, इन पर बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय करना आवश्यक है। सभी देशों की नागरिकता का यह परीक्षण-काल है। संसार फिर एक बार अनिश्चित स्थिति में पहुंच गया है। हमारा-भविष्य हमारी आज की शासन-प्रणाली पर निर्भर करता है।

नागरिक-शास्त्र की यह पुस्तक नागरिकता के प्रारंभिक भारतीय विद्यार्थियों के लिये है। यह कलकत्ता विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के आधार पर लिखी गई है। इसे नागपुर विश्वविद्यालय के पाठ्य-क्रम में भी स्थान मिला है। परन्तु आशा की जाती है कि यह अन्य भारतीय विश्व-विद्यालयों की आवश्यकता पूरी कर सकेगी, इसके अंग्रेजी सस्करण को बंगाल, आसाम, बिहार, संयुक्त प्रदेश, मध्य-भारत तथा भारत के अन्य भागों के विद्यार्थियों में जो प्रमुखता मिली है उसे देखते हुए मैं इसके राष्ट्रभाषा हिन्दी-संस्करण के लिये प्रोत्साहित हुआ हूँ।

इसमें भारतीय विधान-सभा द्वारा यथा-अंगीकृत विधान का सम्यक् अध्ययन किया गया हैं तथा इसके अनुसार भारतीय-शासन के नवीनतम स्वरूप के दिग्दर्शन का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक के मुद्रण-कार्य के लिये मैं युनाइटेड कमर्शियल प्रेस लि० और इसके डाइरेक्टर श्री परमानन्दजी पोद्दार को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

कलकत्ता -
मिति श्रावण सुदी ७ सं० २००६ वि०

निवेदक—
मिहिर कुमार सेन

विषयानुक्रमणिका

— —

नागरिक शास्त्र

(पौर विज्ञान)

—परिचय—

परिभाषा—नागरिक-शास्त्रको हम संक्षेपमें नागरिक-जीवनका अध्ययन कह सकते हैं। नागरिक-शास्त्र नागरिकोंके कर्तव्य और अधिकारका अध्ययन है।

प्राचीन ग्रन्थोंमें 'नागरिक' और 'नागरक' दो अर्थोंमें प्रयुक्त हुआ है। पाणिनीके अनुसार—'नागरिक' का अर्थ उस व्यक्तिसे है जो नगरमें निवास करता है और 'नागरक' उस आदमीको कहते हैं, जो नगरके वातावरणमें पल कर, वहीं पर शिक्षा पाकर, एक विशेष प्रकारके कला-कौशल, चाल, ढालमें दक्ष हो जाता है।

वात्सायनके अनुसार नगर या गाँवका प्रत्येक व्यक्ति अपने देशका नागरिक होता है।

अङ्गरेजीके अनुसार नागरिक शास्त्र, नागरिकके रूपमें मनुष्यका अध्ययन है।

क्षेत्र—इसका क्षेत्र सीमित नहीं, फिर भी स्थानीय, केन्द्रीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय शासनका अध्ययन इसके क्षेत्रके अन्तर्गत है।

नागरिकोंका अध्ययन, मत-दान, कर-दान तथा नगर-कौंसिलका सदस्य बनने तक ही सीमित नहीं है, वरन् उसका अध्ययन इसके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टीकोणसे होना चाहिए। चूंकि नागरिकका जीवन बहुमुखी होना चाहिए, अतः नागरिक-शास्त्रको उन सभी पहलुओंपर विचार करना पड़ता है।

इन सभी क्षेत्रोंको पूर्णरूपेण अपनानेके लिए, हमें वर्तमान समाजके अध्ययन तक ही सीमित न रह कर अतीतकी ओर भी देखना होगा। इस प्रकार हम वर्तमान समाजकी नींवका पता लगा सकेंगे। हमें अपने व्यापक अध्ययनके लिए भविष्यकी ओर भी देखना होगा। इस प्रकार नागरिक-शास्त्रके क्षेत्रमें भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों सम्मिलित हैं।

हमारी इस पुस्तकका क्षेत्र सीमित होगा। हम अपनेको राजनीतिक और आर्थिक दृष्टिकोणसे स्थानीय और राष्ट्रीय नागरिक शास्त्रके अध्ययन तक सीमित रखेंगे।

नागरिकका प्रयोग, बड़े उदार अर्थमें होता है। मौलिक रूपमें नगरके निवासीको नागरिक कहते हैं। इस प्रकार प्राथमिक रूपमें नागरिक-शास्त्र स्थानीय शासनका अध्ययन है। यह नागरिकके निवासस्थान तक ही सीमित है। राजनीतिक विकासकी एक लम्बी अवधिके पश्चात् नागरिक आज अपनेको एक विस्तृत सम्प्रदाय, देश या राष्ट्रके सदस्यके रूपमें पाता है। वर्तमान समयकी नागरिक शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा है। यह नागरिकोंको उनके अधिकारों और कर्तव्योंका अध्ययन कराती है। आज कल नागरिक शास्त्र राष्ट्रकी सीमा पार कर अन्तर्राष्ट्रीयताकी ओर अग्रसर हो रहा है। आज हम यह अनुभव कर रहे हैं कि एक पुरुष या स्त्री को अपने राष्ट्र व देशके प्रति कर्तव्य और अधिकार ही नहीं प्राप्त है वरन् उसका कर्तव्य और अधिकार अन्तर्राष्ट्रीय भी हो चुका है।

नागरिक शास्त्रके सम्बन्ध — नागरिक शास्त्र, नागरिकके पूरे जीवनसे सम्बन्ध रखता है। इसलिए इसका सम्बन्ध जीवनके अन्य सभी शास्त्रोंसे भी है।

समाज शास्त्र और नागरिक शास्त्र—समाज शास्त्र साधारण सामाजिक विज्ञान है। यह सामाजिक जीवनके प्रत्येक पहलू पर साधारण रूपसे प्रकाश डालता है। दूसरी ओर नागरिक शास्त्र, सामाजिक जीवनके एक पहलू पर—नागरिकके रूपमें—विशेष और महत्वपूर्ण प्रकाश डालता है। अतः यह सामाजिक शास्त्रका एक अंग है।

नैतिकता और नागरिक शास्त्र—मनुष्यके कार्योंकी परीक्षा करने पर कुछ

अच्छे और उचित तथा कुछ बुरे और अनुचित सिद्ध होते हैं। नैतिकता—'मानवीय चरित्र और कार्य प्रणालीके आदर्श या स्तरकी स्थापना करना है। कोई भी वस्तु जो इस स्तरके विरुद्ध जाती है बुरी या अनुचित होती है। उचित और अनुचितका नैतिक अन्तर हमारे कार्यों तक ही सीमित नहीं हैं। वरन् यह हमारे संगठनमें भी कार्यान्वित है। हमारे नागरिक कार्य और संगठन आदर्श नहीं हैं। हम नागरिक जीवनको सुन्दर बना सकें, इसके लिए हमें आदर्शकी खोज करनी चाहिए। इस आदर्शकी प्राप्ति, हम अपने नागरिक कर्तव्यों और संगठनोंकी लगातार छानबीनके द्वारा ही कर सकते हैं। उदाहरणके लिए भारतमें हमें राजनीतिक भ्रष्टाचार, धार्मिक असहिष्णुता तथा नागरिक विभिन्नताको जो हमारे भारतीय नागरिक जीवनमें उपलब्ध हैं, सामने रखना पड़ता है। हमारे नागरिक जीवनके सुधारके लिए इन बुराइयोंका निराकरण आवश्यक है।

इतिहास और नागरिक शास्त्र—उदारदृष्टिकोणसे इतिहासका अर्थ सभ्यताका इतिहास है। इसलिए इतिहासमें सभी विषय सम्मिलित हैं। अपने संकुचित रूपमें भी इतिहास नागरिक शास्त्रसे संबंधित है। इतिहास बतलाता है कि कैसे और क्यों हम वर्तमान अवस्थाको पहुँचे हैं। ऐसा अध्ययन मनोरंजक होनेके साथ साथ, हमें वर्तमान समस्याओंको समझनेमें सहायक होता है. हमें अपनी उन्नतिको दिशाकी ओर संकेत करता है। वर्तमान, भूतका सृजन और भविष्यका सृजक होता है। निम्नलिखित विषय नागरिक शास्त्रके क्षेत्रमें पड़ते हैं :— कृषि और उद्योग, राज्यकी व्यवस्था, सार्वजनिक व्यवस्था, सार्वजनिक आर्थिक व्यवस्था और राष्ट्रीय सुरक्षा आदि। इसके अतिरिक्त पारिवारिक जीवन और उसका विकास, गावों, शहरों तथा नगरोंकी उन्नति, राष्ट्रीयताका विकास, उद्योगोंका विस्तार, शिक्षाकी उन्नति तथा अन्तर्राष्ट्रीय संबन्ध भी नागरिक शास्त्रमें सम्मिलित हैं।

भूगोल और नागरिक शास्त्र—भूगोलका वह भाग जो मानवीय भूगोलके नामसे प्रसिद्ध है, विशेष रूपमें नागरिक शास्त्रसे सम्बन्धित है। नागरिकताके दृष्टि-

कोणसे, भूगोल इस पृथ्वी पर मनुष्यके अनुसंधानों और उसके पेशोंका कथागार है। नव नागरिकको भूगोलका अध्ययन अपने गाँव और जिलेके क्षेत्रसे आरम्भ कर पूरे समाज तक पहुँचना चाहिए। नागरिक शास्त्रके छात्रोंके लिए राजनीतिक तत्वोंको समझनेके लिए, मौलिक तत्वोंका जानना आवश्यक है।

विज्ञान और नागरिक शास्त्र—विज्ञानके महान सामाजिक परिवर्तनोंने हमारे जीवन और चरित्रमें भी क्रान्ति पैदा कर दी है। विज्ञानके महान शिक्षकोंके उपदेश हैं, कि विज्ञानका आदर्श समाजकी सेवा करना है। अपने समाजकी सेवासे प्रेरित नव नागरिकोंको महान वैज्ञानिकोंके जीवन, उनकी कठिनाइयों और सफलताओं तथा आदर्शोंकी जानकारी करनी चाहिए। प्रमुख वैज्ञानिकोंका ध्येय, हमारे दिन प्रति दिनके जीवनमें वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा, सुख, समृद्धि और शान्ति पैदा करना रहा है। ये वैज्ञानिक हमारे प्रमुख नागरिक हैं। जैसे—एडिसन, मर्कोनी, पी० सी० राय, सी० वी० रमन, आदि।

साहित्य और नागरिक शास्त्र—साहित्य समाजका दर्पण कहा जाता है। साहित्य नागरिकोंके सम्मुख राष्ट्रकी आत्मा और आदर्शको स्पष्ट रूपमें रखता है। इन आदर्शोंके सदुपयोगके द्वारा, सभ्यताको और ऊँचा उठाया जा सकता है। इस प्रकार साहित्य और सभ्यता पूर्ण रूपेण संबंधित है। रूसो, टालस्टाय, बर्नार्ड शा, तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ, प्रेमचन्द्र आदिके सद साहित्य, सामाजिक विज्ञान और नागरिक जीवनके विकासमें बहुत ही अधिक सहायक होते हैं।

कला और नागरिक शास्त्र—राष्ट्रके आदर्श पूर्ण चित्रों और चरित्रोंके प्रदर्शन द्वारा कला, राष्ट्र और देशके प्रति हमारे अन्दर प्रेम उत्पन्न करती है। आत्मा और उसके अन्तर जगतके उद्गार, तथा राष्ट्रीय महत्वाकांक्षा, कलाओंमें सन्निहित है। इसके अध्ययनसे हमारे नागरिक आदर्शोंमें उदारताका समावेश होता है। राष्ट्रीय संगीत 'वन्दे मातरम्' आदि राष्ट्रोन्नतिके विधायक हैं।

नागरिक शास्त्र और राजनीति—मौलिक रूपमें नागरिक शास्त्र, राज-

नैतिक सम्प्रदायके सदस्योंका संबंधित मानवीय अध्ययन है। इसलिए हमें राष्ट्रीय और स्थानीय सरकारके संगठन और कार्य प्रणालीका अध्ययन राजनीतिक आधार पर *प्रारम्भ करना चाहिए। साधारण सिद्धांतोंके अध्ययनके पश्चात हम अपनी सरकारके* प्रति अपने कर्त्तव्य और अधिकारका अध्ययन करेंगे।

अध्ययनकी सभी शाखाओंमें राजनीति एक ऐसा विषय है, कि जिससे नागरिक शास्त्र सर्वाधिक सम्बन्धित है। वास्तवमें नागरिक शास्त्र राजनीतिकी एक शाखा कहा जा सकता है। नागरिक शास्त्र राजनीतिके नैतिक और वास्तविक क्षेत्र पर जोर देता है। नागरिक शास्त्रके विषय सिद्धांत और भावना ही नहीं; वरन् तथ्य और अनुभव भी हैं। राज्यके सिद्धांतके पूर्व यह राष्ट्र और राज्यके वास्तविक विकासका अध्ययन करता है। यह स्वतंत्रताके आंदोलनके इतिहास, कारण, प्रणाली और प्रभावका अध्ययन, स्वतंत्राकी प्रकृतिका विचार करनेके पूर्व कराता है। नागरिक शास्त्र राष्ट्रीय आदर्शकी प्राप्तिके लिए नागरिकोंको चारित्रिक शिक्षा देता है।

नागरिक शास्त्र और अर्थ शास्त्र—राजनीति और अर्थशास्त्रको अलग-अलग नहीं किया जा सकता। वर्तमान युगमें आर्थिक समस्या, राजनीतिक प्रश्नोंसे इस *प्रकार चिपकी हुई है कि अर्थ शास्त्र, भलाई और समृद्धिके विज्ञानके सिद्धांतोंकी* जानकारीके बिना नागरिक अपने कर्त्तव्यका भली-भाँति पालन नहीं कर सकता। वास्तवमें आजका नागरिक राजनीतिक संगठनोंको इसीलिए महत्वपूर्ण समझता है कि वे आर्थिक क्षेत्रोंमें उसके सहायक होते हैं। अतः भारतीय युवकोंके लिए यह अधिक आवश्यक है कि वे अपनी जनताकी दरिद्रता, कष्ट और पतनके कारणोंकी, जो उनके पथमें पद-पद पर बाधाएँ उपस्थित करते रहते हैं, जानकारी प्राप्त करें। अतः नागरिक शास्त्रमें अर्थ शास्त्रका सम्मिलित करना आवश्यक है। हम इसके साधारण सिद्धांतोंका *अध्ययन कर भारतकी आर्थिक अवस्था और जीवनका अध्ययन करेंगे।*

अध्ययनका महत्व—शिक्षाका अर्थ जीवनके लिए वास्तविक तैयारी करना है। आजके छात्र ही कलके नागरिक होंगे, इसलिए नागरिकताकी तैयारी हमारे युवकोंकी

शिक्षाका प्रधान लक्ष्य होना चाहिए। नागरिकताका यह अध्ययन आज अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक हो गया है। आज सर्वाधिक ऐसे नागरिकोंकी आवश्यकता है जो हमारे नित्य प्रतिके अनेकानेक दुरूह और उलझी हुई समस्याओंके समाधानमें सहायक हो सकें। इन समस्याओंके समाधानके बिना हम दरिद्रता और यातनाओंके शिकार बने रहेंगे। इसका निराकरण हम तभी कर सकेंगे, जब हम उचित नागरिकताकी शिक्षा प्राप्त कर सकें। भारतीय छात्र नागरिकोंके सम्मुख आज, अज्ञानता, बीमारी, छुआछूत, दरिद्रता आदिकी अनेक समस्यायें हैं। जब तक इन समस्याओंका समाधान नहीं हो जाता, हम एक स्वस्थ्य राष्ट्रीय जीवनका विकास नहीं कर सकते। राष्ट्रीय उत्थानके इस कार्यमें छात्रोंको अपना कर्तव्य पूरा करना चाहिए। उनके सम्मुख रूस, चीन, जर्मनी और डेनमार्कके छात्रोंका महान् आदर्श है। उन्हें नागरिकताके लिए उत्साह और त्यागके साथ प्रयत्न करना चाहिए। सर्व प्रथम उन्हें अपने उत्तरदायित्वको पहचानना है। उन्हें इस उत्तरदायित्वकी भावनाका ज्ञान नागरिक शास्त्रके अध्ययनसे ही हो सकेगा। इसी शास्त्रके अध्ययनसे उन्हें वह ज्ञान प्राप्त होगा जो उन्हें क्षमाशील राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता बननेके लिए आवश्यक है। ऐसे ही कार्यकर्त्ता भारतके पुनरुत्थानमें सहायक हो सकते हैं।

अध्ययनके उद्देश्य और प्रणाली—नागरिक शास्त्र एक मात्र सिद्धांतोंका ही अध्ययन नहीं है, वरन् इसके विपरीत हमारे जीवनको सुन्दर और अधिक सुखद बनानेका महत्वपूर्ण उद्देश्य है। जब तक छात्र नागरिकों द्वारा किए गए विशेष प्रयोगोंका सहारा न लेंगे वे पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। नागरिक शास्त्रका अध्ययन सहानुभूति, निर्माण और दूसरोंके दुख दर्दमें हिस्सा बटानेकी भावनाका निर्माण करता है। जिसके द्वारा सर्व साधारणके जीवनको अधिक सुन्दर और सुखद बनाया जा सकता है। इसके अध्ययनका उद्देश्य—युवक युवतियोंमें स्पष्ट विचार, स्वच्छ भावना, और उचित व्यवहारकी आदत डालना है। इससे वे अपने सहयोगी मानवताके प्रति उदार भावना और प्रेम रख सकेंगे। उन्हें राष्ट्रकी समस्याओंके समाधानकी ओर प्रोत्साहन मिलेगा।

इस प्रकार नागरिक शास्त्रके लिए यह आवश्यक है कि वास्तविकताकी भावना उसमें बराबर बनी रहे। छात्रको ऐसा बनना चाहिए जिससे नागरिक शास्त्रका अध्ययन करते समय उसे ऐसा मालूम हो कि वह वास्तवमें जीवनका अध्ययन कर रहा है। अपना, अपने भूत और भविष्यका अध्ययन कर रहा है। उसमें अपने ही खास पासकी दुनियांकी खोज करनेकी भावना जागृत कर हार्दिक इच्छाको सजीव रखा जा सकता है। क्षेत्री सर्वेकी प्रणाली सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है। अनुसंधानके क्षेत्रमें धीरे-धीरे विस्तार किया जा सकता है। जब तक कि उसमें पूरा संसार नहीं आ सकता, छात्र अपने ही गृहसे आरम्भ कर सकता है। इसके बाद वह अपनी उस गली, जिसमें वह रहता है—को अनुसधानका क्षेत्र बना सकता है। इसके पश्चात् गांव, शहर, जिला, प्रांत और अंतमें सम्पूर्ण संसार उसके अनुसंधानका क्षेत्र बन जायगा।

सारांश

नागरिक शास्त्र मनुष्यका नागरिकके रूपमें अध्ययन है। नागरिकता, स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय भी है।

नागरिक शास्त्रके क्षेत्रमें भूत, वर्तमान और भविष्य सभी सम्मिलित हैं।

नागरिक शास्त्र, समाज शास्त्र, नैतिकता, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, कला और साहित्यसे संबंधित है। राजनीति और अर्थ शास्त्रसे इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

नागरिक शास्त्रका अध्ययन बहुत ही आवश्यक है। इसका अर्थ है नागरिक जीवनके लिए महत्वपूर्ण तैयारी। नागरिक शास्त्रके अध्ययनका निश्चित उद्देश्य है। इसके अध्ययनकी सर्व श्रेष्ठ प्रणाली क्षेत्रीय प्रणाली है।

प्रश्न

१—नागरिक शास्त्रके क्षेत्रकी व्याख्या करो? (क० वि० १९३०)

२—नागरिक शास्त्रका अर्थ और उसका विषय क्या है? (क० वि० १९२७)

३—नागरिक शास्त्रसे क्या समझते हैं? यह राजनीति, अर्थ शास्त्र और नैतिकतासे किस प्रकार संबंधित है? (यू० पी० बो०)

४—नागरिक शास्त्रकी परिभाषा बताओ। इसके क्षेत्र तथा प्रणालीकी व्याख्या करो। (यू० पी० बो० १९३०)

राजनीति

पुस्तक १

—*:*०*:*—

राजनीति

राजनीति, राजसत्ता या सरकारका विज्ञान है। यह राज्य, राज्यसत्ता और राज्य तथा व्यक्तिके बीचके विभिन्न सम्बन्धोंको व्यवस्थित रूपमें अध्ययन कराती है। ऐसी अवस्थामें राजनीति, राज्य और राज्यसत्ताके सम्बन्धित राज्यके नागरिकोंके अधिकार और कर्त्तव्यका अध्ययन कराती है।

राजनीतिके अध्ययनका महत्व—राजनीतिका अध्ययन बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति जो सरकारके अन्तर्गत रहता है, उसे राज्यसत्ताके नैतिक सिद्धान्तोंकी जानकारी होनी चाहिये। उसे जानना चाहिये कि अपनी सरकारके प्रति एक नागरिकका क्या कर्त्तव्य है और उसके क्या अधिकार हैं; उन्हें स्वीकार कर सरकारको उनकी रक्षा करनी चाहिये।

भारतीयोंके लिये यह ज्ञान अत्यधिक आवश्यक है। यों तो राज्यसत्ताकी समस्या सभी स्थानों पर कठिन है पर भारतमें दुगुनी कठिन है, क्योंकि हम अभी-अभी विदेशी दासतासे मुक्त हुए हैं। अभी हम स्वराज्य पथ पर हैं। प्रत्येक भारतीयको सभी प्रकारकी सरकारोंके आधारभूत मौलिक सिद्धान्तों और उन अवस्थाओंकी जानकारी होनी चाहिये, जिनके द्वारा एक अच्छी सरकारकी स्थापना हो सकती है। अतः जो भारतीय छात्र इस देशको आगे बढ़ाना चाहता है, उसे राजनीतिके अध्ययनसे कभी भी विमुख न होना चाहिये।

युवक और राजनीति—वर्तमान युग जिसमें हम जीवनयापन कर रहे हैं ; संसारके इतिहासका एक महत्त्वपूर्ण युग है। संसार भर की जनता युद्ध और महामारीसे तंग आ गयी है। सभी बड़ी आतुरतासे सर्वोत्तम सरकारकी स्थापनाकी खोजमें तल्लीन हैं, जिस सरकारके अन्तर्गत वे प्रसन्नता और सुरक्षा प्राप्त कर सकें और अपने मस्तिष्कका विकास कर उसे सर्वोत्तम कार्यमें लगा सकें। आनेवाले वर्षोंमें तुमको इस महान् विश्वमें अपना पार्ट अदा करना होगा, तो तुम निस्सन्देह इस विचारसे उत्साहित होगे कि समस्त पृथ्वी पर फैली हुई असंख्य जनताका हित एक साथ सम्बन्धित है और तुममें से एक पर भारी उत्तरदायित्व है कितुम अपने सहयोगी मानवकी भलाई करो। तुम्हें सरकार और नागरिकतामें दिलचस्पी लेनी चाहिये। तुम्हें राजनीतिमें प्रवेश करनेकी इच्छा नहीं हो सकती है, परन्तु तुम्हारी इच्छा हो या न हो, प्रत्येक स्थानकी सरकारें तुम्हारे जीवन तथा प्रत्येक व्यक्तिके जीवनको प्रभावित करती हैं। अतः तुम्हें युग प्रवाहकी जानकारी होनी चाहिये। उस सम्बन्धमें तुम्हें अपनी राय स्थिर करनी चाहिये और अपना निर्णय देना चाहिये ; नहीं तो तुम एक दुष्ट या मूर्ख सरकारसे जनताका हित नहीं कर सकते। तुम अपने देशके एक अङ्ग हो, अतः तुम अपनी जनताके भाग्य निर्माणमें, अच्छा या बुरा कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डालोगे। तुम्हें विदेशी आक्रमणोंसे अपनी जनताके अधिकार और स्वतन्त्रताकी रक्षा करनी होगी और आन्तरिक मामलोंमें भी तुमको एक सुन्दर रक्षक होना पड़ेगा। आज देश तुम्हारी ओर भावी युगके नेताके रूपमें वफादारी, चरित्र, साहस, अनुशासन और क्षमताके नेतृत्वके लिये देख रहा है।

युद्ध प्रत्येक स्थान पर स्वतन्त्रता और गणतन्त्रवादके ऊपर एक महान आक्रमणका जीता जागता चित्र है। ऐसा ज्ञात होता है कि मानवता एक नये अन्धकारमय युगमें प्रवेश करनेवाली है।

स्वतन्त्रता, समानता, आजादी, गणतन्त्रवाद, मनमानी करनेवालोंके लिये माना कि आकर्षक शब्द हो सकते हैं, पर हमारे लिये उनका गूढ़ अर्थ और भाव है। हमें

अपना संगठन इतना शक्तिशाली बनाना चाहिये कि हम अपनी कठिनाइयोंको अधिक कम कर सकें। इसके लिये हमें स्वतन्त्रताका वास्तविक अर्थ समझना होगा। जनताकी अवस्थामें सुधार करनेवाले प्रत्येक विषयमें हमें दिलचस्पी लेनी चाहिये, जैसे:—उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, निवासस्थान, नौकरी, मजदूरी, उद्योग, सार्वजनिक कार्य, गाँव, नगर और प्रान्तकी सरकार, देशका विकास और राष्ट्रीय युवक राज्यके कार्योंका संचालन करेंगे।

———

अध्याय १

समाजकी उत्पत्ति और विकास

नागरिकका जीवन विशेष रूपसे वर्तमानसे सम्बन्धित है और वर्तमान भूत पर आधारित है, इसलिये उसे विभिन्न संगठनोंके विकासकी जानकारी होनी चाहिये। नागरिक शास्त्रके छात्रके सम्मुख सबसे प्रथम यह प्रश्न आता है कि कैसे और कब मनुष्यने समाजमें रहना सीखा? दूसरे शब्दोंमें समाजका जन्म कैसे हुआ? इसका उत्तर यह है कि व्यक्तियोंने दलोंमें गठित हो समुदायका निर्माण किया, क्योंकि सर्व प्रथम व्यक्ति एकान्तसे घबड़ाता और साथियोंके साथ रहना पसन्द करता है और दूसरी बात यह है कि वे बिना एक दूसरेकी सहायताके नहीं रह सकते।

समाजका निर्माण इस द्वितीय कारणसे आवश्यक हो गया। इस प्रकार व्यक्ति, समाजमें, प्राकृतिक रूपमें, और आवश्यकतासे—दोनों ही कारणोंसे, रहने लगा। प्रकृतिने उसे समाजमें रहनेके लिये प्रोत्साहित और आवश्यकता ने लाचार किया।

चिह्नित शब्दोंकी व्याख्या

समाज—समान हित और सम्बन्धमें एक साथ बँधे हुए आदमियोंके दलको, जो एक साथ रहते हैं, समाज कहते हैं। मानव समाज मानवेतर प्राणियों—जैसे—मधुमक्खी, चींटी आदिके समाजसे भिन्न हैं, क्योंकि मानव समाजके सदस्योंके मस्तिष्कमें पारस्परिक हित और उद्देश्यकी समान चेतना विद्यमान रहती है।

परिवार—परिवार वह सामाजिक इकाई है, जिसमें एक या अधिक आदमी साधारणतया एक ही मकानमें एक या अधिक स्त्री-बच्चेके साथ, कमसे कम उनके बचपनमें रहते हैं।

पितृ प्रधान और मातृ प्रधान दो प्रकारके परिवार प्रमुख रूपसे पाये जाते हैं। पितृ प्रधान परिवारमें परिवारकी जड़ किसी पुरुष पूर्वज द्वारा स्थापित समझी जाती है। उस परिवारका अधिकार जीवित बड़े पुरुषके हाथमें रहता है। प्राचीन कालमें परिवारके मालिकको परिवारकी सभी सम्पत्ति और उसके सभी सदस्यों पर अधिकार होता था।

इतिहासमें उस समय विशेषकी ओर निर्देश करना, जब कि सर्व प्रथम व्यक्तिने समाजमें रहना सीखा, असम्भव है; परन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि यद्यपि आदमी मानव समाजके आरम्भिक कालसे ही समाजमें रहने लगा, पर आरम्भिक समाज आजके समाजसे कई दृष्टिकोणोंमें भिन्न था। समाज * अपने वर्तमान अवस्था तक पहुँचनेके पूर्व विकासकी कई सीमाओंको पार कर चुका है। यह विकास विभिन्न देशोंमें समान रूपसे नहीं हुआ। वर्तमान समयमें अनुसंधानके कार्यमें रत कार्यकर्त्ताओंके कथनानुसार प्रत्येक सांस्कृतिक क्षेत्रके समाजके भिन्न भिन्न इतिहास हैं।

बहुतसे अनुसंधान कर्त्ताओंके मतानुसार वर्तमान सामाजिक जीवन, विकास की एक लम्बी अवधिका फल है। जिसका पता हमें परिवारसे + चलता है। अपने सबसे बड़े पुरुष सदस्यके मालिकत्वमें यह परिवार दलके रूपमें परिणत हुआ। दल विकसित होकर गिरोह बना। अन्त में क्षेत्रीय समाज या राज्यके रूपमें जन्म हुआ। परिवार, दल, गिरोह और राज्य इस प्रकार एक ही पुरीकी विभिन्न शाखाएँ हैं, जो एक ही केन्द्रसे निकल कर क्रमशः विस्तृत होती गईं।

परिवारके समाजके अंश होनेके बाद बहुत दिनों तक, परिवारसे भिन्न व्यक्तिका अलग अस्तित्व नहीं था। उसके पश्चात व्यक्तिकी प्रधानताकी स्वीकृतिका समय आता है। पर यह स्वीकृति एकाएक नहीं हुई। यह धीरे-धीरे विकासके द्वारा सम्भव हुई। इसका विवरण कई सौ वर्षों पूर्वसे आरम्भ

होकर वर्तमान तक आता है समाजमें व्यक्तिका महत्व अभी हालमें स्वीकृत हुआ है। व्यक्ति ही समाजका सदस्य है और उसीके लिए समाजका अस्तित्व है। वर्तमान समाजने व्यक्तिको अधिक महत्व दिया है।

अगले अध्यायमें हम समाज और व्यक्तिके सम्बन्ध, समाजके उद्देश्य, दो महत्वपूर्ण सामाजिक आदर्श, व्यवस्था और उन्नतिका अध्ययन करेंगे।

सारांश

मनुष्य प्रकृति और आवश्यकता दोनों ही के कारण समाजमें रहता है। समाजके जन्म और विकासका एक लम्बा इतिहास है, जिससे हम परिवारको सर्व प्रथम सामाजिक इकाई पाते हैं। *मातृ प्रधान परिवारकी स्थापना माता द्वारा समझी जाती थी।* मातृ प्रधान परिवार आज भी, तिब्बत, दक्षिणी भारत तथा कुछ अन्य स्थानोंमें पाये जाते हैं। परन्तु इन परिवारोंमें भी माताको उतना अधिकार प्राप्त नहीं, जितना पितृ प्रधान परिवारमें पिताको है। पितृ प्रधान परिवारियोंकी प्रधानताके कारण सर हेनरी समर मेनने इस बात पर विशेष जोर दिया कि आरम्भमें पितृप्रधान परिवार ही थे। अधिकांश देशोंमें इसी प्रकारके परिवार पाये जाते हैं। पितृप्रधान परिवारका प्रमुख उदाहरण रोमन परिवार था जहाँ पर सबसे बड़े बूढ़ेको सदस्योंपर पूर्ण अधिकार था।

वर्त्तमान परिवार

वर्तमान कालमें अधिकांश परिवारोंमें पुरुष, स्त्री और बच्चे होते हैं। भारतीय संयुक्त परिवारमें सभी भाई अपनी अपनी स्त्रियों और बच्चोंके साथ रहते हैं। पिता परिवारका मालिक होता है। माता सभीकी देख रेख करती है। परिवार इसके सभी सदस्योंके संयुक्त हित साधनके लिए एक सम्मेलन सा है। परिवारमें ही बच्चे सर्व प्रथम समाजका रूप समझते हैं। यहीं पर बच्चे दूसरेके हितार्थ अपना त्याग करना सीखते हैं इसीलिए परिवार सामाजिक जीवनका शाश्वत स्कूल कहा गया है।

अध्याय २

समाज और व्यक्ति

व्यक्तिका समाजसे सम्बन्ध—नागरिक शास्त्र, नागरिक और सभ्यतासे सम्बंधित है। नागरिक शास्त्रके अध्ययनका अर्थ है नागरिकताके विज्ञान और कलाका अध्ययन। नागरिक व्यक्ति है पर वह अकेला नहीं। समाजके भीतर ही व्यक्ति सभ्यता प्राप्त कर सकता है। अतः नागरिक शास्त्र व्यक्ति और समाजके संबन्धका अध्ययन है।

समाजकी आवश्यकता—हम यह देख चुके हैं कि आदमी स्वभावतः और आवश्यकतासे भी समाजमें रहता है। स्वभावतः व्यक्तिको सामाजिक जीवनमें रहनेको बाध्य किया जाता है। जैसा कि अरस्तूने कहा है:—आदमी स्वभावतः एक सामाजिक प्राणी है। आदमीकी आवश्यकता भी उसे एक साथ रहनेको लाचार करती है। यह आवश्यकता भौतिक और नैतिक दोनों है।

भौतिक आवश्यकताओंमें, भोजनकी समस्या और प्रकृति जंगली जानवर तथा पशुओंसे सम्मिलित है। ये अन्तरजोंकी आवश्यकतायें हैं। वर्तमान आवश्यकता, एक सुन्दर और शक्ति जनक जीवन पालन करनेकी इच्छासे सम्बन्धित है। अन्य प्राणियोंके प्रतिकूल मनुष्यके पास एक स्वाभाविक नैतिक प्रेरणा होती है। एक सुन्दर और नैतिक जीवन तभी सम्भव हो सकता है जब कि मनुष्य, समाजमें रहे और वह कुछ साधारण अधिकार और कर्तव्य स्वीकार करे, जो स्वभाव, परम्परा, सार्वजनिक राय और कानूनसे वाधित हों। समाजके बिना सुन्दर जीवन सम्भव नहीं है। सुन्दर जीवन प्रेम, मित्रता, विज्ञान, कला और साहित्यके द्वारा प्रदर्शित होता है। ये सभी बातें समाजमें ही और उसीके द्वारा सम्भव हैं।

नागरिक शास्त्र और सभ्यता—मनुष्यकी विभिन्न कार्यवाहियों और सम्बन्धोंसे सभ्यताका निर्माण होता है। सर्व श्रेष्ट नागरिक वह है, जो सर्व श्रेष्ट सभ्यताका प्रतिनिधित्व करता है तथा सर्व श्रेष्ट सभ्यता वह है, जिसमें व्यक्तिको अपने पूर्ण विकासका अवसर मिलता है।

इतिहाससे पता चलता है कि आदि कालमें भी मनुष्य एक साथ समाजमें रहते थे। आरम्भिक समाज विकसित नहीं था। पर उस बातका कोई उल्लेख नहीं मिलता, कि आदमी समाजसे भिन्न जीवन व्यतीत करता था। अब हम कह सकते हैं कि व्यक्तिके बिना समाज नहीं और समाजके बिना व्यक्ति नहीं है।

प्रत्येक समाजकी अपनी सभ्यता है। परिगणित और मानवभक्षी जातियोंमें अपनी प्राचीन सभ्यता है। सभ्यताका विकास उसके प्राचीन निम्नतर धरातलसे आजके इस ऊँचे धरातल तक हुआ है। उसका विकास अभी भी जारी है। जो विशेष ऊँचे स्तर और जटिलताकी ओर अग्रसर हो रहा है। अच्छे नागरिकको हृदयसे इस विकासके साथ चलना चाहिए।

विकास एक रूपमें या सम्भव नहीं—सभ्यता कई प्रकारकी है। हमारी सभ्यताका विकास एक आधार पर नहीं हुआ है। विभिन्न समाजोंमें विधान, संगठन और परम्पराओंकी रूप रेखा भिन्न-भिन्न होती गयी। वर्तमान समयमें हम देखते हैं कि हर एक राष्ट्र या राजनीतिक सम्प्रदायकी अपनी अलग संस्कृति और परम्परा है। किसी भी राजनीतिक सम्प्रदायकी साधारण भलाईके लिए प्रयत्न करना नागरिकोंका आरम्भिक ध्येय है। यह उद्देश्य मानवताकी भलाईके लिए, कार्य करनेके, सभी सम्प्रदायके सभी नागरिकोंके अन्तिम उद्देश्यके विरुद्ध नहीं होना चाहिए।

समाजके उद्देश्य—समाजका मुख्य उद्देश्य व्यक्तिका विकास है। समाजका संगठन ऐसा होना चाहिए कि उसमें प्रत्येक व्यक्तिको अपनी शक्ति और योग्यताके विकासका पूर्ण अवसर प्राप्त हो। आत्म-विकासको स्वार्थ नहीं समझना चाहिये। किसी भी व्यक्तिको दूसरे व्यक्तिके मूल्यपर विकासका अवसर नहीं मिलना चाहिये।

सर्वसाधारणकी भलाईके लिये प्रत्येक व्यक्तिको सहयोगसे काम करना चाहिये। आत्मा-का सर्वोच्च विकास आत्मत्याग अर्थात् आत्महितको समाजकी भलाईके सम्मुख त्याग करनेमें है। सेवा समाजका सर्व प्रथम आदर्श है। यह आत्म-त्याग और आत्म-विकासमें अन्तर्हित है।

जिस प्रकार समाजके व्यक्तियोंमें पूर्ण समन्वयकी आवश्यकता है, उसी प्रकार संसारके विभिन्न राष्ट्रोंमें भी परस्पर सद्भावना रहनी चाहिये। प्रत्येक राष्ट्रको अपने सामूहिक जीवन, संस्कृति और आदर्शके विकासकी पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिये। पर किसी भी राष्ट्रको अन्यराष्ट्रके मूल्यपर आगे बढ़नेका प्रयत्न न करना चाहिये। त्याग और सेवाकी भावनासे राष्ट्र और व्यक्ति दोनोंको ही प्रेरित होना चाहिये। नागरिकको ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिये, कि वह सिर्फ अपने राष्ट्रके हित को अपने हितके ऊपर ही नहीं समझे, वरन् संसारके हितको अपने राष्ट्रके ऊपर समझे।

इस प्रकार समाजके उद्देश्य हैं :—

(१) राष्ट्रके हितका ध्यान रखते हुए व्यक्तिका विकास।

(२) संसारके हितका ध्यान रखते हुए, राष्ट्रीय-जीवन, संस्कृति और आदर्श-का विकास।

हम अब इस बातका अनुभव करने लगे हैं, कि समाजका प्रमुख ध्येय व्यक्तिगत व्यक्तित्वका विकास है। यह ठीक है कि व्यक्ति अपने व्यक्तित्वका विकास समाजके मूल्यपर या उससे अलग रह कर नहीं कर सकता। वह समाजका एक अङ्ग और अंश है और अगर समाजको विकसित होना है, तो व्यक्तिको सामाजिक अनुशासन के ही अन्तर्गत चलना होगा।

दूसरी ओर हमें यह नहीं मान लेना चाहिये कि समाजका अन्त अपनेमें ही है। इसकी प्रसन्नता इसके अन्तर्गत रहनेवाले व्यक्तियोंकी प्रसन्नतासे आती है। अन्तमें सामाजिक उन्नति, व्यक्तियोंकी उन्नतिका सामूहिक रूप है और स्वयं अपने लिये

भी समाजको व्यक्तिकी देख-रेख करनी पड़ती है। व्यक्ति और समाज दोनोंका ध्येय जीवनको सम्भावित रूपमें खुशहाल बनाना है।

व्यवस्था और विकासके आदर्श—नागरिक शास्त्र साधारणतया नागरिकोंके अधिकार और कर्त्तव्यके विशेष वर्णनके साथ सरकारकी समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाला समझा जाता है। परन्तु नागरिक शास्त्रका क्षेत्र पूरे समाजके क्षेत्र तक विस्तृत है।

नागरिक शास्त्र समाजका अध्ययन उसके भावनात्मक नहीं, स्थूल रूपमें करता है। यह उचित कार्य और उचित चरित्र पर जोर देता है। इसका उद्देश्य सच्चे आदर्शकी प्राप्ति कर उसे व्यक्तिके मस्तिष्क और चरित्रमें प्रेरित करना है। यह आदर्श दो भागोंमें विभक्त हैं। व्यवस्था और विकास।

व्यवस्थाका उद्देश्य राष्ट्रीय संस्कृति और विश्व सभ्यताके सर्वश्रेष्ठ तत्त्वकी सुरक्षा करना है, परन्तु राष्ट्रीय विश्व संस्कृति अपनेमें पूर्ण नहीं है। इनमेंसे कुछ तत्त्वोंके सुधारकी आवश्यकता होती है। अतः व्यवस्थाका आदर्श स्वयं अपनेमें पूर्ण नहीं है और उसकी पूर्तिके लिये विकासके आदर्शको आगे लाना पड़ता है। कहा गया है कि "इस संसारमें उत्पन्न हुए प्रत्येक पुरुषकी विरासत, एक महान भूत, एक महान वर्तमान और एक सर्वाधिक आशामय भविष्य है।" नागरिकका दृष्टिकोण प्रगतिशील होना चाहिये। हमें भूतकी नींव पर वर्तमानमें कार्य करना चाहिये और भविष्यके विकासको ध्यानमें रखना चाहिये। अच्छे नागरिकको चाहिये कि वह सभी बुराइयोंको उखाड़ फेंके। सभी अच्छाइयोंको चालू करनेके लिये अपनी शक्तिभर चेष्टा करें, ताकि सभी एक सुन्दर संसारमें अच्छा जीवन व्यतीत कर सकें।

सारांश

नागरिक शास्त्र समाजसे सम्बन्धित और उसके एक अंशके रूपमें व्यक्तिका अध्ययन है, क्योंकि समाजमें ही व्यक्ति आत्मविकास कर सकता है।

व्यक्तिको समाजकी आवश्यकता नैतिक और भौतिक दोनों ही रूपमें पड़ती है। बिना व्यक्तिके समाज नहीं है और बिना समाजके व्यक्ति नहीं है।

नागरिक शास्त्र सभ्यता और नागरिकता दोनोंसे सम्बन्धित है। यह दोनोंका अध्ययन करता है। सभ्यताका विकास सभी स्थानों पर एक ही रूपमें नहीं हुआ है।

समाजका मुख्यकार्य व्यक्तिका पूर्ण विकास करना है। समाजके मुख्य उद्देश्य हैं—राष्ट्रकी भलाईका ध्यान रखते हुए व्यक्तिका विकास और समाजकी भलाईका ध्यान रखते हुए राष्ट्रका विकास। इसके दो महान उद्देश्य व्यवस्था और विकास हैं। नागरिकको भूतकी नींव पर निर्माण करना चाहिये। वर्तमानमें कार्य करना चाहिये और भविष्यका ध्यान रखना चाहिये।

प्रश्न

(१) समाजमें व्यक्तिका क्या स्थान है ?

(२) समाजके उद्देश्य क्या हैं ?

(३) व्यवस्था और विकासके आदर्शोंको स्पष्ट व्याख्या करो।

—— * ——

अध्याय ३

राज्यका विकास और राज्यकी उत्पत्तिके सिद्धान्त

राज्यका विकास—एक अपूर्ण आरंभके साथ, मानव समाजका उत्तरोत्तर विकास है, जिसका आदर्श पूर्ण न होते हुए भी, जो मानवताके एक पूर्ण और व्यापक संगठनकी ओर अग्रसर होता जा रहा है।

शायद हमारी पहली सामाजिक इकाई और हमारे राज्यका प्रथम मण्डल-परिवार धीरे धीरे दलके रूपमें विकसित हुआ, दल, गिरोहके रूपमें और गिरोह, राज्य तथा साम्राज्यके रूपमें आया।

इसी प्रकार लोग राज्यकी उत्पत्तिका पता लगाते हैं। यद्यपि राज्यकी उत्पत्ति सभी स्थानोंमें एक ही रूपमें नहीं हुई, पर राज्यकी उत्पत्तिका समय निर्धारित करना बहुत ही कठिन है। इसी प्रकार आरंभिक सामाजिक संगठन, जो राज्य नहीं है उसके और उसके बादके संगठन जो राज्य हैं, उन दोनोंके अन्दर अन्तर दिखाना भी महा कठिन है। यही अवस्था अंतिम गिरोह राज्य और हमारे आधुनिक राज्यके अन्तर की है। यह धीरे धीरे एक दूसरेमें विलीन होते गए। हमारे अन्य आरंभिक संगठनोंकी भांति राज्यका स्वतः आविर्भाव हुआ। ऐसा समझा जा सकता है।

राष्ट्रीय प्रतियोगिताके कारण हमारे वर्तमान राज्यमें जो दौर्बल्य आ गया है उसके कारण बहुतसे आदमी बड़ी गम्भीरतासे मानवताके एक विश्वव्यापी संगठन या विश्व राज्यकी बात सोचने लगे हैं और यह कहा जाता है कि एक मात्र इसीके द्वारा व्यवस्था और विकासका आश्वासन दिया जा सकता है।

राज्य-निर्माणकी शक्तियां—गेटेलके अनुसार, वर्तमान राज्यके निर्माणमें, प्राकृतिक और शारीरिक तत्वोंके अतिरिक्त निम्न लिखित प्रमुख बातें भी हैं।

विरुद्ध जाना था। राजा अपनेको दैवी अधिकारके रूपमें शासन व्यवस्थाका अधिकारी समझता था।

सम्बन्धके सूत्रके भंग हो जानेके बहुत दिनों बाद तक जो आदमियोंके भ्रमणसे हुआ, संयुक्त धार्मिक विश्वास, जनताको एक रखने, घरानोंका समर्थन करने और राज्योंकी स्थापना करनेके लिए पर्याप्त था। राजाके दैवी अधिकारके सिद्धान्तका बहुत दिनों पूर्व अन्त हो गया। अब भी तिब्बत और नैपाल की राजगद्दियोंके पीछे इसका बहुत बड़ा हाथ है। इसकी एक धुँधली रेखा इंगलेण्डमें भी दिखाई देती है। वहाँ पर राजाको एक उपाधि 'धर्मरक्षक' भी है।

व्यवस्था और सुरक्षाकी आवश्यकता – सम्बन्ध और धर्मके अतिरिक्त आर्थिक और सैनिक तत्वका भी महत्वपूर्ण प्रभाव था। आरम्भिक कालमें जब लोग; *अपेक्षाकृत शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करनेके लिए धीरे धीरे एक स्थान पर बसते गए,* तो उनको सुरक्षा और व्यवस्थाकी आवश्यकता जान पड़ी। राज्यका जन्म इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए हुआ। आदमीके गृह निर्माणसे गिरोहका संगठन अधिक स्थायी हो गया। उन्होंने अपने भ्रमणशील जीवनका त्याग किया। एक स्थान पर बस जानेके बाद सम्पत्तिकी भावना जाग्रत हुई।

लोगोंकी संख्या और सम्पत्तिमें ज्यों ज्यों वृद्धि होती गई, आन्तरिक तथा बाह्य आक्रमणोंसे जीवन तथा सम्पत्तिको रक्षाकी आवश्यकता जान पड़ी।

प्रतिद्वन्दी गिरोहके आक्रमणसे सुरक्षाकी आवश्यकतासे राजाका जन्म हुआ। युद्धने राजाको जन्म दिया। युद्धने एक प्रधान या अग्रगण्य की माँग की। क्योंकि सुरक्षाके लिए, एक सम्मिलित और अनुशासित कार्यवाहीकी आवश्यकता थी। इस प्रकार युद्धने दलकी एकता और प्रधानके अधिकारमें वृद्धि की। सफल युद्धनेता राजा बन बैठे। जैसे भारतीय राजपूत राजा अपने दलके सैनिक नेता थे इस प्रकार युद्धोंके द्वारा राज्योंकी स्थापना हुई।

इन प्रधानोंने बाह्य आक्रमणों ही से अपने गिरोहकी रक्षा और व्यवस्था नहीं की

वरन् आन्तरिक व्यवस्थाकी स्थापनाके द्वारा अपनी जनताको जीवन और सम्पत्तिकी सुरक्षा भी प्रदान की।

आरम्भिक कालमें राज्यके संगठनमें सुरक्षा और सामाजिक संगठन एक अनिवार्य तत्व था। आज भी इसका बहुत ही बड़ा महत्व है, सभ्यताके विकासमें इसका महत्व कम नहीं हुआ है।

इस प्रकार राज्यकी प्रारम्भिक परिभाषा इस प्रकार होनी चाहिए :—

जहाँ कहीं भी मानव समान अधिकारी विद्यमान हो, जो व्यक्तियों और दलोंकी गति विधि पर नियंत्रण रखता हो और जो स्वयं उस नियंत्रण नियमके बन्धनमें न हो, वही राज्य-पति है।

राज्यकी उत्पत्तिके सिद्धान्त—राज्यकी प्रकृतिके सम्बन्धमें और अधिक विचार करनेके पूर्व हमें राज्यकी उत्पत्तिके विभिन्न सिद्धांतोंका अन्तर देख लेना चाहिए। ये विभिन्न सिद्धांत हैं:—

१ सामाजिक समझौतेका सिद्धान्त, २ ईश्वरीय उत्पत्तिका सिद्धान्त, ३ शक्तिका सिद्धान्त ४ जैव या प्राणि सिद्धान्त ५ ऐतिहासिक या विकासका सिद्धान्त।

सामाजिक समझौतेका सिद्धान्त—सामाजिक समझौतेका सिद्धान्त बहुत पुराना है। प्लेटोने इसे अपनी पुस्तक 'प्रजातंत्र' में वर्णित किया है।

इसका सबसे महान और योग्य समर्थक रूसो था। इस सिद्धांतने राज्यकी उत्पत्ति और प्रकृति दोनों ही की व्याख्या करनेकी चेष्टाकी है।

इस सामाजिक समझौतेके सिद्धान्तके अनुसार राज्यके जन्मके पूर्व आदमी प्राकृतिक अवस्थामें रहता था जहाँ पर मनुष्यका जीवन नागरिक विधानसे संचालित नहीं होता था, इसके समर्थकोंमें से हुब्ज कहता है, कि ऐसे राज्यमें जीवन, एकांत, गरीब, गंदा, निर्दय और अल्पकालीन ही होता था। दूसरी ओर रूसो वर्णन करता है, कि वह आरम्भिक स्वर्गकी अवस्था थी, जहाँ पर अगाध स्वतन्त्रता

आनन्द सीमा हीन थी ; जहाँ पर एकताका साम्राज्य था ; जहाँ पर विधानकी जंजीर और राज्यका भार लोगों पर नहीं था ; जहाँ न कोई प्रजा थी और न कोई राजा। रूसोका एक महान वाक्य है कि "आदमी स्वतंत्र पैदा हुआ, पर वह प्रत्येक स्थान पर जंजीरोंमें जकड़ा हुआ है।"

परन्तु प्राकृतिक राज्यमें स्वतंत्रता अरक्षित थी, क्योंकि उसमें हस्तक्षेप करने वालोंको सजा देने वाली कोई सत्ता न थी। इसीलिए लोगोंने आपसमें एक समझौता किया, जिसके द्वारा उन्होंने सुरक्षा और संगठित सम्प्रदायकी सदस्यताके बदले अपनी प्राकृतिक स्वतंत्रताको उसके सुपुर्द किया। यहींसे राज्यकी उत्पत्ति हुई, जो जनताकी रायसे हुए एक समझौते पर आधारित है। हाब्सका कहना है कि जनता द्वारा एक बार प्रदत्त अधिकार राजाके हाथमें रह गया, जो पूर्ण रूपेण और बिना संदेह स्वतंत्र था। लाकका कहना है कि राजा नहीं, वरन् जनता शक्तिशाली थी। रूसोने जनताको पूर्ण रूपेण शक्तिशाली होनेकी शिक्षा दी है।

इस सिद्धान्तने अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दीमें यूरोप और अमेरिकामें राजनीतिक विचारधाराओंके निर्माणमें काफी प्रभाव डाला। फ्रांस और अमेरिकामें इसका विशेष प्रभाव पड़ा। फ्रांसकी राज्य-क्रान्ति और अमरीकी स्वातन्त्र्य-संग्रामकी विचारधाराने अपनी शक्ति इसमें ही संचित की। आदमी स्वतंत्र पैदा हुआ, शासन करने के अधिकारका जन्म, जनताकी अपनी रायसे हुआ और सरकारकी शक्तिका प्रयोग, सर्वसाधारणकी भलाईके लिये होना चाहिये।

यह बात इस भावना पर जोर देती है कि सरकारका अधिकार शासित जनताकी ओरसे प्राप्त हुआ है। इस प्रकार इसके द्वारा सरकारकी तानाशाही पर नियंत्रण रहता है। पर राज्यकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इसे सच्चा सिद्धान्त स्वीकार करना असम्भव है।

नागरिक समाजको भिन्न किसी राज्यकी कल्पना करना कठिन है। यह अप्राकृतिक भी है। इस सिद्धान्तमें स्वतन्त्रताका अर्थ गलत समझा गया है क्योंकि

सच्ची स्वतन्त्रता उस तथाकथित राज्यमें नहीं रह सकती। सच्ची स्वतन्त्रता एक नागरिक-समाज, एक राज्यके अन्तर्गत ही सम्भव है। इस प्रकार यह सिद्धान्त ऐतिहासिक और तर्क शास्त्र दोनों ही दृष्टिकोणसे गलत सिद्ध हुआ। इस सिद्धान्तकी आलोचना इस आधार पर भी की गई है कि यह आदमीको स्थापित सत्ता ध्वानेके लिये प्रेरित करती है और हिंसात्मक-क्रान्तिके लिये आह्वान करती है।

ईश्वरीय उत्पत्तिका सिद्धान्त—इस सिद्धान्तके अनुसार राज्यकी स्थापना ईश्वरनेकी। यह सिद्धान्त राजाके दैवी अधिकारके सिद्धान्तके साथ सम्बन्धित है। जिसके अनुसार ईश्वरके द्वारा चुने हुए और दैवी अधिकारसे शासन करनेवाले कहे जाते हैं। जिसपर किसीको मतभेद न होना चाहिये। यह सिद्धान्त वर्तमान समयमें मृतप्राय हो गया है। संसारमें ऐसा कोई भी सभ्य समाज नहीं जो राज्यकी दैवी उत्पत्ति या राज्यके दैवी अधिकार पर विश्वास करता हो।

शक्तिका सिद्धान्त – इस सिद्धान्तके अनुसार राज्य शक्तिपर आधारित है और शक्ति ही द्वारा इसकी रक्षा होती है। यह सबल द्वारा निर्बलको दास बनाने जानेका परिणाम है। नागरिक समाजका जन्म सम्प्रदायके शक्तिशाली सदस्यका उसके निर्बल सदस्योंके ऊपर नियन्त्रणसे हुआ। इस सिद्धान्तके अनुसार शक्ति ही औचित्य है।

यह सिद्धान्त पूर्णरूपेण नहीं ; परन्तु कुछ अंशोंमें सत्य है। राज्यको निःसन्देह शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु यह पूर्णरूपेण नग्न शक्ति पर ही आधारित नहीं है। राज्यका एक स्थायी आधार शान्त जनताका नैतिक समर्थन है।

राज्यका आधार इच्छा है शक्ति नहीं—वर्तमान राज्यका वास्तविक आधार सम्मति है। महान अंग्रेज राजनीतिज्ञ ग्रीनने कहा है—"राज्यका आधार इच्छा है शक्ति नहीं।"

गणतन्त्रवादकी गतिके साथ, वर्तमान समयमें जनताकी सम्मति पर आधारित है। जर्मनी और इटलीमें तानाशाहीका जोर, गणतन्त्रवादको एक चुनौती था। जनताकी सम्मतिसे शासन करनेके सिद्धान्तको चुनौती था।

प्राणि-सिद्धान्त—प्राणि-सिद्धान्त या प्राणिवादका सिद्धान्त वृक्षों और जानवरोंकी भांति, राज्यको भी एक जीवित प्राणी समझता है। और इसका प्रयोग पूर्णरूपेण व्यक्तिवादसे लेकर समाजवाद तक से सिद्धान्तके समर्थनमें किया जाता है।

इस सिद्धान्तके अनुसार राज्यके व्यक्ति, जीवित शरीरके कीटाणुओंकी भांति हैं, और वृक्षों और पशुओंके अङ्गोंकी तरह राज्यके अपने-अपने विशेष कार्य करते हैं और विकास और विनाशके विधानके अन्तर्गत हैं।

यह सिद्धान्त, इस दृष्टिकोणसे कि यह राज्यके व्यक्तियोंको एक दूसरे पर निर्भर रहने पर जोर देता है। परन्तु राज्यके व्यक्तियोंकी उपमा, प्राणियोंके कीटाणुओंसे देना अतिशयोक्ति पूर्ण है। कीटाणुका व्यक्तिकी भांति कोई अलग अस्तित्व नहीं होता, न उसकी कोई स्वतन्त्र इच्छा होती है। राज्य उसके सदस्योंकी कार्यवाहीके फलस्वरूप अग्रसर होता है, परन्तु प्राणियोंके साथ ऐसा नहीं होता।

ऐतिहासिक विकासवादका सिद्धान्त—राज्य न तो कोई दैवी संगठन है न यह मनुष्यके जान-बूझ कर किये गये प्रयत्नोंका फल ही है। यह प्राकृतिक विकासके द्वारा अस्तित्वमें आया है।

राज्यकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें ऐतिहासिक विकासवादका सिद्धान्त सर्वाधिक मान्य है। इस सिद्धान्तका केन्द्र-विन्दु यह है कि राज्य एक ऐतिहासिक उपज है। जिन तत्त्वोंने इसके विकासमें सहायता पहुँचायी है वे प्रमुख रूपमें तीन हैं—(१) सभ्यता (२) धर्म और (३) राजनीतिक चेतना। राज्यों और साम्राज्योंके निर्माण और विनाशमें आर्थिक कारणोंका बहुत बड़ा हाथ रहा है।

१—सभ्यता चाहे एकताने हो चाहे वह वास्तविक हो या कल्पित, पुराने समाजमें एकताका सूत्र प्रमाणित हुई। सत्ता सर्वप्रथम दल या परिवारमें दृष्टिगोचर हुई।

२—धर्मने भी बहुत ही महत्वपूर्ण भाग अदा किया। धर्म अभी हाल ही में राजनीतिसे अलग किया जा सका है। परन्तु मानव समाजके आरम्भिक दिनोंमें, और उसके बाद भी बहुत दिनों तक मानव जीवन पर धर्मका बहुत बड़ा प्रभाव रहा है।

३—राज्यके विकासमें सबसे महत्वपूर्ण तत्व राजनीतिक चेतना रही है। जिसका अर्थ है—आन्तरिक व्यवस्था और वाह्य सुरक्षा जैसे संयुक्त ध्येयकी प्राप्ति, जो राजनीतिक संगठनके द्वारा ही सम्भव हो सकते हैं। राष्ट्रीय राज्य सर्वसाधारण के त्याग और उत्सर्गके फल हैं। परन्तु सरकारें, राजाओं और अमीरोंकी सरकारें थीं। राजनीतिक संगठन धीरे-धीरे अस्तित्वमें आये। अपने आरम्भिक कालमें उनको शायद ही राजनीतिक कहा जा सके। राजनीतिक चेतना शक्तिशाली हो गयी, और अन्य तत्वोंका महत्व घटता गया, अन्तमें राज्य पूर्णरूपेण भौतिक, सार्वजनिक और स्थानीय बन गया।

सारांश

करीब-करीब स्वतः परिवार विस्तारित होकर दल हुआ और दल गिरोह और गिरोह राज्य बन गया।

गैटेल के अनुसार राज्य के निर्माण में (अ) सभ्यता (ब) धर्म और (स) व्यवस्था तथा सुरक्षा की आवश्यकता की शक्तियों का हाथ रहा।

राज्यकी उत्पत्ति के सम्बन्धमें विभिन्न सिद्धान्त हैं।

जैसे—(१) सामाजिक समझौते का सिद्धान्त (२) ईश्वरीय उत्पत्तिका सिद्धान्त (३) शक्ति का सिद्धान्त (४) पितृवाद का सिद्धान्त (५) ऐतिहासिक विकासका सिद्धान्त—इसमें अन्तिम सार-पूर्ण और सही समझा जाता है।

प्रश्न:—

१—वर्तमान राज्यके विकास पर प्रकाश डालो।

२—किन शक्तियों के द्वारा राज्यका निर्माण हुआ?

३—राज्य की उत्पत्ति का सच्चा सिद्धान्त क्या है?

४—आलोचनात्मक रूपमें राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौते के सिद्धान्तकी व्याख्या करो?

५—"राज्य एक जीवित, संगठित इकाई है, एक निर्जीव पदार्थ नहीं।" इस पर तुम्हारी क्या राय है? (कल० विश्व० १९४०)

६—"राज्य नग्न शक्ति का फल है" राज्य के सिद्धान्त की सारता पर प्रकाश डालो। (कल० वि० १९४१)

७—"राज्य न तो दैवी संगठन है न मनुष्य की इच्छित क्रिया का फल, वह प्राकृतिक विकास के फलस्वरूप अस्तित्व में आया है।"

इस कथन की व्याख्या करो, और इन अवस्थाओं की व्याख्या करो, जिनसे राज्य उत्पन्न हुआ है (कल० वि० १९४४)

८—"राज्य बलवानों के द्वारा दुर्बलों को दास बनाए जाने का फल है राज्य की उत्पत्ति के सिद्धान्त से क्या तुम सहमत हो? कारण के साथ बतलाओ।

(कल० विश्वविद्यालय १९४५)

———

अध्याय ४

राज्य

हमने साधारणतया मानव समाज की उत्पत्ति और उसकी प्रकृति पर विचार किया है, हमने राज्य की उत्पत्ति और विकास का भी पता लगाया है। इस अध्याय में हम राज्य की प्रकृति पर विचार करेंगे और उसके बाद राज्य के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालेंगे इसके लिए यह आवश्यक है कि, राज्य तथा अन्य समाज और संगठनों का अन्तर भली-भांति समझ लिया जाय।

राज्य और समाज—संक्षेप में समाज, व्यक्तियों का एक समूह है, जो एक संयुक्त उद्देश्य से परस्पर आबद्ध है। हम भी इस प्रकार के संगठनों से भली-भांति परिचित हैं जैसे—साहित्यिक समितियां, व्यायाम-शाला, मन्दिर, युवक संघ इनमें से अधिक के उद्देश्य विशेष या सीमित हैं।

राज्य भी एक सङ्घ है—राज्य भी एक समाज है, क्योंकि यह भी मानव प्राणियों का एक संघ है जो एक संयुक्त उद्देश्य से आबद्ध है। परन्तु राज्य अन्य सभी प्रकार के समाज-संगठनों से भिन्न इसलिए है कि, राज्य का उद्देश्य आधार सा सर्वव्यापी है, विशेष या सीमित नहीं। यद्यपि राज्य का प्रथम कर्त्तव्य आन्तरिक शान्ति और बाह्य सुरक्षा है, परन्तु राज्य का उद्देश्य वास्तव में, सीमित नहीं होना चाहिये, क्योंकि उसका उद्देश्य समाज की साधारण भलाई करना है।

अन्य संगठनों की सदस्यता इच्छा पर निर्भर करती है कोई उनका सदस्य हो सकता है, या नहीं हो सकता, परन्तु राज्य की सदस्यता अनिवार्य है। यह इच्छा पर निर्भर नहीं है। इसके अतिरिक्त क्लिब, संघ या अन्य संगठनों के निर्णय की सफलता, उसके सदस्यों द्वारा उसके निर्णय को मानने की इच्छा पर निर्भर रहती

है। सदस्यों को कोई शारीरिक रूप में उनके मानने के लिए बाध्य नहीं कर सकता। दूसरी ओर राज्य, अपने सदस्यों को अपने आदेश या विधान को मानने के लिए बाध्य कर सकता है। इसी लाचार करने या अनिवार्यता में राज्य की सारता निहित है।

अन्य सगठन, संसार के किसी भाग से सदस्य बना सकते हैं, परन्तु राज्य की सदस्यता उसकी अपनी सीमतक ही सीमित है।

एक आदमी एक साथ ही कई सङ्गठनों जैसे, क्लब, धर्म संघ, सामाजिक सेवा समिति के सदस्य हो सकता है, परन्तु कोई भी व्यक्ति एक समय में एक से अधिक राज्यों का सदस्य नहीं बन सकता। अन्य संगठनों के प्रतिकूल राज्य एकमात्र राज्यभक्ति चाहता है, (तुम एक से अधिक राज्य के प्रति वफादार नहीं हो सकते) और राज्य की शक्ति और अधिकार का अन्त नहीं है।

संक्षेप में, राज्य, व्यक्तियों का समूह है, जिसका उद्देश्य सभी सम्भव उपायों से हमारे जीवन को खुशहाल बनाना है। राज्य का साधारण उद्देश्य, सर्व साधारण का हित साधन है। इस विस्तृत और व्यापक उद्देश्य ने ही इसे विशेष महत्त्व प्रदान किया है।

राज्य हमारे, सामाजिक महल की चोटी है। और सभी सङ्गठन राज्य के मातहत हैं इसकी विशेषता, इसकी महानता में है।

राज्य के कार्य और उद्देश्य—राज्य के द्वारा सामाजिक जीवन ही सम्भव नहीं है, बल्कि वह इस सामाजिक जीवन को विस्तृत और समृद्ध भी बनाता है।

राज्य की परिभाषा—समाज के साधारण हितों को देख-रेख करने के लिए जब एक सम्प्रदाय का राजनीति संगठन होता तो, राज्य अस्तित्वमें आता है, हम पहले देख चुके हैं कि, इतिहास में राजनीतिक संगठन का यह प्रवाह धीमा और क्रमोत्तर रहा है। एक बार स्थापित हो जाने पर राज्य में कुछ तत्व आ जाते हैं। ये सभी तत्व गार्नर द्वारा की गयी राज्य की निम्नाङ्कित परिभाषा में आ गये हैं—

"राजनीतिक विज्ञान और वैधानिक कानून के अनुसार, राज्य, कम या अधिक व्यक्तियों का समूह है, जो स्थायी रूपमें निश्चित भूमिपर अधिकार जमाये हैं, जो वाह्य नियंत्रण से स्वतन्त्र या करीब-करीब स्वतन्त्र हैं, और जिसके पास एक संगठित सरकार है, जिसके आदेश का वहां की जनता पालन करती है।"

राज्य की आवश्यक बातें – उपरोक्त तथा अन्य कितनी ही परिभाषाओं के अनुसार राज्य की आवश्यक बातें निम्नलिखित हैं— १) आबादी, (२) सीमा, (३ सरकार और (४) प्रधान। (१) राज्य की प्रथम आवश्यक बात आबादी है। बिना आदमियों के राज्य की स्थापना नहीं हो सकती। राज्य तभी अस्तित्व में आता है, जब कि जनता का कुछ भाग राजनीतिक दृष्टिकोण से संगठित होता है। इसकी सीमा का कोई अन्त नहीं। ईरान की जन-संख्या करीब डेढ़ करोड़ है और चीन की जनसंख्या करीब ४५ करोड़। आबादी का विभाजन—नागरिक, विदेशी और प्रजा के रूपमें हो सकता है।

(२) जबतक उसकी जनता के पास एक निश्चित सीमा नहीं होगी राज्य की *स्थापना नहीं हो सकती*। एक खानाबदोश जाति राज्य को स्थापना नहीं कर सकती, क्योंकि भ्रमणशील राज्य नहीं होता। खानाबदोश जातिका अपना नेता या प्रधान हो सकता है, अपना संगठन हो सकता है, परन्तु तो भी वह राज्य की स्थापना नहीं कर सकती। जबतक वह गिरोह किसी स्थान पर स्थायी रूपमें बस नहीं जाता, राज्य का निर्माण नहीं होता।

राज्य की विभिन्न सीमाएं हो सकती हैं; कोई कुछ ही वर्गमील का हो सकता है, जैसे मोनाको और कोई लाखों वर्गमील की सीमा में फैला हुआ हो सकता है जैसे—रूस, जिसकी सीमा अस्सी लाख वर्गमील से भी अधिक है।

राज्य का निर्णय एक मात्र सीमा ही से जैसे जापान और चीन नहीं करना चाहिए। सीमा और स्थिति का महत्व अधिक है, और अधिकांश देशों के द्वारा

राज्य की राज नीतिक, आर्थिक और सैनिक शक्ति निर्भर करती है। सीमा से प्रजातांत्रिक सरकार की स्थापना में कोई बाधा नहीं पड़ती।

(३) इसके पश्चात सरकार का स्थान आता है। यह भी राज्य का एक आवश्यक अंग है। किसी निश्चित भूमि पर स्थायी रूप में निवास करने वाले लोग ही राज्य की स्थापना नहीं कर सकते। इसके लिए आवश्यक है कि वे राजनीतिक रूप में संगठित हों, क्योंकि राज्य, हमारे सार्वजनिक कार्य के संचालन और हमारे सार्वजनिक हितों के साधन के लिए ही संगठित होता है। सरकार राज्य की मशीनरी है और इसी मशीनरी के द्वारा राज्य के अधिकारों का प्रयोग होता है।

(४) अन्त में प्रधानता का स्थान है जो राज्य की सबसे प्रमुख बात है। राज्य का निर्माण, व्यक्तियों की गतिविधि, पर नियंत्रण रखने और उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए हुआ। इसलिए राज्य को अपनी सीमा के भीतर के सभी व्यक्ति, समाज, दल और संगठनों पर नियंत्रण रखने के लिए महान, एकमात्र असीमित और अन्तिम अधिकार होना चाहिए। राज्य के इस महान अधिकार का नाम प्रधानता है। जैसा कि बोडिन ने कहा है, राज्य इसलिए प्रधान है कि, यह सभी को आदेश देता है और अन्य कोई भी इसे आदेश नहीं दे सकता।

प्रधानता आन्तरिक और बाह्य दोनों ही है। राज्य के लिए यह प्रधानता आवश्यक है।

एक निश्चित भूमि पर बसी हुई जनता, जिसके पास अपनी सरकार भी है, राज्य का निर्माण नहीं कर सकती। यह विदेशी नियंत्रण से स्वतंत्र होना चाहिए। अन्य शब्दों में उसे बाह्य प्रधानता प्राप्त होनी चाहिए। इसी प्रकार उसे आन्तरिक मामलों में भी प्रधान होनी चाहिए।

राज्य की यह महानता या महान अधिकार इसके सभी आन्तरिक तथा बाह्य कार्यों में होनी चाहिए। इसीका नाम प्रधान शक्ति है और राज्य का सार-तत्व उसकी प्रधानता ही सरकारों में अन्तर्निहित है।

वैधानिक प्रधानता—वैधानिक प्रधानता का अर्थ राज्य की महान शक्ति है—कानूनी दृष्टिकोण से उसका महान अधिकार है। कानून के अनुसार ब्रिटेन में महान शक्ति या अधिकार सम्राट और पार्लियामेंट के हाथ में है और वही वैधानिक रूप में प्रधान है।

दूसरी ओर राजनीतिक प्रधानता उस राजनीतिक शक्ति या अधिकार की ओर निर्देश करती है, राज्य में जिसके आदेश का पालन होता है। राजनीतिक रूप में वह संगठन प्रधान है, जिसके आदेश का राज्य के नागरिक पालन करते हैं" (डायसी) ब्रिटेन में सम्राट की पार्लियामेंट वैधानिक प्रधान है, परन्तु राजनीतिक प्रधानता वहां के मत-दाताओं के हाथ में है। क्योंकि अन्त में मत-दाता का समूह ही सम्राट और पार्लियामेंट को अपनी राय मानने को लाचार करता है।

सार्वजनिक प्रधानता—राजनीतिक प्रधानता से एक कदम आगे सार्वजनिक प्रधानता का स्थान है। हम जानते हैं कि ग्रेटब्रिटेन में निर्दिष्ट मत-दाता राजनीतिक रूप में प्रधान हैं। परन्तु वास्तविक रूपमें ब्रिटेन में वहां की पूरी जनता मत-दाता है, अन्तिम राजनीतिक शक्ति और राजनीतिक प्रधानता, जनता के हाथ में है। इस प्रकार अन्तिम रूप में जनता ही प्रधान है। सार्वजनिक प्रधानता, जिसके अनुसार प्रधानता जनता के हाथ में समझी जाती है। इसके सबसे बड़े समर्थक रुसो द्वारा अठारहवीं शताब्दी में घोषित की गयी।

दो महान राष्ट्र फ्रांस और अमेरिका ने इस नारे को अपनाया और उन्होंने जनता की प्रधानता पर जोर देकर दो महान व्यक्तियों के परचत दो महान आधुनिक प्रजातन्त्र की स्थापना की। सार्वजनिक या जनता की प्रधानता आज वर्तमान साम्राज्य के लिए परमावश्यक मानी जाती है। यह गणतंत्रवाद की आधार-शिला है।

इस प्रकार राज्यमें ४ प्रमुख बातें सम्मिलित हैं—(१) आबादी (२) सीमा (३) संगठन या सरकार और (४) प्रधानता। प्रुरोफेसर विल्सन के राज्य की निम्नलिखित परिभाषा में चारों बातें आ गयी हैं—

एक निश्चित सीमा के भीतर कानून के लिए संगठित जनता को राज्य अथवा राष्ट्र कहते हैं, किन्तु वर्तमान कालमें बादशाहीके लोप होनेसे राष्ट्र शब्द ही का प्रयोग शुद्ध होता है।

क्या भारत एक राष्ट्र है—हमने देखा है कि राष्ट्र के चार अनिवार्य अंग हैं—आबादी, सीमा, सरकार और प्रधानता या सार्वभौम शक्ति। किसी भी राष्ट्रमें इन चारों बातों का होना आवश्यक है। परन्तु क्या भारत में चारों बातें पायी जाती हैं? भारत की आबादी बहुत बड़ी है, उसकी सीमा भी बहुत बड़ी है, उसकी एक सरकार भी है, परन्तु १५ अगस्त १९४७ तक वह स्वतंत्र नहीं था। आन्तरिक या बाह्य प्रधानता उसे प्राप्त न थी।

क्या डोमिनियनोंमें राष्ट्र हैं—कनाडा, आस्ट्रेलिया, आयरिश-फ्री स्टेट, दक्षिणी अमिका, न्यूज़ीलैण्ड (और १५ अगस्त १९४७ के पश्चात्) भारत और पाकिस्तान ब्रिटिश डोमिनियन बन गये हैं। प्रश्न जटिल और मतभेद पूर्ण है। इस बातमें सन्देह नहीं कि डोमिनियनों के आज आन्तरिक मामलों में, तथा बाह्य मामलों में भी जैसा कि वह दावा करते हैं, स्वतन्त्र हैं। अगर डोमिनियन राष्ट्रों को प्रधानता प्राप्त है तो वह अवश्य राष्ट्र हैं।

उनके राष्ट्र की वैधानिक और अन्तर्राष्ट्रीय स्वीकृति तभी सम्भव हो सकती है जब कि वह संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की तरह अपनी प्रधानता की घोषणा कर दें। जबतक वह ऐसा नहीं करते वह वास्तव में राष्ट्र नहीं हो सकते हैं, परन्तु वैधानिक रूपमें वह राष्ट्र नहीं कहे जा सकते और ब्रिटेन से तथा परस्पर का उनका सम्बन्ध, ग्रेट ब्रिटेन के समान भागीदार के रूपमें है जैसा कि, **वेस्टमिनिस्टर विधान** में कहा गया है।

राष्ट्र और सरकार—साधारण भाषामें "राष्ट्र" और "सरकार" का प्रयोग एक ही अर्थ में होता है। परन्तु राष्ट्र की बनावट पर विचार करने से इनका अन्तर सम्मुख आता है। राजनीतिक विज्ञान के छात्रको दोनों का अन्तर भलीभांति से समझना चाहिए। "राष्ट्र, राजनीतिक रूपमें संगठित समुदाय है, और सरकार उस संगठन का प्रदर्शन है। राष्ट्र सम्पूर्ण है और सरकार उसका एक

भाग है। सरकार राष्ट्रके प्रतिनिधि या यंत्र है जिसके द्वारा राष्ट्र अपनी इच्छा का निर्माण कर उसे कार्य रूपमें परिणत करता है।

जैसा कि गार्नर ने कहा है, सरकार उस एजेंसी, मैजिस्ट्रेसी या संगठन का सामूहिक नाम है, जिसके द्वारा राष्ट्र की इच्छा का निर्माण, उसका प्रदर्शन और उसकी पूर्ति होती है। जिस प्रकार एक पशु का मस्तिष्क स्वयं वह पशु नहीं, एक कारपोरेशन का बोर्ड आफ़ डायरेक्टर्स स्वयं कारपोरेशन नहीं, उसी प्रकार सरकार राष्ट्र का एक प्रमुख अङ्ग है, स्वयं राष्ट्र नहीं है।

Good fact

राष्ट्र और सरकार के भेद –

(१) राष्ट्र में पूरी जनता सम्मिलित है, परन्तु सरकार उसके एक भाग ही से बन सकती है।

"सरकार" या "शासन यंत्र" आदमियों के उस छोटे से संगठन की ओर निर्देश करता है, जो राष्ट्र के यंत्र का नियंत्रण करते हैं और शासन-प्रबन्ध चलाते हैं।

(२) सरकारें अल्पकालीन होती हैं, (वे परिवर्तित हो सकती हैं या उनका अन्त हो सकता है) परन्तु राष्ट्र स्थायी है।

सरकार की रूपरेखा और बनावट में महान परिवर्तन होनेपर भी राष्ट्र चलता रहता है।

उदाहरण के लिए साम्राज्यवादो के स्थान पर प्रजातंत्र की स्थापना हो सकती है (जैसा कि फ्रांस में राज्यक्रान्ति के बाद हुआ)। एक राज घराने का अन्त होकर दूसरे की स्थापना हो सकती है, (जैसा कि अफ़ग़ानिस्तान में भूतपूर्व बादशाह अमानुल्ला के स्थान पर स्वर्गीय बादशाह नादिर खां के गद्दी पर बैठनेपर हुआ) परन्तु राष्ट्र का जीवन भंग नहीं होता है।

(३) किसी भी व्यक्ति को सरकार के विरुद्ध कोई अधिकार हो सकता है, परन्तु वैधानिक रूप में राष्ट्र के विरुद्ध उसे कोई अधिकार नहीं रहता है।

राष्ट्र हमारे सभी अधिकारों की नींव या स्रोत है। वह कुछ अधिकार

व्यक्ति को और कुछ सरकार को प्रदान करता है। अगर सरकार व्यक्ति के अधिकार को गैर कानूनी अपहरण करती है (अगर वह उसकी सम्पत्ति पर अधिकार करती है या उसे कैद करती है) तो उस व्यक्ति को वैधानिक रूप में इसकी क्षति पूर्ति कराने का अधिकार है। वह सरकार के विरुद्ध भी अपने अधिकार को मनवा सकता है।

परन्तु किसी भी व्यक्ति को राष्ट्र के विरुद्ध कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि किसी भी व्यक्ति द्वारा राष्ट्र के विरुद्ध जाने का अर्थ स्वयं अपने विरुद्ध जाना है। राष्ट्र के विरोध करने का अधिकार एक मात्र नैतिक है। यह अधिकार कदापि वैधानिक नहीं हो सकता है।

(४) राष्ट्र अधिकांश भावात्मक है और सरकार स्थूल है।

सितम्बर १९३९ में ग्रेट ब्रिटेन ने जो जर्मनी के विरुद्ध युद्ध घोषित किया, वह वास्तव में उपरोक्त दोनों देशों की सरकारों के निर्णय से हुआ, जिनका नेतृत्व चेम्बरलेन और हिटलर के हाथों में था। राष्ट्र स्वयं कभी कार्य नहीं करता, कार्य सरकार ही करती है।

जनता, जाति और राष्ट्र—अब "जनता" का "जाति" और "राष्ट्र" से श्रेणी विभाग करना आवश्यक है। राष्ट्र एक राजनीतिक सामान्य प्रत्यय है। यह मुख्यतः एक खास वर्ग के लोगों के राजनैतिक संघ की ओर संकेत करता है। किन्तु जनता और राष्ट्र जैसे सामान्य प्रत्यय की ओर संकेत करनेवाला संघ अपेक्षाकृत कुछ ज्यादा गंभीर होता है।

फिलहाल हमलोग "जनता" और "राष्ट्र" का ही श्रेणी विभाग करें, जिसमें पहले जहाँ कि संपूर्णतः जाति सम्बन्धी या जाति विषयक भावना है, वहीं दूसरा जाति विषयक एकता एवम् राजनैतिक संघ की ओर संकेत करता है।

किन्तु जब "जाति" और "राष्ट्र" का श्रेणी विभाजन किया जायगा, तो हम लोग जाति की राजनैतिक दृष्टि की ओर ध्यान न देंगे, बल्कि उन असामान्य गहरे तत्वों पर जोर देंगे, जो लोगों के संगठन को एक राष्ट्र में विकसित होने देता है।

जाति—एक आदर्श जाति की परिभाषा इस तरह है कि समाज का एक

भाग भौगोलिक एवम् प्राकृतिक सीमाओं द्वारा दुनिया के शेष भागसे अलग रहे—वहाँ के बाशिन्दों की एक जातीय उत्पत्ति हो—एक ही भाषा का व्यवहार करें—सम सभ्यता, सम रीति और मानसिक या नैतिक गुण दोष हों एवम् एक ही प्रकार की विद्या और मौखिक विवरण हो। आज के धार्मिक सहिष्णुता के युग में धार्म्मिक मतभेद, जो पहले मुख्य तत्व समझा जाता था,—अब कोई महत्व नहीं रखता।

जाति और उसकी परीक्षा—वास्तव में ऐसा शायद ही कोई जाति है, जिसमें उपरोक्त सभी बातें मौजूद हों। राजनैतिक विचारकों का अपने ही में मतभेद हो जाता है, जब वे विभिन्न तत्वों, जिनसे किसी राष्ट्र का निर्माण होता है, को सम्बन्धित विशेषताओं का वर्णन करते हैं। किसी एक राजनीतिज्ञ का कथन है कि समजातीय किसी राष्ट्र को अस्तित्व को स्थिर करने की सबसे मुख्य परीक्षा है। दूसरे के लिए सभ्यता का संघ ही जाति की परीक्षा है, किन्तु उसके लिए सभ्यता की एक जातीय उत्पत्ति से विशेष महत्व नहीं है। रूस, स्विटजरलैंड, कनाडा एवम् अन्यान्य राष्ट्र को उदाहरण रूप में हम देते हैं, कि एक जाति में भी एक भाषा व एक धर्म नहीं होता है। अतः यह निश्चित है कि उपरोक्त वर्णित सभी बातों का एक साथ होना सभव नहीं, जब तक कि एक राष्ट्र का निर्माण करने में सभी का साथ न हो। थोड़ा ही बहुत है और इस तरह के दृष्टान्तों की इतिहास में कमी•नहीं है, जिसके द्वारा हम जानते हैं कि किसी राष्ट्र का अस्तित्व उसके जाति और धर्म संघ से नहीं, बल्कि उसके आर्थिक और राजनैतिक तत्वों से है।

जाति उस समय राष्ट्र बन जाती है, जब वह सोचती है कि वह एक राष्ट्र है। स्पेंगलर का कथन है कि राष्ट्र न तो भाषा सम्बन्धी या राजनैतिक या जीव विद्या सम्बन्धी अस्तित्व है, बल्कि आत्मिक या आध्यात्मिक अस्तित्व है। रेनन के अनुसार सिर्फ एक ही भाषा व्यवहार करना या एक ही जातीय गुट के होने से ही किसी राष्ट्र

का निर्माण नहीं होता है, बल्कि अतीत में किसी महत्वपूर्ण वि
किए जाने एवम् भविष्य में भी उसी तरह पूर्ण करने की मनोवृत्ति से हो किसी राष्ट्र का निर्माण हो सकता है। अन्य साधारण चाह द्वारा राष्ट्र के विभिन्न वर्गों को एक दूसरे के निकट लाकर, यह आपस का बन्धन, सालोंसाल और भी गहरा होता जाता है। आपसी रीति-रस्म और मानसिक एवम् नैतिक गुण दोषों की इस तरह वृद्धि होती है।

क्या हिंदुस्तानी एक जाति हैं ?—पश्चिमी आलोचकों में से कुछ इसको मानने को तैयार नहीं होंगे, कारण हिन्दुस्तान की रीति-रस्म, बोलचाल, धर्म, जाति आदि एक दूसरे से भिन्न हैं। किन्तु असल बात पर वे ध्यान नहीं देते हैं कि—उपरोक्त विभिन्नताओं के रहने के बावजूद भो आपस में मौलिक एकता है जो सभी भारतीय सभ्यता और रीति-रस्म से मिलते-जुलते हैं।

हिंदुस्तानी एक जाति है, चूंकि सभी भारतीय इस बात को महसूस करते हैं कि वे एक जाति हैं। सभी भारतीय आपसी सहानुभूति में जकड़ित हैं, आत्म चेतना से रंगे हुए हैं, एवम् राजनैतिक आत्म-दृढ़ता से उत्तेजित किए गये हैं। राष्ट्रीयता की भावना उभय रीति-रस्म और सभ्यता, महाभारत काल से आजतक के उभय राजनैतिक परम्परागत, अतीत में संस्कृत और फारसी की एवम् वर्तमान में अंग्रेजी हिन्दी की उभय भाषा तथा हिन्दू-मुसलमान और अंग्रेजी काल में स्थापित किये हुए संयुक्त कानून और शिक्षा केन्द्र पर ही आधारभूत है। निःसन्देह उपरोक्त तत्त्व राष्ट्रीयता के लिए उतना जोरदार नहीं है, जितना कुछ अन्य यूरोपीय राष्ट्रों का है। अतः भारत में राष्ट्रीयता की भावना का अन्य जातियों की तरह उनका विकास हुआ है।

यह बताया ही जा चुका है कि राष्ट्र के निर्माण के लिए सभी तत्त्वों का एक साथ होना आवश्यक नहीं है। कुछ ही पर्याप्त है। यहांपर शिल्प-सम्बन्धी जांच की तो आवश्यकता ही नहीं है।

भारतीयों को एक बड़े जाति में परिवर्तित होने में तो धार्मिक मतभेद अधिक

दिनोंतक रोके नहीं अटका सकता है। इस तरह के परिवर्तित होने के नियम कुछ नैतिक भावना के लोगों एवम् राजनैतिक तथा आर्थिक विचार के वर्गों के मन में ही उठता है। भारतवासियों को अधिक से अधिक एकता के सूत्र में बांधना ही राष्ट्रीयता की आध्यात्मिक नीति है। संसार के अन्य राष्ट्र भारत के संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थान पाने से तो अब भारत को राष्ट्र मानने लगे हैं।

राष्ट्रीयता—जिमर्न के अनुसार राष्ट्रीयता किसी नियत देश से सम्बन्धित विशेष प्रकार की गहरी भावना, सम्बन्ध और प्रतिष्ठा के संघ-बद्ध मनोभाव का ही रूप है।

राष्ट्रीयता को आत्मिक सिद्धान्त या मनोभाव कहकर भी वर्णित किया गया है, जो जनता को संघ-बद्ध करता है और जो जाति विषयक उत्पत्ति, साधारण निवास, भाषा की पहचान, एक से रीति रिवाज, राष्ट्रीय आदर्श, महत्वाकांक्षा, धार्मिक विश्वास तथा नैतिक और भौतिक हितों की समानता से बनती है।

राष्ट्र और राष्ट्रीयता—आरम्भ में राष्ट्र और राष्ट्रीयता दोनों ही एक अर्थ में प्रयुक्त थे और आज भी बहुत से प्रमुख लेखक इनका उसी अर्थ में प्रयोग करते हैं। परन्तु वर्तमान विचारधारा के अनुसार इन दोनों शब्दों में विभिन्नता मानी जाती है। वर्तमान समय में एक राष्ट्र में अन्य बातों के अतिरिक्त राजनीतिक एकता का आभास होता है, इसका अर्थ एक ऐसे जन-समूह से है जो अन्य सबसे भिन्न हैं, उसकी अपनी राजनीतिक एकता है, अपनी राष्ट्रीयता है और दूसरी ओर इसका अर्थ जनता के एक ऐसे समूह से है जो मौलिक जातीयता, भाषा-परम्परा, इतिहास या स्वार्थ की एकता से सम्बन्धित हैं और इनका राजनीतिक संघ-बद्धता से कोई संबन्ध नहीं। दूसरी ओर एक राष्ट्र का अर्थ मानवता के एक निश्चित भाग से है, राष्ट्रीयता एक भावात्मक नैतिक सिद्धान्त की ओर निर्देश करती है जो राष्ट्र का आधार है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब मानवता का एक भाग (अ) राष्ट्रीयता की भावना से प्रोत्साहित होकर (ब) एक राज्य के रूप में संगठित है या संगठित होने योग्य है तभी राष्ट्र बनता है।

राष्ट्रीयता का सिद्धान्त—एक जाति एक राष्ट्र—वर्तमान राष्ट्र का आधार राष्ट्रीयता का सिद्धान्त—एक जाति एक राष्ट्र है। हर एक जाति का एक अलग राष्ट्र होना चाहिए, हरएक राष्ट्र में एक जाति होनी चाहिए। राष्ट्रीयता के आधार पर राष्ट्र के पुनर्गठन के सिद्धान्त का समर्थन उस विश्वव्यापी इच्छा से होता है जिस के द्वारा दुर्बल जातियों का शोषण बन्दकर उनके साथ आर्थिक और राजनैतिक न्याय करने की प्रेरणा मिलती है। जो राष्ट्र अपनी गुलामी के विरुद्ध विद्रोह करते हैं उनको इस सिद्धान्त से बल प्राप्त होता है। यह जातियों के आत्म-निर्माण का आधार है जिसके लिए प्रेसिडेण्ट विल्सन ने जोरदार शब्दों में सिफारिश की थी। इसके बिना संसार में सच्चा गणतंत्र, प्रजातंत्रवाद और शान्ति असंभव है।

वर्तमान जाति-राष्ट्र, एक जाति एक राष्ट्र:—वर्तमान समय में प्रायः प्रत्येक जातिका संगठन अपने ही राष्ट्र से हुआ है। जैसे—चीन और इसका संगठन उस रूप में नहीं हुआ है तो अपना राष्ट्र प्राप्त करने की चेष्टा करता है जैसे—भारत।

आदर्श सम्पन्न जाति राष्ट्र की स्थापना संभव नहीं है और न यह सभी अवस्थाओं में निश्चित ही है। कभी-कभी यहूदियों जैसी एक कौम की राजनीतिक एकता में जो विश्व के विभिन्न भागों में रहते हैं, प्राकृतिक बाधायें उपस्थित होती हैं। इसी सिद्धान्त को मजबूत बनाने के लिए छोटे-छोटे कितने ही जाति-राष्ट्र का सृजन करना पड़ेगा। बहुत से जाति-राष्ट्रों की उपस्थिति से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध की जटिलता में वृद्धि होगी।

राष्ट्रीयता कहाँ तक वर्तमान राष्ट्र का संतोषपूर्ण आधार है?— जिमर्न ने राष्ट्रीयता की राजनीतिक स्वीकृति के प्रति इस आधार पर आपत्ति की है कि इससे राष्ट्र का आधार न्याय प्रजातंत्र सार्वजनिक सम्मति, नैतिकता या विश्वव्यापी मानवता न होकर पक्षपातपूर्ण तानाशाही जैसी कोई दूसरी वस्तु होगी। वर्तमान राष्ट्र के आक्रमणात्मक जातीय आधार पर संगठन के प्रति एक विश्वव्यापी असंतोष की भावना फैली हुई है।

संयुक्त राष्ट्र-संघ इस भावना का एक रूप है। संयुक्त अमेरिका और सोवियत यूनियन जैसे संयुक्त राष्ट्र इतने सफल हुए हैं कि लोग आजकल एक विश्वसंघ की कल्पना करने लगते हैं।

प्रश्नावली

(१) समाज और राष्ट्र का भेद बताओ और संक्षेप में उनके सम्बन्ध वर्णन करो (यू० पी०-इन्टर बोर्ड १९३०)

(२) राज्य की परिभाषा लिखो और उसके उद्देश पर प्रकाश डालो कल० विश्व० १९३३

(३) एक राष्ट्र, एक जाति का समूह है जो एक निश्चित सीमा के भीतर सगठित है। व्याख्या करो (कल० विश्व०-१९२७)

(४) जाति की आवश्यक पहचान क्या है ? जाति और राष्ट्रसत्ता सरकार का अन्तर बताओ (कल० विश्व० १९२८)

(५) राष्ट्र क्या है ? क्या भारत एक राष्ट्र है ? (कल० विश्व० १९३०)

(६) राष्ट्र और सरकार का प्रभेद बताओ। (कल० विश्व० १९३१)

(७) राष्ट्र का क्या अर्थ है ? राष्ट्र और राष्ट्र-सत्ता के बीच अन्तर बताओ।

(८) राष्ट्रीयता के प्रमुख अंग क्या हैं ? क्या राष्ट्रीयता वर्तमान राष्ट्र का एक संतोषपूर्ण आधार है ?

(९) क्या यह बात ठीक है कि भारत एक जाति है। भारतीय जातीयता के विकास पर प्रकाश डालो (यू० पी० बोर्ड १९२९)

(१०) राष्ट्र का क्या अर्थ है ? राष्ट्र, समाज और सरकार का अन्तर बताओ। (ढाका विश्व० १९४८)

अध्याय ५

स्वतंत्रता और अधिकार

स्वतंत्रता क्या है—संस्कृत के अनुसार स्वतंत्रता का अर्थ अवरोध या दासता के विपरीत अवस्था है। साधारणतया स्वतंत्रता का अर्थ अवरोध के अभाव से समझा जाता है। परन्तु स्वतंत्रता एक नकारात्मक अवस्था ही नहीं है। इसका अर्थ उस शक्ति से है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने स्वतंत्र इच्छानुसार अपने व्यक्तित्व का विकास करता है और उसमें कोई वाह्य रुकावट नहीं होती। कोई भी व्यक्ति एक मात्र अवरोध के अभाव में ही सुखी नहीं रह सकता। वास्तवमें कई अवस्थाओं में यह अवरोध, नियम और अनिवार्यता प्रसन्नता के लिए आवश्यक है। स्वतंत्र व्यक्ति अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता है। जैसे, अगर आपको अपनी गति-विधि की स्वतंत्रता है तो आप आजादी से जहां चाहें आ-जा सकते हैं और कोई भी आपकी गति-विधि पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता।

परन्तु अगर ध्यान से देखा जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि साधारणतया स्वतंत्रता का अर्थ अवरोध से मुक्त है। परन्तु ऐसी स्वतंत्रता एक अन्धकारपूर्ण नहीं हो सकती। वास्तव में एकाधिकारपूर्ण स्वतंत्रता या किसी भी अवरोध का अभाव स्वतंत्रता के वरदान को अभिशाप बना देगा। उदाहरणार्थ अगर आपकी गति-विधि की स्वतंत्रता असीमित है तो आपके पड़ोसी को अपने मकान में निवास करने की स्वतंत्रता संकट में होगी। क्योंकि वैसी अवस्था में आप कभी भी अपने उस पड़ोसी के मकान में प्रवेश कर उसकी स्वतंत्रता में बाधा पहुंचा सकते हैं, इसीलिये सच्ची स्वतंत्रता अराजकता से भिन्न है।

इस प्रकार दो प्रकार की स्वाधीनता है—एक बनावटी, जब कि आदमी को उसके

सभी इप्सित कार्यों के करने की स्वतंत्रता हो। द्वितीय, वास्तविक जिसमें मनुष्य को कर्तव्यपूर्ण करने की स्वतंत्रता हो। द्वितीय स्वाधीनता ही वास्तविक स्वाधीनता है, प्रथम तो एक प्रकारकी अराजकता है।

सामाजिक जीवन के लिए विधान आवश्यक है। क्योंकि सार्वजनिक भलाई के लिए सार्वजनिक नियमों के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। अगर आपको हत्या करने की स्वाधीनता न दी जाय तो इससे आपकी अपनी स्वतंत्रता संकट में नहीं प्रतीत होगी। अगर विधान आपको अपने बच्चों को शिक्षा देनेके लिए लाचार करता है तो इससे स्वाधीनता में बाधा उपस्थित नहीं होगी।

इस प्रकार स्वतंत्रता एक मात्र अवरोध का अभाव ही नहीं है, बल्कि वह एक अधिक निर्माणात्मक वस्तु है। लास्की के अनुसार स्वतंत्रताका अर्थ ऐसे वातावरण को बनाए रखना है जिसमें मनुष्य को अपने विकास के सर्वश्रेष्ठ साधन उपलब्ध हों। इस प्रकार स्वतंत्रता उन अधिकारों और सुविधाओं का केन्द्र है। जो राज्य के अन्तर्गत मानव के सर्वोत्तम हित के लिए आवश्यक है।

स्वाधीनता के भेद

स्वाभाविक स्वतंत्रता—स्वाभाविक स्वतंत्रता वह है जिसका उपयोग मनुष्य स्वभाव की काल्पनिक अवस्था में कर सकता है जब कि सभ्य समाज का अस्तित्व न हो। ऐसा लगता है कि इस प्रकार की स्वाधीनता असीमित थी क्योंकि इसपर प्रतिबन्ध लगाने के लिए कोई राज्य नहीं था। परन्तु वास्तव में स्वाभाविक अवस्था में कोई स्वतंत्रता नहीं थी क्योंकि इसमें मनुष्य अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए स्वतंत्र था, क्योंकि जीवन की ऐसी अवस्था जो शारीरिक रूपमें बलवान है उन्हीं को अच्छी लगेगी। दुर्बलों को इसमें किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं होगी। और, अगर होगी भी तो बलवानों की कृपासे। ऐसे राज्य को अराजकतापूर्ण राज्य कहा जा सकता है और अराजकता में वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। सदुपयोगके बिना स्वतंत्रता का कोई अस्तित्व नहीं।

नागरिक स्वाधीनता—नागरिक स्वाधीनता वह है जिसका उपयोग व्यक्ति राज्य के अन्दर या सभ्य समाज में करता है और मुख्यतः इसके अन्तर्गत धार्मिक स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वाधीनता, कार्य और गति-विधि की स्वतंत्रता और वैधानिक दृष्टिकोण से एकता का समावेश है। रूसो ने कहा है कि राजनीतिक समाज की स्थापना से मनुष्य किसी भी प्रकार के असीमित अधिकार से हाथ धोता है जो स्वाभाविक अवस्था में उसे प्राप्त थे और उसे नागरिक स्वतंत्रता और स्वामित्व प्राप्त होते हैं। राष्ट्र नागरिक स्वाधीनता का सृजन करता है जिसका संगठन विधान के द्वारा होता है और निरंकुश राज्य के बदले वैधानिक शासन की स्थापना करता है। नागरिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत वह सभी अधिकार आते हैं जो वैधानिक हैं और जो व्यक्तिगत तथा सरकारी हस्तक्षेपों से उसकी रक्षा करते हैं, जैसे गति-विधि की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है।

स्वतंत्रता और अधिकार—क्या व्यक्तिगत स्वतंत्रता और राज्य के अधिकार के बीच कोई मतभेद है? इस बात को देखते हुए कि राज्य के अधिकार नियंत्रण लगाते हैं और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अर्थ नियन्त्रण का अभाव है बाहर देखने पर ऐसा लगता है कि वास्तव में दोनों के बीच मतभेद है।

गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर पता चलता है कि स्वतंत्रता और अधिकार सहयोगी और एक दूसरे के समर्थक हैं। वे परस्पर विरोधी नहीं हैं। राष्ट्र या सरकार की स्थापना जो व्यक्तियों की गति-विधि पर नियंत्रण करने के लिए होती है व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नष्ट नहीं करती। इसके विपरीत राष्ट्र वास्तविक स्वतंत्रता को जन्म देता है और सभी के लिए सुलभ और निश्चित बनाता है। अराजकता का अन्त कर राष्ट्र सभी के लिए सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त करता है और इससे कुछ थोड़े से लोगों की प्राकृतिक स्वतंत्रता को ही बाधा पहुंचती है। मद्य-निषेध का विधान जो सरकार द्वारा लागू होता है उसका अर्थ व्यक्तिगत स्वाधीनता में बाधा पहुंचाना नहीं है। उसका उद्देश्य सभी के लिये सर्वाधिक स्वतंत्रता प्राप्त करना है। इसलिए विधान

स्वतंत्रता की एक आवश्यक शर्त है। एक मात्र वैधानिक रूपमें कार्य करके ही कोई व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता का उपयोग बिना किसी दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा पहुंचाये कर सकता है। इस प्रकार विधान स्वतंत्रता का वास्तविक रक्षक भी है। जो लोग यह सोचते हैं कि व्यक्तिगत स्वतंत्रता राष्ट्र के अधिकार के प्रतिकूल है उनका सोचना भ्रमात्मक है, क्योंकि राष्ट्र और व्यक्ति के बीच कोई मतभेद नहीं है। इन्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि स्वतंत्रता का अर्थ व्यक्ति को अपनी मनचाही इच्छाओं की पूर्ति का अधिकार प्रदान करना नहीं है। इससे स्वाधीनता नहीं, अराजकता का साम्राज्य विस्तृत होगा। राष्ट्र इसलिये विधान बनाता है कि नागरिक को अपनी और समाज की भलाई के कार्यों में बाधा न उपस्थित हो। राष्ट्र का जितना ही विकास होता जाता है उतना ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता का राष्ट्र के अधिकार के साथ समन्वय होता है। एक आदर्शपूर्ण राष्ट्र में विधान पूर्ण है और स्वतंत्रता प्रिय नागरिकों को कोई शिकायत नहीं रहती। ऐसे राष्ट्र में सभी प्रकार के मतभेद दूर कर दिये जाते हैं और व्यक्ति अपने आदर्शों का राष्ट्र के साथ सामञ्जस्य स्थापित करता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि राष्ट्र के अधिकार स्वतंत्रता के विरोधी नहीं बल्कि स्वतंत्रता प्राप्ति के सच्चे साधन हैं। इसलिए व्यक्तिगत स्वतंत्रता और उस स्वतंत्रता के आधार सुसंगठित राष्ट्र के अधिकार के बीच कोई मतभेद नहीं हो सकता। यह बात ठीक है कि स्वाधीनता की भावना व्यक्तिगत तथा राष्ट्र के विकास की जड़ है।

राजनीतिक स्वतंत्रता—राजनीतिक स्वतंत्रता जनताको स्वतंत्रता का क्षेत्र ही नहीं प्रदान करती बल्कि राष्ट्र के संचालन में उसे अधिकार भी प्रदान करती है।

राजनीतिक स्वतंत्रता उसे कहते हैं जहां पर जनता या उसके बहुमतको उस देशको सरकार के संचालनका अधिकार होता है। दूसरे शब्दों में राजनीतिक स्वतंत्रता स्वशासन प्राप्त राष्ट्र या गणतांत्रिक राष्ट्रों में पायी जाती है। इसके

अन्तर्गत मतदान और सार्वजनिक पद प्राप्त करने के अधिकार आते हैं। एक राष्ट्र राजनीतिक स्वतंत्रता के अभावमें भी बहुत कुछ नागरिक स्वतंत्रता का उपयोग कर सकता है। लास्की के अनुसार राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए दो शर्तें आवश्यक हैं (१) सार्वजनिक शिक्षा (२) निष्पक्ष और स्वतंत्र समाचार-पत्र।

आर्थिक स्वतंत्रता—आर्थिक क्षेत्रों में भी स्वतंत्रता का बहुत बड़ा महत्व है। वास्तवमें स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक या सच्ची नागरिक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त हो सकती। आर्थिक स्वतंत्रता का अर्थ व्यक्ति के दैनिक जीवन की व्यवस्था और उसके प्राप्त के साधन हैं। व्यक्ति को बेकारी का भय न हो और वह भावी अभाव से ग्रसित न हो। आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में वास्तविक स्वतंत्रता नहीं प्राप्त हो सकती। जहां पर लोगों के अधिकार दूसरों की इच्छा पर निर्भर करते हैं वहां वास्तविक स्वतंत्रता नहीं है। इसलिए वर्तमान राष्ट्र व्यक्ति के आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त की चेष्टा कर रहे हैं। आर्थिक स्वतंत्रता के अन्तर्गत व्यक्ति के काम करने के अधिकार लघुत्तम पारिश्रमिक, खेतों और कारखानों म काम करने के निर्धारित घण्टे एवं अवकाशकी व्यवस्था संघ-बद्ध होने के अधिकार, बुढ़ापा, बीमारी, बेकारी, दुर्घटना आदि के लिए व्यवस्था में आते हैं। हमारे नये राष्ट्रीय विधान के अन्तर्गत भारतीय जनता की आर्थिक स्वतंत्रता की पर्याप्त व्यवस्था होना है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता—स्वतंत्रता शब्द व्यक्ति और राष्ट्र दोनों के लिए समान रूपसे लागू होता है। कोई भी राष्ट्र या देश उस अवस्था में स्वतंत्र समझा जाता है जब कि उसकी अपनी सरकार हो और उसके ऊपर किसी विदेशी सत्ता का नियंत्रण न हो।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अस्तित्व स्वाधीन राष्ट्र में ही संभव है जहां पर जनता स्वतंत्र है और सत्ता स्वयं उसके हाथों में है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता के बिना व्यक्ति को नागरिक, राजनीतिक या आर्थिक स्वतंत्रता बहुत कम प्राप्त हो सकती है।

स्वतंत्रता की रक्षा—यह बात सर्व-विदित है कि जहां पर विशेष प्रकार की

सुविधायें कुछ लोगों को प्राप्त हैं वहां स्वतन्त्रता के लिये भारी खतरा है। जॉन स्टुअर्ट मिल ने कहा है कि साधारणतया स्वतंत्रता का अर्थ राजनीतिक शासकों की तानाशाही के विरुद्ध लोहा लेना है। असीमित राजनीतिक शक्ति स्वाधीनता का शत्रु है।

हमने देखा है कि स्वतन्त्रता राष्ट्र-शक्ति के विरोधी नहीं, इसके विपरीत स्वतंत्रता बहुत कुछ राष्ट्र द्वारा सर्जित होती है और वही उसकी रक्षा करता है। परन्तु राष्ट्र का संचालन मनुष्य द्वारा होता है जिसका दुरुपयोग संभव है। इसलिए यह आवश्यक है कि मनुष्य अपने अधिकारों के प्रति जागरुक रहे ताकि सरकार या अन्य कोई उस स्वाधीनता को दबा न सकें। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की तरह जिन देशों का विधान लिखा हुआ है उसे अधिकारों का घोषणा-पत्र कहते हैं। इङ्गलैंड की तरह जिन देशों का विधान लिखित नहीं है वहां के आधारभूत सिद्धांत धारा सभाओं की विभिन्न धाराओं, जनता की सम्मति तथा प्रमुख न्यायाधीशों के निर्णय पर निर्भर करता है। यह स्मरण रखने की बात है कि स्वतंत्रता की रक्षा विधान में उसे लिखकर नहीं की जा सकती बल्कि उसकी रक्षा जनता की जागरूकता और अपने अधिकार के साथ किसी भी प्रकार के अवैधानिक हस्तक्षेप न सहन करने की भावना और उनकी रक्षा के लिए आवश्यकता पड़ने पर उसके लिये मरने तक प्रस्तुत होना चाहिये।

स्वतंत्रता का मूल्य शाश्वत जागरुकता है और स्वतन्त्रता की कुंजी साहस है। भारत के महान नेता लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा है कि 'स्वाधीनता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।'

परन्तु उस जन्म सिद्ध अधिकार की रक्षा जनता के हाथ में है।

प्रश्नावली

(१) स्वतंत्रता शब्द की व्याख्या करो। क्या यह अधिकार का सहयोगी है?
(यू०-१९२६)

(२) नागरिक स्वतंत्रता और राजनीतिक स्वतन्त्रता का अंतर बताओ। एक

नागरिक के जीवन में उनके सम्बन्धित महत्व का वर्णन करो। (नागपुर विश्व० १९४६)

(३) नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता तथा विधान से क्या समझते हो ?; (कल० १९२८)

(४) निम्नलिखित की व्याख्या करो—राजनीतिक अधिकार की स्वीकृति स्वतंत्रता एक अनिवार्य शर्त है (कल० १९३८)

(५) कानून स्वतंत्रता की शर्त है, व्याख्या करो। (कल० १९३२)

(६) कानून की परिभाषा बताओ। (कल० १९३१)

(७) राजनीतिक और नागरिक स्वतंत्रतापर संक्षिप्त नोट लिखो (कल०-१९३२).

(८) कानून और स्वतंत्रता का संबंध बताओ। (कल० १९३८)

(९) निम्नांकित की आलोचना करो—

कानून स्वतंत्रता की शर्त है। (नागपुर १९३८)

(१०) स्वतंत्रता किस रूप में कानून का सृजन करती है। (कल० १९३५)

(११) क्या कानून बिना स्वतंत्रता संभव है। (कल० १९३७)

(१२) सच्ची स्वतन्त्रता की पहचान इस रूप में होती है कि उससे सारा कानून, नागरिकों को अपने विकास का सर्व-श्रेष्ठ साधन उपस्थित करता है। व्याख्या करो कानून और स्वतंत्रता का संबंध बताओ ? (कल० १९३९)

अध्याय ६

स्वतंत्रता और समानता

पूर्वाध्याय में हम लोग देख चुके हैं कि राज्य नियम बना कर सब के लिए स्वतंत्रता की परिभाषा बतलाता है एवं उसकी रक्षा करता है। चूंकि स्वतंत्रता सबकी भलाई का दावा रखती है इसलिए यह समानता की ओर निर्देश करती है। परन्तु समानता और स्वतंत्रता एक नहीं। निरंकुश के अन्तर्गत सभी व्यक्ति समान रूपसे दास हैं इस प्रकार वह समान तो हैं, परन्तु स्वतंत्र नहीं।

स्वतंत्रता के बिना सच्ची समानता संभव नहीं। उसी प्रकार समान के बिना सच्ची स्वाधीनता सम्भव नहीं है। समानता की भावना स्वरूपता की भावना है। इस प्रकार की समानता स्वतंत्रता के साथ अनिवार्य रूपमें संबन्धित है।

स्वतंत्रता और समानता—प्रजातंत्रवाद के तीन प्रमुख नारे—स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृ-भावना है। प्राकृतिक स्वतंत्रता की व्याख्या हम कर चुके हैं। अब हम स्वतन्त्रता और समानता के सम्बन्ध पर प्रकाश डालेंगे। स्वतन्त्रता का सिद्धान्त यह है कि हर एक व्यक्ति को अपने आत्म-विकास के लिये पूर्ण सुविधा प्राप्त हो। सभी व्यक्तियों को समान धरातल पर खड़ा कर दो और उन्हें अपनी योग्यता का सर्व श्रेष्ठ प्रयोग करने दो। कुछ समय के बाद पाओगे कि वह एक दूसरे से भिन्न हैं। कुछ महान हैं और अधिकांश वैसे नहीं। क्योंकि सुविधायें समान होते हुए भी सब की योग्यतायें एक समान नहीं थीं। यह विभिन्नता प्राकृतिक है क्योंकि दो आदमी समान नहीं होते हैं। मनुष्य में योग्यता की ही विभिन्नता नहीं होती बल्कि उनकी रुचि और भावनायें भी अलग—अलग होती हैं। इसलिए

साधारणतया यह कहा जाता है कि स्वतन्त्रता और समानता एक दूसरे के विपरीत है, परन्तु यह सत्य नहीं। भ्रातृ भावना का सिद्धान्त स्वतन्त्रता और एकता के तद्नुरूप है। समानता का अर्थ एक समान व्यवहार से नहीं है, इसका *अर्थ यह है कि समाज में किसी के विरुद्ध कोई विशेष नहीं होगा। साधारणतया हम* ऐसा सोचते हैं कि समाज में हम जो असमानता देखते हैं वह प्राकृतिक है पर यह भ्रम, अप्राकृतिक एवं बनावटी है। आज जो बहुत लोग धनवान हैं और दूसरे गरीब हैं वे योग्यता और अयोग्यता के कारण नहीं बल्कि प्राप्त सुविधाओं और असुविधाओं के कारण हैं। एक धनी का लड़का विरासत में एक मात्र धन ही नहीं पाता बल्कि उसे सुविधायें भी प्राप्त होती हैं इसी प्रकार उसके लिये सफलतायें आसान होती हैं क्यों कि उसके लिये सभी दरवाजे खुले होते हैं। दूसरी ओर गरीब के लड़के को अपनी गरीबी के साथ साथ सामाजिक दुर्व्यवहार के साथ भी संघर्ष करना पड़ता है इसके लिये सभी दरवाजे बन्द रहते हैं। इसके लिये उसे अपने जीवनमें सफलताओंके लिये कोशिश करनी पड़ती है। उसके लिये स्वतंत्रता नहीं।

समानता का यह अर्थ नहीं कि सभी को एक ही ढांचे में ढाल दिया जाय। समानता का अर्थ राष्ट्र के द्वारा सभी लोगों के साथ नागरिक और राजनीतिक अधिकारों में एक समान बर्ताव करना है। इसका अर्थ समाज के प्रति एक व्यक्ति को एक समान सुविधायें प्रदान करना है। इस प्रकार स्वतन्त्रता और समानता एक दूसरे के पूरक हैं, एक के बिना दूसरा सम्भव नहीं।

समानता के भेद—*साधारणतया पांच प्रकार को समानतायें होती हैं* (१) नागरिक, (२) राजनीतिक, (३) सामाजिक, (४) स्वाभाविक, और (५) आर्थिक समानता।

नागरिक समानता—नागरिक समानता का अर्थ यह है कि सभी नागरिकों को एक समान नागरिक अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त हो। नागरिक समानता के अंतर्गत प्रत्येक व्यक्ति और सरकार के हस्तक्षेप से रक्षा होती है।

भारत में जबतक छुआ-छूत का भेद तथा अन्य नागरिक असुविधायें दूर नहीं होतीं हमें नागरिक एकता प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए महात्मा गांधी ने कहा था—"अस्पृश्यता हमारे लिए अभिशाप है।"

राजनीतिक समानता—राजनीतिक समानता के अन्तर्गत सभी नागरिकों को शासन प्रबन्ध में समान अधिकार प्राप्त हैं और वे सभी सार्वजनिक पदों के समान रूपसे अधिकारी हैं। पूर्णरूपेण राजनीतिक समानता के लिए बालिगमताधिकार आवश्यक है। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने बतलाया है कि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं।

सामाजिक समानता—सामाजिक समानता का अर्थ यह है कि जाति, रङ्ग पंद या वर्ग के आधार पर किसीको विशेष सुविधायें न प्रदान की जायें। सामाजिक या राजनीतिक समानता को जाति या रङ्ग के आधार पर स्वीकार करने से संसार में स्थायी शांति की स्थापना नहीं हो सकती। सामाजिक समानता की प्राप्ति बहुत ही कठिन है और शायद सोवियत रूस के अतिरिक्त संसार के और किसी भी देश को यह प्राप्त नहीं। समाज का उच्च वर्ग, शक्तिशाली, मध्यवर्ग और श्रमिक वर्ग के रूपमें विभाजन, सामाजिक एकता में एक बहुत बड़ी बाधा है। सामाजिक एकता सहसा कानून बनाकर स्थापित नहीं की जा सकती। यह जनता की राय, परम्परा और प्रचालन के द्वारा ही सम्भव है।

स्वाभाविक समानता—कहा जाता है कि जन्म लेते समय सभी समान हैं। यह समानता स्वाभाविक समानता है। परन्तु स्वाभाविक समानता एक अपरिपक्व भावना है। यद्यपि बाहर से एक बच्चा दूसरे बच्चे के समान है परन्तु जब बच्चे बढ़ने लगते हैं तो उनमें विभिन्नतायें प्रदर्शित होने लगती हैं। समाज द्वारा स्वाभाविक असमानता को सार्वजनिक हित के लिए सहन करना चाहिए।

आर्थिक समानता—आर्थिक समानता का उद्देश्य सभी व्यक्तियों को धन और आयके संबंध में एक समान बनाना है। समाजवाद का यही आदर्श है।

समाजवाद आर्थिक समानता की ही भित्ति पर खड़ा है। क्योंकि आर्थिक समानता के बिना अन्य समानता संभव हो ही नहीं सकती। इसीलिए समाजवाद को सर्वश्रेष्ठ स्वाधीनता का आधार माना जाता है। हेराल्ड लास्की ने आर्थिक समानता के सम्बन्ध में कहा है कि इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वाभाविक योग्यता और शक्ति को विकसित करने की समान सुविधा प्राप्त होती है। पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा है कि प्रजातन्त्र का उद्देश्य साम्पत्तिक असमानता को दूर करना होना चाहिए इसका उद्देश्य अमीरको गरीब बनाना नहीं बल्कि गरीबको अमीर बनाना है सोवियत रूसने व्यक्तिगत सम्पत्ति को नष्टकर पूर्णरूपेण आर्थिक समानता की स्थापना की है। सम्पत्ति का एक वर्गविशेषके हाथमें जाना राष्ट्र के लिए घातक है। इसलिए समाजवाद कहता है कि या तो राष्ट्र सम्पत्ति को अपने अधीन रखे या राष्ट्र का नियंत्रण करेगी। यह बात अबतक स्पष्ट नहीं कि वर्तमान राष्ट्रसमूह सोवियत रूसके उदाहरण मानने को प्रस्तुत हैं परन्तु सभी वर्तमान राष्ट्र वर्तमान असमानता को दूर करने की चेष्टा कर रहे हैं। स्वतंत्रता और असमानता वर्तमान नागरिकताके आदर्श और वास्तविकताके रूपमें निहित हैं। अरस्तु की कुशाग्र बुद्धि ने बहुत दिन पहले इसका अनुभव किया था कि समानता की स्थापना करना क्रान्ति की सबसे शक्तिशाली जड़ है।

प्रश्न

(१) स्वतंत्रता और समानता के बीच क्या सम्बन्ध है ?

(२) समानता के कितने भेद हैं ?

अध्याय ७

नागरिकता

नागरिक शास्त्र की परिभाषा नागरिक के रूप में मनुष्यका अध्ययन बतायी गयी है। इसलिए नागरिकता नागरिक शास्त्र के अध्ययन का महत्वपूर्ण भाग है।

परिभाषा—नागरिक राष्ट्रीय समाज का एक सदस्य है।

राष्ट्र के सदस्य रूप में नागरिक—नागरिक राष्ट्र का एक सदस्य है और इसलिए वह राष्ट्र द्वारा प्राप्त सार्वजनिक हित का भागी है। राष्ट्र की रक्षा का दायित्व भी उसपर है जिसके लिए उसके कुछ कर्त्तव्य हैं।

नागरिकता के भेद—यद्यपि सभी नागरिक, नागरिक-अधिकारों का उपयोग करते हैं परन्तु इसमें सभी राजनीतिक अधिकार सम्मिलित नहीं हैं। दूसरी ओर वर्तमान समय में ऐसे भी उदाहरण हैं जब कि गैर नागरिक मत दान की राजनीतिक सुविधाओं का उपयोग करते हैं जैसा कि कुछ अमीरी के राज्यों में है। इस प्रकार नागरिक दो भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। पहला—जो राजनीतिक तथा नागरिक दोनों ही अधिकारों का उपयोग करते हैं, और दूसरा—जो एक मात्र नागरिक अधिकारों का ही उपयोग करने के अधिकारी हैं।

कुछ देशों में यह अन्तर उस सीमा तक पहुंच गया है कि इन दो प्रकार के नागरिकों के लिए दो अलग-अलग शब्दों का प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए फ्रांसमें एक मात्र जिन लोगों को पूर्ण राजनीतिक अधिकार प्राप्त है नागरिक कहा जाता है। दूसरी ओर अन्य सभी व्यक्तियों को राष्ट्र के अन्तर्गत रखते हैं। उनको जातीय कहते हैं। जहां पर समाज के सभी व्यक्ति समान राजनीतिक अधिकारों के अधिकारी नहीं हैं वहां पर नागरिक शब्द का प्रयोग पूर्ण अधिकारियों के लिए ही किया जाता है।

प्राकृतिक और अप्राकृतिक नागरिक—वैधानिक रूपमें प्राकृतिक और अप्राकृतिक दो प्रकार के नागरिक होते हैं। जन्मजात नागरिक ही प्राकृतिक नागरिक है और विदेशी जो नागरिक बन गये हैं अप्राकृतिक नागरिक हैं। राष्ट्रों में प्राकृतिक नागरिकों को प्राकृतिक नागरिकों से अधिक अधिकार प्राप्त है उदाहरणार्थ स्वाभाविक नागरिकों द्वारा जिन सभी राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग होता है वे अप्राकृतिक नागरिकों को प्राप्त नहीं हो सकते। कुछ राष्ट्रों में अप्राकृतिक नागरिक प्राकृतिक नागरिकों की तरह सभी सार्वजनिक पदोंके अधिकारी हैं।

साधारणतया नागरिक शब्द का प्रयोग सभी के लिए होता है जो विदेशी नहीं हैं। इसलिए नागरिक की स्थिति की व्याख्या करते समय विदेशी से इसका अन्तर समझना आवश्यक है।

विदेशी—विदेशी एक लोग हैं वे राष्ट्र के अन्तर्गत रहते हैं और किसी दूसरे राष्ट्र के प्रति वफादार होते हैं। वास्तविक अर्थ में विदेशी उस राष्ट्र का सदस्य नहीं इसलिए नागरिक अधिकारों को प्राप्त करके भी वह सर्वोच्च नागरिक अधिकारों से वंचित रहता है। जिस राष्ट्रमें वह रहता है वहां के विधानसे वह बंधा हुआ है। इसलिए वह सभी प्रकार के टैक्स और करोंके देने के लिए बाध्य है। विदेशी दूतावास के सदस्य जैसे कुछ विशेष सुविधाप्राप्त लोग इससे बरी हैं। सभी विदेशी जिस देशमें रहते हैं उसके दीवानी और फौजदारी अदालतों के निर्णय को मानने को बाध्य हैं। विदेशियों की बहुत सी असुविधायें वर्तमान समय में धीरे धीरे दूर होती जा रही हैं।

इंगलैण्ड में १८७० के पूर्व विदेशियों को बहुत कम साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे परन्तु उक्त वर्ष के ब्रिटिश नेचुरिलीजेशन एक्ट के अनुसार स्थायी और व्यक्तिगत सम्पत्ति विदेशियों द्वारा भी उसी प्रकार अर्जित और खर्च की जा सकती है जैसे प्राकृतिक नागरिक द्वारा। परन्तु अपवाद के रूप में कोई भी विदेशी किसी ब्रिटिश जहाज का मालिक नहीं हो सकता। प्रायः प्रत्येक राष्ट्र में इस समय नागरिक

अधिकारों के लिए विदेशियों तथा नागरिकों को समानाधिकार प्रदान करने, की प्रवृत्ति देखी जाती है। परन्तु राजनीतिक अधिकारों के सम्बन्ध में अभी भी विभिन्नता है।

गरिक और विदेशी—(१) नागरिक और विदेशी के बीचका अन्तर संक्षिप्ततः निम्न प्रकार है। एक नागरिक एक राजनीतिक संगठन का वास्तविक दस्य है परन्तु एक विदेशी निवासी मात्र है।

(२ नागरिक राष्ट्र के प्रति वफादार है परन्तु विदेशी उस राष्ट्र के दीवानी और फौजदारी विधान के अन्तर्गत होते हुए भी जहां पर वह रहता है और कर देता है दूसरे राष्ट्र के प्रति वफादार है।

(३ जहां तक नागरिक अधिकारों का सम्बन्ध है अधिकांश आधुनिक राष्ट्रों में नागरिक और विदेशी एक समान हैं परन्तु कभी कभी एक विदेशी कुछ साम्पत्तिक अधिकारों से वंचित रहता है।

(४) नागरिक सभी राजनीतिक अधिकारों का उपभोग करता है, परन्तु विदेशी को कुछ ही अधिकार प्राप्त होते हैं।

नागरिकता कैसे प्राप्त की जा सकती है—नागरिकता जन्म से या कृत्रिम अप्राकृतिक रूपमें प्राप्त की जा सकती है।

जन्म—विभिन्न देशोंमें जन्म से नागरिकता की प्राप्ति के अलग अलग नियम हैं। मुख्यतः दो सिद्धांत हैं। पहला यह है कि बचा अपने माता पिता की नागरिकता को प्राप्त करता है और दूसरा यह है कि जिस राष्ट्र की सीमाके अन्तर्गत वे पैदा होते हैं उसके प्रति उन्हें वफादार होना चाहिए। कुछ राष्ट्रों में प्रथम और कुछ में दूसरा सिद्धांत स्वीकार किया जाता है।

ग्रेट ब्रिटेन और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जैसे कुछ देशों में एक मिश्रित सा सिद्धान्त माना जाता है। ब्रिटिश सीमा के अन्तर्गत विदेशी माता पिता के जो पुत्र पैदा होते हैं वे ब्रिटिश नागरिक हैं। दूसरी ओर ब्रिटिश माता पिता की

जो सन्तानें ब्रिटिश सीमा से बाहर पैदा होती हैं वे भी जन्मतः ब्रिटिश नागरिक माने जाते हैं। वैसी ही हमारी भारतीय कानून भी होनी चाहिये।

एक ब्रिटिश जहाज ब्रिटिश द्वीप समूह का एक भाग माना जाता है इसलिए पृथ्वी के किसी भी भाग में ब्रिटिश जहाज पर पैदा हुआ बच्चा प्राकृतिक ब्रिटिश प्रजा समझा जाता है। प्रत्येक राष्ट्र में एक समान सिद्धान्त के अभाव में द्विगुणित नागरिक को उदाहरण पर्याप्त पाये जाते हैं।

अप्राकृतिक नागरिक—विदेशियों को विधिवत राजनीतिक सगठन का सदस्य स्वीकार करने और उसे अप्राकृतिक नागरिकके अधिकार प्रदान करना अप्राकृतिक रूपमें नागरिक बनना कहते हैं। एक व्यक्ति कुछ शर्तों की पूर्ति करने पर प्राकृतिकनागरिक बनता है ये शर्तें विभिन्न राष्ट्रों में विभिन्न हैं। करीब-करीब सभी देशों में अप्राकृतिक नागरिक होने के लिए वहां पर निवास करना आवश्यक है। यह अवधि विभिन्न राष्ट्रों में भिन्न-भिन्न है।

ब्रिटिश विधान के अन्तर्गत उस व्यक्ति का ब्रिटिश सीमा में ५ वर्ष तक निवास करना या ब्रिटिश सरकार की नौकरी करना आवश्यक है। सच्चरित्रता और अङ्गरेजी भाषा का ज्ञान भी आवश्यक है।

कुछ थोड़ी सी सुविधाओं के अतिरिक्त एक नागरिक और एक अप्राकृतिक नागरिक की सुविधाओं और अधिकारों में बहुत कम अन्तर है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का पद जन्मना नागरिक को ही प्राप्त हो सकता है।

अप्राकृतिक नागरिक के अन्य तरीके—निम्नलिखित रूप में भी अप्राकृतिक नागरिक बन सकते हैं।

(१) विवाह—विवाह के बाद स्त्री की नागरिकता पुरुष की नागरिकता हो जाती है। जैसे कोई पाकिस्तानी महिला किसी भारतीय पुरुष के साथ शादी करे तो वह भारतीय नागरिक हो जायगी।

(२) वैधानिक स्वीकृति—एक नागरिक पिता और विदेशी माता का

अवैध बच्चा बाद में दोनों के बीच शादी होने पर अपने पिता की नागरिकता को प्राप्त करता है।

(३) स्थावर सम्पत्ति—मैक्सिको जैसे कुछ राष्ट्रों में भूमि क्रय करके भी नागरिकता प्राप्त की जा सकती है।

(४) नौकरी—कुछ राष्ट्रों में विदेशी राज्य की नौकरी करके भी अप्राकृतिक नागरिक बन सकते हैं।

(५ , दीर्घकालीन निवास—ब्राजिल जैसे कुछ राष्ट्रों में दीर्घकालीन निवास करके भी एक व्यक्ति अप्राकृतिक नागरिक बन सकता है।

नागरिकता का नाश—(१) विवाह (२) विदेशी नौकरी (३) त्याग (४) दीर्घकालीन अनुपस्थिति और (५) बहुत बड़े अपराधों के अपराधी होने तथा दूसरे राज्य में अप्राकृतिक नागरिक बनने से नष्ट होती है।

(१) बहुत से राष्ट्रों में शादी करने के बाद स्त्री अपनी नागरिकता को त्यागकर अपने पुरुष के देशकी नागरिकता प्राप्त करती है।

(२) कुछ देशोंके विधानानुसार जो नागरिक विदेशी सरकार की नौकरी स्वीकार करता है वह अपना नागरिक अधिकार खो देता है।

(३) स्थल या नव सेना से भागने वाले नागरिक कुछ राष्ट्रोंमें अपने अधिकार खो देते हैं।

(४) अधिकांश राष्ट्रों में दीर्घकालीन अनुपस्थिति नागरिकता के खोनेका कारण है।

(५) घृणास्पद अपराधों के अपराधी नागरिकता से हाथ धोते हैं।

(६) अधिकांश रूपमें नागरिकता तब नष्ट होती है जब कि नागरिक अपने देशको छोड़कर दूसरे देशमें अप्राकृतिक नागरिक बन जाता है। पूर्व समय में इसके लिए उसको सरकारकी स्वीकृति आवश्यक थी परन्तु अब. अप्राकृतिक नागरिक को ही स्वीकार कर लिए जाते हैं।

प्रश्नावली

(१) नागरिक की रूपरेखा क्या है ? नागरिक और विदेशी का अन्तर बताओ । (कल० १९३०)

(२) एक प्राकृतिक और अप्राकृतिक नागरिक का अन्तर बताओ ।(कल० १९३१-३३)

(३) नागरिकता प्राप्त करने के कौन से विभिन्न तरीके हैं । (कल० १९३२)

(४) नागरिकता से तुम क्या समझते हो । नागरिकता प्राप्ति के कौन से विभिन्न मार्ग हैं ? (नागपुर १९३७-३९)

(५) नागरिक से क्या समझते हो ?

(६) सावधानी से बयान करो, क्या तुम एक नागरिक हो ?—

अध्याय ८

नागरिक अधिकार और कर्तव्य

अधिकार वह शक्ति है जो समाज द्वारा स्वीकृत हो चुकी है। अधिकार राष्ट्र द्वारा स्वीकृत दावा है, परन्तु यह अधिकार का अपूर्ण सिद्धान्त है। अभी कुछ ही वर्षों पूर्व दासता वैधानिक थी, दासों के मालिक उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हें कैद रखते थे। विधान उन मालिकों के दावे का समर्थन करता था और राष्ट्र ने इसे स्वीकार किया था, परन्तु यह दावा अधिकार के रूपमें स्वीकृत नहीं होना चाहिए था।

अमरीका के गृह-युद्ध ने मानव भावनाओं में क्रान्ति उत्पन्न की और दासता गैर कानूनी घोषित की गयी।

अधिकार क्या है ?—अधिकार वे शर्तें और गारण्टी हैं जिन्हें राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के लिए स्वीकार करना चाहिए। जिससे वह समाज में अपना सर्वोत्तम विकास कर सके। नागरिक को अपने ही लिए नहीं बल्कि पूरे समाज के लिए अच्छे जीवन की खोज करनी पड़ती है। अगर उसको अपने आदर्श के अनुसार जीना है तो उसे शर्तों की भी पूर्ति करनी पड़ेगी।

वैधानिक और नैतिक अधिकार—अधिकार, अगर वह नैतिक विधानपर आधारित है तो नैतिक है। यह जातिके नैतिक सम्मति के समर्थन पर आधारित है। अधिकार राष्ट्र द्वारा समर्थित होता है जब कि वह उसे लागू करता है, या उसको रक्षा करता है तो उसे वैधानिक अधिकार कहते हैं।

वैधानिक अधिकार मनुष्य के अन्तर्गत की वह क्षमता है जो राष्ट्र की सम्पत्ति और सहायता से दूसरों को क्रिया नियंत्रण रखता है।

वैधानिक अधिकार—नागरिक और राजनीतिक—जो अधिकार

जीवन और सम्पत्ति की रक्षा और उपभोग से सम्बन्धित हैं वे सभ्यता की निशानी हैं और उन्हें हम नागरिक अधिकार कहते हैं। दूसरी ओर राजनीतिक अधिकार वे हैं जिनके द्वारा नागरिक को अपने राष्ट्र की सरकार में भाग लेने का अधिकार है जैसे—मतदान और सार्वजनिक पदों को प्राप्त करने के अधिकार।

नागरिक और राजनीतिक अधिकार करीब-करीब एक ही समझे जाते हैं। उदाहरणके लिए विचारों और भाषणकी स्वतंत्रतामें नागरिक और राजनीतिक दोनों ही अधिकारी हैं। अधिकारी होनेका अर्थ दावेदार होना नहीं है क्योंकि वह कर्त्तव्य रहित है।

कर्त्तव्य—कर्त्तव्य एक एहसान है। किसी भी बात के प्रति एक व्यक्ति का कर्त्तव्य तभी है जब कि वह कुछ करने या न करने के लिए बाध्य हो।

वैधानिक और नैतिक कर्त्तव्य—अधिकार की तरह कर्त्तव्य भी नैतिक और वैधानिक होता है। नैतिक भावनाओं द्वारा परिचालित कर्त्तव्य नैतिक कर्त्तव्य है।

राष्ट्र द्वारा विहित कर्त्तव्य वैधानिक कर्त्तव्य है। समाज की नैतिक सम्मति गरीबों और रोगियों के प्रति कुछ अपने कर्त्तव्य पूरे करने के लिए बाध्य करती है। समाज की सद्भावना ही हमें इस ओर प्रेरित करती है। यह नैतिक कर्त्तव्य है। परन्तु वैधानिक कर्त्तव्य नितान्त विपरीत है उसकी पूर्ति वैधानिक अनिवार्यता के रूप में करनी पड़ती है। राष्ट्र उसके लिए बाध्य कर सकता है।

नागरिकता के अधिकार और कर्त्तव्य—वर्तमान राज्य में राज्य का गठन करना जनता का अधिकार है और वफादारी और राजभक्ति के साथ राष्ट्र की सेवा करना जनता का कर्त्तव्य है। वर्तमान राष्ट्र अधिकांश प्रजातांत्रिक हैं कुछ थोड़े से देशों में तानाशाही भी है।

अधिकार और कर्त्तव्य का सम्बन्ध—अधिकार में कर्त्तव्य निहित है

अधिकार और कर्त्तव्य एक दूसरे के साथ सम्बद्ध हैं। अधिकार में एहसान छिपा है। सामाजिक भलाई के कार्य करने का उन्हें अधिकार है। 'समाज के अहित करने का अधिकार मुझे नहीं है इसलिए मुझे अपने इच्छानुसार कार्य करने का अधिकार नहीं है।

राष्ट्र द्वारा जब मुझे कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं तो मुझे राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिए। उदाहरण के लिए दूसरों के आक्रमण से मेरी रक्षा करने का अर्थ यह भी है कि मैं स्वयं दूसरों पर आक्रमण न करूँ। राष्ट्र जब मुझे शिक्षा देता है तो मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं उस शिक्षा का प्रयोग समाज की भलाई के लिए करूँ। जिस प्रकार काम न करने वाला खाने का अधिकारी नहीं उसी प्रकार जो अपना कर्त्तव्य पूरा न करे उसे कोई अधिकार नहीं मिलना चाहिए। हमारे सभी अधिकारों के साथ कर्त्तव्य की शर्त्त लगी हुई है और उनका उद्देश्य सार्वजनिक हित है। राष्ट्र के प्रति मेरे कर्त्तव्यों का अर्थ राष्ट्रके आदर्शों के प्रति मेरी अखण्ड अनुगामिता होनी चाहिए।

(१) मेरे अधिकार में तुम्हारा कर्त्तव्य भी अन्तर्निहित है। स्वतंत्रता पूर्वक भ्रमण करने का मेरा अधिकार इस बात की ओर संकेत करता है कि तुम उसमें बाधा न पहुँचाओ। मेरे अधिकार के प्रति मेरा कर्त्तव्य भी तुम्हारे उसी प्रकार के अधिकार की ओर निर्देश करता है। स्वतंत्रतापूर्वक भ्रमण करने का मेरा अधिकार किसी के द्वारा अवरुद्ध नहीं होना चाहिए इसमें मेरा भी यह देखना कर्त्तव्य है कि और सभी लोगों को स्वाधीनतापूर्वक भ्रमण के अधिकार भी अवरुद्ध न हों।

(२) राष्ट्र मेरे तथा अन्य लोगों के अधिकारों को सुरक्षित रखता है इसलिए हममें से प्रत्येक आदमी का यह कर्त्तव्य है कि उस राष्ट्र की सहायता करे जिसके ऊपर हमारी रक्षा का भार है। जैसा कि क,ख,ग, आदि सभी व्यक्ति राष्ट्र से अधिकार का दावा करते हैं उसी प्रकार उनमें से प्रत्येक व्यक्तिका राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य भी है।

(४) जो अधिकार दावे के रूपमें होते हैं और जो कानून द्वारा लागू किए जाने चाहिए वे अपनी शक्ति मानवता के नैतिक उद्देश्य से प्राप्त करते हैं। वे व्यक्ति के जीवन के सर्वोत्तम प्रयोग के साधन हैं। इसी आधार पर उनके लिए दावा किया जा सकता है, वे स्वीकार किए जाते हैं और उनका प्रयोग होता है। इस प्रकार व्यक्ति को अपने जीवन के सर्वोत्तम विकास के लिए उनके प्रयोग का अधिकार है। व्यक्तिको भाषण स्वतंत्रता का दावा इसलिए करना है कि वह सज्जीवन के लिए आवश्यक है। व्यक्ति को उसका प्रयोग सजीवन के लिए करना चाहिए। नागरिक के अधिकार और कर्त्तव्य की हम निम्न व्याख्या करेंगे।

वर्त्तमान प्रजातांत्रिक राष्ट्र में नागरिक के अधिकार—व्यक्ति को अधिकार इसलिए दिये जाते हैं कि उनके बिना वह अपना सर्वोत्तम विकास नहीं कर सकता और इसलिये भी कि समाज की भलाई स्वतंत्र, प्रसन्न और सन्तुष्ट नागरिकों पर निर्भर करती है।

नागरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता के विकास से नागरिकता के अधिकारों की सूची बढ़ती जाती है परन्तु ये अधिकार और इनके प्रयोग की सुविधायें सभी देशों में एक समान नहीं हैं।

एक अविकसित राष्ट्र में अपेक्षाकृत कम अधिकार स्वीकृत हुए हैं और एक विकसित राष्ट्र में अधिक अधिकारों की स्वीकृति और गारंटी दी है।

मौलिक अधिकार—अधिकार घोषणा पत्र—अधिकांश वर्तमान विधानों में मौलिक अधिकार घोषणा पत्र रहता है। यह स्वतंत्रता की रक्षा का एक कवच है। नागरिकों के मौलिक अधिकारों का एक पवित्र घोषणा पत्र है। ये अधिकार मौलिक इसलिये कहे जाते हैं कि ये स्वतंत्रता, नागरिकों की सर्वाधिक हित की प्राप्ति के लिए आवश्यक हैं। इसलिए ये अधिक पवित्र माने जाते हैं।

इनमें से कुछ अधिकार नागरिक हैं। कुछ राजनीतिक और आर्थिक हैं। ये राष्ट्र के विधान में इसलिए परिणत होते हैं कि इन्हें विशेष शक्ति और बल प्राप्त

हो और नागरिकों को इसके द्वारा स्वतंत्रता की सुरक्षा मिले। वैधानिक रूपमें कार्य -कारिणी या धारा सभा इन अधिकारों का अपहरण नहीं कर सकती। इसलिए ये सुर-क्षित हैं। ये अधिकार विभिन्न देशों में भिन्न भिन्न हैं परन्तु इनमें से जो अधिक महत्वपूर्ण हैं वे सभी देशों में एक से हैं जैसे व्यक्तिगत स्वाधीनता, आत्म प्रकाशकी-स्वतंत्रता, संवाद पत्र की स्वाधीनता, संगठन और गतिविधि की स्वतंत्रता और विधान की दृष्टि में समानता।

इन मौलिक अधिकारों के अतिरिक्त नागरिकों को कुछ और भी अधिकार प्राप्त होते हैं परन्तु इनमें से कोई भी अपने में पूर्ण नहीं कहा जा सकता। किसी की भी सार्वजनिक भलाई के विरुद्ध काम करने की आज्ञा नहीं दी जा सकती। सभी अधिकार दूसरों के अधिकारों और सामाजिक भलाई के आधार पर सीमित हैं। एक प्रजातांत्रिक राष्ट्रके नागरिक और राजनैतिक अधिकार निम्नलिखित हैं।

नागरिक अधिकार—(१) जीवन के प्रति अधिकार में व्यक्तिगत स्वाधीनता सन्निहित है जो बहुत ही व्यापक है। यह न केवल जीवन की रक्षा बल्कि शारीरिक अत्याचार या किसी प्रकार के प्रतिबन्धका जि करता है। विदेशी साम्राज्य से भी त्राण पानेका एक नागरिक अधिकारी है। इस प्रकार आन्तरिक और वाह्य दोनों सुरक्षा इसमें सन्निहित है। जीवन के प्रति अधिकार आत्म रक्षा के लिए शक्ति के प्रयोग की भी बात बतलाता है। वैधानिक रूपसे एतदर्थ शस्त्रको लेकर चलना भी जायज है।

(२) सम्पत्ति के अधिकार—सम्पति के प्रति अधिकार से प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता पूर्वक अपनी समृद्धि के उपयोग के लिए निश्चिन्त रहता है। किसी भी व्यक्ति का निवासस्थान उसका किला है जिसमें बिना वैधानिक अनुमति या बाहर के कोई प्रवेश नहीं कर सकता।

व्यक्तिगत पूंजीवाद और साम्पतिक संगठन यही अधिकार प्रधान शक्ति है। साम्पतिक

अधिकार किसी भी तरह सार्वजनिक भलाई के विरुद्ध नहीं जाना चाहिये। समाजवादी व्यक्तिगत साम्पत्तिक अधिकार का अन्त करना चाहते हैं।

हमने पहले ही कहा है कि अधिकार और कर्तव्य एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। लेकिन हमें अपने कर्तव्य को पूरा करने के लिए आवश्यक सम्पत्ति का अधिकार भी प्राप्त होना चाहिए। जो धन स्वयं अपने परिश्रम से मैंने अर्जित नहीं किया है या जो सामाजिक भलाई के विरुद्ध है या जो समाज में मेरी गतिविधि के लिए आवश्यक नहीं है उसपर मेरा अधिकार नहीं होना चाहिए।

(३) धार्मिक विश्वास की स्वतंत्रता—इसमें नागरिक के विचार और पूजा अर्चन की स्वतंत्रता सम्मिलित है। स्वतंत्र देशों में इस अधिकार में हस्तक्षेप सह्य नहीं। इस स्वतंत्रता का सबसे महत्वपूर्ण अंश मस्तिष्क की स्वतंत्रता है। जर्मनी में इस स्वतंत्रता का अपहरण जो यहूदियों के विरुद्ध बगावत के रूपमें हुआ था जर्मन जनताके नागरिक अधिकार का अपहरण था।

(४) गति विधि का अधिकार—नागरिक को स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने का भी अधिकार है जो शक्ति के तानाशाही प्रयोग के द्वारा सीमित नहीं किया जा सकता।

इंगलैण्ड में अगर अवैधानिक रूप में कोई आदमी गिरफ्तार किया जाता है तो वह उसके लिए क्षतिपूर्तिका दावा कर सकता है। अगर कोई अंग्रेज बिना मामला चलाये कारागृह में बन्द किया जाता है तो हेबियस कारपस एक्ट के अन्तर्गत आवेदन-कर अपने को कोर्ट में हाजिर करने के लिए गिरफ्तार करने वाले को बाध्य कर सकता है ताकि उस पर वैधानिक रूपमें मामला चलाकर यह निश्चिन्त किया जाय कि वह अपराधी है या नहीं। इस प्रकार वह अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर सकता है। पर भारत में ऐसी बात नहीं।

(५) नियम पत्रकी स्वाधीनता—नागरिकों को लेने देने की स्वतंत्रता

होनी चाहिए जिसकी शर्तें दोनों ही दलों के लिए मान्य होंगी। उद्योग व्यवसायों की उन्नति और विकास के लिए यह स्वतंत्रता आवश्यक है।

(६) **उद्योग व्यवसाय तथा अन्य कार्यों की स्वतंत्रता**—नागरिकों को अपनी इच्छानुसार किसी भी उद्योग व्यवसाय या कार्य को हाथमें लेनेका अधिकार है। परन्तु वे ऐसा कोई कारबार नहीं कर सकते जो समाजके हितोंके विरुद्ध हो। इसलिए समाजको मद्य उद्योग और अफीम उद्योग पर रोक लगाने का अधिकार है।

(७) **भावाभिव्यक्ति एवं संवाद पत्र स्वाधीनता**-संसार को सत्य के दमन करने के कारण बहुत महगी कीमत चुकानी पड़ी है। भावाभिव्यक्ति की स्वतंत्रता बहुत ही कीमती अधिकार है। सभी स्वतन्त्र देशों में नागरिकों को ईमानदारी से अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता है बशर्ते उसके द्वारा दूसरों पर अभियोग न लगाया जाय। वह राजद्रोहात्मक अनैतिक या अपमान पूर्ण न हो।

किसी की विचारधारा को अवरुद्ध करने का अर्थ यह होगा कि उसकी कल्पना और विचार शक्ति अवरुद्ध हो जायगी। भाषण और संवाद पत्रों की स्वतंत्रता सार्वजनिक सम्मति के सृजन में सहायता करती है। यह अधिकारी वर्गों की तानाशाही के विरुद्ध एक सबल अस्त्र है जिसके द्वारा जनता अपनी शिकायतों को दूर करा सकती है। प्रायः प्रत्येक स्वतंत्र आलोचना नागरिक और राजनीतिक सुधार के लिए एक शक्तिशाली प्रेरणा रही है। दूसरी ओर भाषण की स्वतंत्रता की मनाहीके गुप-चुप आन्दोलन का जन्म होता है। जो सरकार आलोचना को स्वीकार नहीं कर सकती वह अपनी कब्र स्वयं खोदती है। कोई भी व्यक्ति अपनी सच्ची सम्मति को प्रकट किए बिना अपने नागरिक कर्तव्यको पूरा नहीं कर सकता।

इंगलैण्ड के विपरीत भारतीय समाचार पत्रों को अंगरेजी शासनकाल में बहुत कम स्वतंत्रता प्राप्त रही है। इस सम्बन्ध में काफी आलोचनायें हुई हैं परन्तु आशा है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार संवाद पत्रों की स्वतंत्रता का उचित आदर करेगी।

(८) सार्वजनिक सभा और संगठन की स्वाधीनता—नागरिकोंको शान्तिपूर्वक खुले मैदान में एकत्र होने और सार्वजनिक हित के लिए संगठन करनेका अधिकार है। यह नागरिक अधिकारों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सार्वजनिकहितके सभी कामोंमें सार्वजनिक आलोचना और ईमानदारी से अपने भाव व्यक्त करने की स्वाधीनता होनी चाहिए। शक्ति के प्रयोग को तभी दूर किया जा सकता है जब कि सार्वजनिक विचार, विमर्श और आलोचना को उचित स्थान दिया जाय।

भाषण की स्वतन्त्रताके साथ-साथ संगठन और सार्वजनिक सभा का अधिकार सम्बन्धित है। वर्तमान संसार में एक व्यक्ति अपने अन्य साथियों के साथ मिलकर भी अपने भाव व्यक्त कर सकता है।

(९) विधानकी समानता—यह नागरिकका एक बहुमूल्य अधिकार है। अगर विधान ऊँच और नीच, धनी और गरीब या अपने अधिकारियों और समानता के बीच पक्षपात करता है तो वास्तविक न्याय नहीं हो सकता। वैधानिक एकता की भावना अंगरेजी 'रूलआफ ला' से निकला है।

(१०) शिक्षा और कामका अधिकार—सभी सभ्य देशों में जनता की नैतिक, बौद्धिक और भौतिक भलाई को अधिकाधिक स्वीकृति मिलती जाती है। यह विचारधारा जोर पकड़ती जाती है कि जनता की शिक्षा और उसके लिए कार्य की व्यवस्था करना राज्यका कर्तव्य है। इसीलिए कितने ही देशों में प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य है और बेकारों की जीविकाका प्रबन्ध करने के लिए राज्य बाध्य है।

शिक्षाका अधिकार—नागरिकता की परिभाषा अपने व्यक्तिगत निर्णय को जनता की भलाई के लिए प्रदान करने को कहा गया है। इसलिए इसका अर्थ यह हुआ कि जनता को ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उसको नागरिक बनाने में सहायता पहुँचाये। आगे चलकर शक्ति उन्हीं के हाथों में आती है जो एक मात्र अपने ही लिए सोचते और काम करते हैं। जिन नागरिकों में इसका अभाव होता

है वे दूसरों के दास होते हैं। प्रत्येक नागरिकको इतनी शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए जो अपने सम्बन्ध में उचित निर्णय कर सके।

कामको स्वतन्त्रता—नागरिकको काम करने और अपने श्रम के लिए वेतन पाने का भी अधिकार है। जिसके बिना नागरिकता सम्भव नहीं। काम करने के अधिकार के साथ-साथ बेकारी के विरुद्ध प्रबन्ध करने का अधिकार भी है। उचित वेतनके अधिकार के साथ साथ उचित घंटे कामका भी अधिकार सम्बन्धित है। जिसके बिना लोगोंको मशीन की तरह लगातार काम ही करना पड़ेगा। अवकाश के बिना नागरिक सोचने और समाज की भलाईके लिए काम करने में असमर्थ है।

(११ विवाह तथा परिवार सम्बन्धी स्वतन्त्रता—नागरिकों को अपनी इच्छानुसार विवाह करनेकी स्वतन्त्रता है।

परिवार के अधिकार, जैसे बच्चोंके अभिभावक होने का बापका अधिकार सुरक्षित है। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि विवाह तथा अन्य पारिवारिक अधिकारोंका प्रयोग सामाजिक हित का ध्यान रखते हुए करना चाहिए। इसीलिए राज्य नागरिकोंके अधिकारोंको सीमित करने का अधिकार सुरक्षित रखता है जिससे सार्वजनिक हितके विरुद्ध उनका प्रयोग होने पर वह उचित कारवाई कर सके। इस सम्बन्ध में हम शार्दा कानून का उदाहरण दे सकते हैं।

(१२) पोस्ट, डाक, तार टेलीफोन आदिकी स्वतन्त्रता—सभी स्वतन्त्र देशों में व्यक्तिगत पत्र व्यवहार का सम्मान किया जाता है। यद्यपि बहुत ही आशंकापूर्ण परिस्थिति और सार्वजनिक संकट के समय पत्र तथा। अन्य व्यक्तिगत पत्र व्यवहारों पर अधिकारी दस्तक्षेप कर सकते हैं।

(१३) प्रवास और राष्ट्रसे सुरक्षाकी स्वतन्त्रता—अपराधके अतिरिक्त नागरिक को अपनी इच्छानुसार राष्ट्र की सीमासे बाहर जाने का अधिकार होना चाहिए और जब कभी वह बाहर भी हो तो उस समय भी उसे अपने ही राष्ट्र से

सुरक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए जापान में रहनेवाले एक अँगरेज की देख रेख टोकियो स्थित ब्रिटिश राजदूतके अधिकार में है।

(१४) सांस्कृतिक एवं भाषागत अधिकार—प्रत्येक नागरिक को अपने दल के अनुसार सांस्कृतिक एवं भाषा सम्बन्धी अधिकार है। इस अधिकार को सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया है। अल्पमत वालों के अधिकार की रक्षा के लिए यह बहुत ही महत्व-पूर्ण है।

(१५) सामाजिक जीवन की सुविधाओं के अन्य अधिकार

राजनीतिक अधिकार

उपर्युक्त अधिकार नागरिक और आर्थिक अधिकार हैं और वह निम्नलिखित राजनीतिक अधिकारों से भिन्न हैं। सार्वजनिक पद प्राप्त करने का अधिकार, मतदान का अधिकार, आवेदन का अधिकार, नागरिक और राजनीतिक अधिकारों के अन्तर में बहुत कम विभिन्नता देखी जाती है। वास्तव में बहुत से अधिकार दोनों ही में आते हैं।

(१) धारा सभा और न्याय विभाग के अतिरिक्त और सभी सार्वजनिक पद को प्राप्त करने के समान अधिकार—प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में एक बहुत ही बहुमूल्य अधिकार है। राष्ट्र के सर्वोच्च पद के लिए जितना अधिकार सबसे धनी व्यक्ति को है उतना ही सबसे गरीब को भी। नागरिक ही इस अधिकार के अधिकारी है विदेशी नहीं।

(२) मतदान—मतदान का अधिकार सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक अधिकार है। मतदान ही के द्वारा एक प्रजातान्त्रिक राष्ट्र में, नागरिक अपनी सरकार में भाग लेता है। प्रजातांत्रिक सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्र के सभी पुरुष स्त्री को मतदान का अधिकार होना चाहिए, परन्तु सभी देशों में सभी व्यक्तियों को मतदान का अधिकार प्रदान नहीं किया गया है। विदेशी नाबालिग, पागल,

खूनी एवं अन्य अयोग्य व्यक्तियों को मतदान का अधिकार नहीं है। सम्पत्ति या शिक्षा योग्यता की भी एक शर्त है। पहले महिलाओं को मतदान का अधिकार नहीं था। परन्तु आज अधिकांश पाश्चात्य और कुछ अग्रगणी पूर्वी देशों में महिलाओं को मतदान का अधिकार है।

जनता का विचार है कि सम्पत्ति मतदान की शर्त नहीं होनी चाहिए और जन देशों में आरम्भिक शिक्षा आनिवार्य है वहां इसका महत्व नहीं।

(३) आवेदनका अधिकार— प्रत्येक नागरिकको उचित अधिकारियोंके पास व्यक्तिगत या सामूहिक रूपमें अपनी शिकायतोंको दूर करनेके लिए आवेदन करनेका अधिकार है।

राष्ट्रके विरोध करनेका अधिकार—हम कभी-कभी राष्ट्रके विरोध करनेके नागरिक अधिकार सम्बन्धी बातें करते हैं। परन्तु यह वैधानिक अधिकार नहीं है क्योंकि ऐसा होनेपर राष्ट्रको अपने ही विरोधमें नागरिकोंकी सहायता करनी पड़ती, यह मूर्खताभरी बात है। राष्ट्रके विरोधका अधिकार एक नैतिक अधिकार है और इसका प्रयोग असाधारण नैतिक महत्वके संकटकालमें ही किया जा सकता है।

कोई भी राष्ट्र जो नैतिकताकी रक्षा करता है वह वास्तवमें उचित है। अगर राष्ट्र कोई आज्ञा देता है और किसी व्यक्तिकी आत्मा उसे माननेकी सलाह नहीं देती तो उस व्यक्तिको राष्ट्रकी उस आज्ञाको अस्वीकार करनेका नैतिक अधिकार है। क्रान्तिका अधिकार इसी अधिकार पर आधारित है। परन्तु प्रत्येक अवस्थामें व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत स्वार्थके बदले सार्वजनिक हितकी बातें सोचनी चाहिए। क्रांति का नैतिक अधिकार अस्वीकार नहीं किया जा सकता, परन्तु इसका प्रयोग उसी अवस्थामें उचित कहा जा सकता है जबकि इसके परिणामको पूर्ण रूपसे तौल लिया गया हो कि वह बुरा नहीं भला ही होगा।

नागरिकके कर्त्तव्य और दायित्व

अधिकारोंके साथ-साथ नागरिकोंके कर्त्तव्य और दायित्व भी हैं । वर्त्तमान समयमें नागरिकके अधिकारके साथ-साथ कर्त्तव्यका भी उतना ही जोर देनेकी प्रथा है । नागरिक के यह अधिकार नैतिक और वैधानिक दोनों हैं और उनके लिए त्याग, साहस और अनुशासनकी आवश्यकता है । उसका अपने परिवार, पड़ोसी और साथी नागरिकों तथा पूरे समाजके प्रति कर्त्तव्य है ।

राष्ट्रके प्रति उसके सबसे महत्वपूर्ण कर्त्तव्य निम्नलिखित हैं:—

(१) वफादारी—प्रत्येक नागरिक को अपने राष्ट्रके प्रति वफादार रहना चाहिए। उसे सभी शत्रुओं से राष्ट्र की रक्षा करनी चाहिए और अपराधी तथा राष्ट्रद्रोहके दबानेमें राज्यकी सहायता करनी चाहिए। राष्ट्र, राष्ट्रकी रक्षाके लिए हथियार ग्रहण करनेकी मांग कर सकता है । वह नागरिकोंके लिए कुछ समय तक अनिवार्य सैनिक शिक्षाकी घोषणा कर सकता है । राष्ट्र की रक्षा करने तथा अपने वफादारीका परिचय देने के लिए नागरिकको प्राण भी न्योछावर करनेके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए।

(२) आज्ञा-पालन - प्रत्येक नागरिकको विधानके माननेके महान कर्त्तव्यों को निभाना चाहिए। सच्चे नागरिककी पहचान और किसी भी चीज से अधिक विधान को माननेमें है । विधानका निर्माण समाज की भलाईके लिये होता है । इसलिए जो इसे मानता है वह हृदय से समाजकी भलाई चाहता है । विधानके सम्मान और राष्ट्रके संगठन के प्रति आदर से ही अच्छे नागरिक बनते हैं। ऐसे भी अवसर आ सकते हैं जब कि समाज विरोधी विधानोंके विरुद्ध सार्वजनिक रायका संगठन करना पड़े। बहुत थोड़े अवसरों पर विधानको अस्वीकार करना नैतिक रूप में उचित कहा जा सकता है पर ऐसी अवस्थाओं में सावधानी से विचार कर लेना चाहिए कि क्या इस समस्याका समाधान अन्य प्रकार से इससे अच्छे रूपमें नहीं हो

सकता। विधान के सम्मान पर अगर एक बार चोट पहुंची तो वह हमारे सामाजिक व्यवस्था को कम्पायमान कर सकता है।

(३) करों की अदायगी—एक नागरिक को वाह्याक्रमण तथा आन्तरिक विद्रोह से राज्य की रक्षा करने के लिए अपने प्राण तक देने को प्रस्तुत रहना चाहिए। राज्य के संचालन के लिए उसे उन करों को भी समुचित रूपमें अदा करना चाहिए जो उसके ऊपर वैधानिक रूप में लगाये गये हैं।

(४) मतदान का समुचित प्रयोग—नागरिक को मतदान का अधिकार है। उस मत का प्रयोग भली-भांति सोच-समझकर करना चाहिए। एक प्रजातांत्रिक राज्यमें जनता को जो राजनीतिक शक्ति प्राप्त है उसका प्रयोग वह मतदान के द्वारा करती है। वर्त्तमान प्रजातांत्रिक राष्ट्र में दलगत सरकार का रिवाज है। बहुमत दलराज्य का संचालन करता है। इसलिए नागरिकों को उस दल को चुनना चाहिए जो उसके राष्ट्र का संचालन अच्छी तरह कर सके। उसे दलोंके कार्य क्रम और उम्मेदवारों की योग्यताके सम्बन्धमें विचार विमर्श करना चाहिए। जनता जबतक अपने मतको एक पवित्र धरोहर नहीं समझेगी अच्छी सरकारकी स्थापना नहीं हो सकती। अपने मतका प्रयोग करते समय उन्हें समाजकी भलाईका स्मरण रखना चाहिए। जो नागरिक अपने मत दानमें बेइमान या उदासीन होते हैं वह समाजके हितोंके विरुद्ध जाते हैं।

(५) प्रारम्भिक शिक्षा और काम— जिस प्रकार शिक्षा और काम अधिकारकी बातें हैं उसी प्रकार वे कर्त्तव्य भी हैं। प्रत्येक भले नागरिकको अपने बच्चोंको कम-से-कम आरम्भिक शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। अधिकांश आधुनिक राज्य इसके लिए उसे बाध्य करता है। शिक्षित जनताका निहित स्वार्थ वाले शोषण नहीं कर सकते।

नागरिकका कर्त्तव्य यह भी है कि वह कुछ रचनात्मक कार्य करे और दूसरेका भार बन कर न रहे।

(६) साधारण सेवामें— अन्तमें नागरिकका कर्त्तव्य है कि वह समाज की सभी समय सेवाएँ करे। उसे विश्वस्त सार्वजनिक पदोंको स्वीकार करनेके लिए प्रस्तुत रहना चाहिए और इसके लिए बुरा नहीं मानना चाहिए। सेवाकी इस भावनाको सार्वजनिक उत्साह कहते हैं। नागरिक जीवन जैसे स्वायत्त शासन के कार्य, सामाजिक सेवा कार्य आदिमें सक्रिय भाग लेना चाहिए।

जनतामें सार्वजनिक उत्साहाभावके कारण ही नगर तथा देहातोंके कार्य सफलता-पूर्वक सम्पन्न नहीं किए जा सकते। सार्वजनिक पदोंको स्वीकार करनेमें भले आदमियोंकी उदासीनता और अनिच्छाके कारण बुरे और स्वार्थी लोग उन पदोंपर पहुँच जाते हैं और उनका प्रयोग अपने संकुचित स्वार्थ सिद्धिके लिए करते हैं।

प्रश्नावली

(१) अधिकारमें कर्त्तव्य अन्तर्निहित है व्याख्या करो। (नागपुर १९३९) वर्तमान राष्ट्रोंमें नागरिक के महत्वपूर्ण अधिकार क्या हैं। (कल० १९२७)

(२) नागरिकके अधिकार के साथ उसके कर्त्तव्य, हैं भी व्याख्या करो और अपने देशके किसी नागरिकका उदाहरण दो। (कल० १९४०)

(३) (क) नागरिकताकी व्याख्या करो। (ख) एक नागरिकके अधिकार और कर्त्तव्य क्या हैं? (कल १९२८)

(४) एक नागरिक और प्रजाके बीच अन्तर बताओ। नागरिकके मौलिक कर्त्तव्य क्या हैं? (कल० १९३९)

(५) भाषणकी स्वतंत्रता और समाचार-पत्रकी स्वतन्त्रतासे क्या समझते हो? (कल० १९३३)

(६) अधिकार और कर्त्तव्य साथ साथ चलते हैं व्याख्या करो। (कल०१९३८) अधिकार कर्त्तव्यका प्रतिरूप है व्याख्या करो। (यू० पी० बोर्ड १९२२)

(७) अधिकारकी परिभाषा क्या है। एक नागरिकके नागरिक अधिकार क्या हैं? (कल० १९३१)

(८) अगर तुम्हारे नगरका म्युनिसिपल बोर्डका चुनाव अनुचित है या निःस्वार्थ वाले उसमें हस्तक्षेप करते हैं, तो इसके प्रति तुम्हारा कर्त्तव्य क्या है ? (कल० १९३८)

(९) (अ) सार्वजनिक सभा, (ब) भाषणकी स्वतन्त्रताके प्रति एक नागरिकके क्या अधिकार हैं ? (कल० १९३८)

(१०) एक वर्तमान राष्ट्रोंमें नागरिक अधिकार और उसकी सुविधायें क्या हैं ? क्या नागरिकके कुछ दायित्व भी हैं ? (कल० १९३४)

(११) वर्तमान राष्ट्रोंमें नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्यकी विवेचना करो। (कल० १९३५–४०)

(१२) नागरिकता के अधिकार और कर्त्तव्यपर छोटा निबन्ध लिखो। (कल० १९३७)

— — —

अध्याय ९

आदर्श नागरिकता

हमने एक नागरिक के अधिकार एवं कर्त्तव्य की व्याख्या पहले ही की है। स्पष्टरूपेण समझ लेना चाहिए कि यह नागरिकता प्रजातंत्री सरकार के अधीन ही प्राप्त हो सकती है। स्वाधीन देशके नागरिक के अन्दर अपने अधिकार एवं कर्त्तव्यों को समझने की योग्यता होनी चाहिए।

आदर्श नागरिकता के तत्व

ब्राइसके कथनानुसार बुद्धि आत्मनियंत्रण, एवं कर्त्तव्य ज्ञान एक नागरिक के लिए अनिवार्य है।

(१) जिस देशके नागरिक को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें सरकार संचालन में हाथ बँटाना होता है उसे कुशाग्र बुद्धि होना ही चाहिए। व्यक्ति-विशेष के मानसिक एवं चारित्रिक गुण सरकारी कार्यों में ही प्रकट होते हैं। उसे साधारण ज्ञान एवं वास्तविक ज्ञान का होना जरूरी है।

(२) आत्मनियंत्रण एक प्रकार की आज्ञानुवर्तिता है जिसके अभाव में अच्छे नागरिक बनने में सन्देह है। एक नागरिक को अपनी इच्छाओं का हनन कर जाति की इच्छाओं को रखना चाहिए। राष्ट्र के अस्तित्व रक्षा की यह पहली शर्त है। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छानुसार ही कार्य करना शुरू करे तो नागरिक समाज क गठन नहीं हो सकेगा। व्यक्ति को राष्ट्र के नियमों का पालन करना होगा क्योंकि इस प्रकार की आज्ञा पालन सर्वहित के लिए जरूरी है। पर आज्ञानुवर्तिता भय से आतंकित होकर उचित नहीं है। लास्की ने अधिक आज्ञाकारी होने को भी घातक बतलाया है।

(३) अन्तमें एक अच्छे नागरिक को कर्त्तव्य ज्ञान होना जरुरी है। यह एक व्यापक शब्द है जिसका तात्पर्य न केवल नियम पालन बल्कि और भी अधिक है। एक नागरिक को यह कभी नहीं भूलना होगा कि उसका महान दायित्व है। उसे जातिके प्रति अपनी सेवायें अर्पित करनी हैं।

उसे विदित होना चाहिए कि जाति को भलाई करने के लिए वह जो कुछ भी कर सकता है उसे करना ही होगा। कानून एक नागरिक को निश्चित कर्त्तव्य पालन के लिए बाध्य करता है जैसे देशके रक्षार्थ युद्ध करना, घायलों की सेवा करना, अपने बच्चोंको पढ़ाना, एवं कर चुकाना आदि। अच्छा नागरिक इस कर्त्तव्य का पालन यह समझकर नहीं करता कि कानून उसे ऐसा करने को वाध्य कर रहा है बल्कि वह राष्ट्र की भलाई को दृष्टिगत करके हो यह कार्य करता है। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे कार्य हैं जैसे मतदान आदि जिनके लिए राष्ट्र व्यक्ति पर दबाव नहीं दे सकता। इस कार्य को नागरिक अपनी बुद्धि द्वारा ही संचालित होकर सम्पन्न करता है।

आदर्श नागरिकता के रोड़े

आधुनिक प्रजातंत्र के जमाने में आवश्यकता इस बात की है कि सरकार जनता की और जनता द्वारा मनोनीत सरकार हो। इसलिए व्यक्ति के गुण और सेवा की महान अवश्यकता है। अगर एक नागरिक बेवकूफ या मूर्ख है अगर वह स्वार्थी है अगर वह दलगत भावनाओं द्वारा संचालित हो रहा है तो वह देश की प्रगति में रोड़ा होगा। क्योंकि अच्छी नागरिकता के मार्ग के रोड़े देश के प्रगति पथ के भी रोड़े हैं। भारतमें सामाजिक अयोग्यता एवं वर्ग तथा जातिभेद का.ण अच्छी नागरिकता के मार्ग में अनेक रोड़े हैं। कटुतापूर्ण साम्प्रदायिक मतभेद एवं धर्मान्धता समाज को सत्यानाश को पहुँचाते हैं। भयावह निरक्षरता, अनुदारता, एवं अत्यन्त गरीबी के कारण वह बहुत पीछे पड़ गये हैं जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें

नागरिक अधिकार भी प्राप्त नहीं होते। नागरिक अधिकाराभाव होनेपर अच्छी नागरिकता प्राप्त नहीं हो सकती।

अब हम अच्छी नागरिकता के मार्ग के रोड़ों पर क्रम से प्रकाश डालेंगे।

(१) सर्वप्रथम हम अज्ञानता एवं जड़ता का जिक्र करेंगे जो अज्ञान एवं अनुभव के विरुद्ध हैं।

अगर वह मूर्ख है तो जिस सामाजिक कार्यमें भी वह भाग लेगा उसमें उससे कुछ भलाईकी आशा नहीं रहेगी। वह सामाजिक कार्यों के योग्य नहीं है। उसकी अज्ञानता से राष्ट्र के समक्ष एक समस्या उपस्थित हो जाती है।

'ज्ञान ही शक्ति है'। किसी राष्ट्र की प्रगति एवं ताकत उसके नागरिक के अनुभव एवं उत्तरदायित्व के ज्ञान पर ही निर्भर करता है।

अपने नागरिक को शिक्षित बनाना राष्ट्र का कर्तव्य है जिससे वह अच्छे नागरिक बन सकें। प्रजातन्त्रवाद की सफलता शिक्षितों की पर्याप्त संख्या पर ही निर्भर करती है। गणतन्त्र समूह शासन में अभिहित, हो जा सकता है अगर औसतन नागरिक मूर्ख या अज्ञान हो।

(२) इसके बाद आत्मपरता आती है जो आत्म नियंत्रण के विपरीत है। जिस देशके नागरिक आत्म-नियंत्रण नहीं रखते वहां सुसभ्य सरकारकी स्थापना नहीं हो सकती। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपनी ही अपनी सुविधा का ध्यान रखे तो महान अनर्थ उपस्थित हो जायगा। प्रजातन्त्री शासन के अन्दर व्यक्ति को बहु-संख्यक दल के समक्ष घुटने टेक देने होता है अन्यथा कोई सरकार चल नहीं सकती।

३—फिर भी नागरिक कर्तव्य बोध में बहुत से रोड़े हैं जो उसकी प्रगति के मार्ग में बाधक होती हैं। ये हैं—(क) उदासीनता, (ख) व्यक्तिगत स्वार्थ, (ग) दलगत कलह।

(क)—ऐसा कहा गया है कि प्रत्येक आदमी का कार्य किसी भी व्यक्ति का कार्य नहीं है। इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों के प्रति साधारण जनता की एक उदासीनता की सी भावना है क्योंकि वह ऐसा समझता है कि इस उत्तरदायित्व में कितने ही आदमियों के भाग हैं। परन्तु सार्वजनिक कार्यों की इस प्रकार की उदा-

सीनता समाज के लिए बहुत ही हानिप्रद है। सार्वजनिक कार्यों के इस उदासीनता के अतिरिक्त वर्तमान राष्ट्र की विस्तृत सीमा व्यक्तिगत नागरिक के सीमित क्षेत्र और प्रतियोगिता के हित जैसे—खेल-कूद, उद्योग, व्यवसाय आदि उसकी उदासीनता में वृद्धि करते हैं।

आवश्यकता होने पर प्रत्येक नागरिक को सार्वजनिक दायित्व के प्रति प्रस्तुत रहना चाहिए। उसे मतदान का एक गम्भीरतापूर्ण कार्य समझना चाहिए और सार्वजनिक पद को स्वीकार करने के लिए हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति के सहयोग के बिना महान कार्यों की सफलता और सार्वजनिक हित सम्भव नहीं।

कार्यों की उदासीनता के साथ साथ विचारों की उदासीनता भी है। भले नागरिक को अपने प्रति इस रूप में सोचना चाहिए कि उसे समाज का भी हित साधना है और यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि स्वतन्त्रता का मूल्य निरंतर सचेतना है और सच्ची चेतना स्पष्ट और स्वतन्त्र विचार धारा से उत्पन्न होती है।

(ख) व्यक्तिगत स्वार्थ अच्छी नागरिकता के पथ में बहुत बड़ी बाधा है। व्यक्तिगत स्वार्थ की सिद्धि मतों को क्रय करके करों आदि को न अदा करके विशेष स्थान तथा उद्योगों को विशेष सुविधा प्रदान करके तथा सरकारी ठेके आदि का दुरुपयोग कर जनता के हितों पर कुठाराघात करके होती है। व्यक्तियों के मस्तिष्क में स्वार्थ की भावना अभी भी कई रूपों में काम करती है। कभी कभी हम देखते हैं कि एक व्यक्ति अपने कर घटाने, अपने सम्बन्धियों को नौकरी दिलाने, अपने मुहल्ले की उन्नति में सार्वजनिक रुपये खर्च करने और अपने उद्योग व्यवसायों के लिए विशेष लाभ प्राप्त करने की चेष्टायें करते हैं। इस प्रकार समाज को उसके उचित मांगों में से वंचित रखते हैं। मत की बिक्री व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए सार्वजनिक हित की हत्या कर के ही की जा सकती है। धारा सभा के सदस्यों की स्वार्थ भरी इच्छा उचित कर को निर्धारित करने में बाधा पहुँचाती है। कर भार

कुछ वर्ग के व्यक्तियों पर दूसरे वर्ग के व्यक्तियों से अधिक पड़ सकता है। सार्वजनिक कोष का प्रयोग एक क्षेत्र को बाद देकर दूसरे क्षेत्र के विकास में खर्च हो सकता है और भी बहुत से तरीके हैं। जिनके द्वारा स्वार्थ की भावना हमारे नागरिक कर्त्तव्य की उचित पूर्ति में बाधा पहुँचा सकती है।

एक भले नागरिक को सर्वदा इस बात के लिए जागरुक रहना चाहिए कि उसके स्वार्थ की भावना उसके सार्वजनिक चरित्र को न दूषित करे।

(ग) दलगत कलह—वर्तमान गणतांत्रिक देशों में दलगत व्यवस्था आवश्यक है और दलगत उत्साह यदि वह स्वस्थ और निर्माणात्मक है तो सुन्दर राजनीतिक संघठन में सहायक होता है। बिना ईर्ष्या या स्वार्थ की भावना के स्वस्थ्य प्रतियोगिता निसन्देह अच्छी है।

परन्तु दलगत कलह कुछ अस्वस्थकर बातों को भी जन्म देती है और यह अधिकांश वर्तमान गणतान्त्रिक राष्ट्रों में पायी जाती है। दलगत भावना स्वतन्त्र विचार में बाधा पहुँचा सकती है इसके द्वारा व्यक्ति सत्य की नहीं बल्कि अपने दल की विजय चाहता है। यह विभिन्न दलों के समर्थकों के बीच वैमनस्य की भावना पैदा करती है और व्यक्ति को राष्ट्रहित के बदले दलगत हित का समर्थक बनाती है। एक भले नागरिक को हमेशा इस बात के लिए सावधान रहना चाहिए कि उसका दलगत उत्साह राष्ट्र के प्रति उसकी वफादारी में बाधा नहीं पहुँचायी।

ब्राइस के अनुसार इसका प्रतिकार—(१) शासन-व्यवस्थाकी उन्नति—विधान एवं सभा समितियों का संशोधन (२, आचार नीति में सुधार—उच्चादर्शों की शिक्षा देकर जनता की चारित्रिक एवं आध्यात्मिक उन्नति करना है।

(क) सरकार शासन-व्यवस्थामें सुधार—अगर सरकार सुविधा-बादिता से काम लेती हो, अगर वह मौलिकता को दबा देना चाहती हो अगर जनता को पद-दलित करना चाहती हो तो इस प्रकार की सरकार

एक क्षण भी ठहरने योग्य नहीं है उसमें सुधार होना ही चाहिए। राष्ट्र विशेष की जनता की वफादारी प्राप्त करने के लिए राष्ट्र का गठन इस प्रकार होना चाहिए जिससे जनता अपने अधिकार को सुरक्षित समझे और राष्ट्र को सदैव अपना माने।

(ख) जनता का सुधार-आचार नीति में सुधार--एक राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के द्वारा ही जनता के चरित्र और उसकी संस्कृति में सुधार हो सकता है। नागरिक आदर्श की सच्ची प्राप्ति के लिये नागरिकों में नागरिक गुणों का विकास ही एक मात्र पर्याप्त नहीं है बल्कि उदासीनता वैयक्तिक स्वार्थ और अस्वस्थकर दलगत कलह यथा सच्चे नागरिक बनने के पथ में बाधा पहुँचाने वाली बातों को दूर करना ही आवश्यक है।

प्रश्न

(१) अच्छे नागरिक के क्या आवश्यक गुण हैं? राष्ट्र के प्रति नागरिक के क्या दायित्व हैं? (नाग० १९३६-३७)

(२) अच्छे नागरिक के पथ में रुकावटें डालने वाली कौन कौनसी बातें हैं। (कल० १९३८-४०)

(३) अच्छे नागरिकके पथकी प्रमुख बाधाओं पर विचार करो। (कल० १९३९)

४) सावधानी से बतलाओ कि क्या तुम एक नागरिक हो। (कल० १९४३)

अध्याय १०

भारतीय नागरिक

हमने इसके पूर्व एक आधुनिक सभ्य राज्यके नागरिकोंके अधिकार का वर्णन किया है और उन प्रतिबन्धोंको ओर भी संकेत किया है। जिनके अन्तर्गत नागरिक को अपने इन अधिकारोंका प्रयोग करना चाहिए। भारतमें इसके अतिरिक्त कुछ और भी प्रतिबन्ध हैं जिनका हम संक्षेपमें वर्णन करेंगे।

(२) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता—सर्वप्रथम यह उल्लेखनीय है कि नागरिकके अधिकार और स्वतन्त्रता तभी वास्तविक समझे जा सकते हैं जब कि वे न्यायालय द्वारा लागू किए जा सकें और कोई भी प्रतिबन्ध जिसपर न्यायालयमें विचार नहीं किया जा सके तानाशाही है। इसलिए आर्डिनेन्स एवं रेगुलेशनके द्वारा जो कानून न्यायालयोंकी बिना परवाह किये बनाये जाते हैं और जब विधान कार्यकारिणी को अत्यधिक शक्ति देता है तो अधिकार और स्वतन्त्रताका अपहरण होता है।

जब कोई व्यक्ति गिरफ्तार किया जाता है तो उसपर साधारण न्यायालय में मामला चलाना चाहिए। परन्तु भारतमें कार्यकारिणीके अधिकारियोंको इतना अधिकार दिया गया है कि वे किसी भी व्यक्तिको बिना न्यायालयमें उपस्थित किये अनिश्चित काल तक जेलमें डाले रख सकते हैं। ईस्ट इण्डिया कम्पनीके समय में इस प्रकारके शासनकी आवश्यकता हो सकती थी। ब्रिटिश शासन कालमें भी किसी प्रकार यह चीज चल सकती थी परन्तु १५ अगस्त १९४७ के पश्चात् इस प्रकारके कोई विधान चालू नहीं रहना चाहिये।

(२) आवागमन, निवास और प्रवास के अधिकार—हमने यह देखा है कि नागरिक का एक साधारण अधिकार यह है कि वह स्वतंत्रता पूर्वक जहां चाहे आ जा सके और राज्य के अन्तर्गत जहां चाहे निवास कर सके। अपराधियों आदि की गतिविधि पर कुछ वैधानिक प्रतिबन्ध हो सकते हैं परन्तु भारत में ब्रिटिश राज्यके अन्तर्गत नागरिकों पर अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध लगे हुए थे।

अगर भारत ब्रिटिश साम्राज्य एक है तो उसके नागरिकों को साम्राज्य के किसी भी भागमें स्वतंत्रता पूर्वक निवास करने का अधिकार होना चाहिए। परन्तु दक्षिणी अफ्रिका ने सेग्रिगेशन एक्ट और रुदिशिया के भूमिका आदि के द्वारा भारतीय जनता पर जो प्रतिबन्ध लगा रखा है इसके समाधान नये संयुक्त राष्ट्र संघके हस्तक्षेप पर भी संभव नहीं हुआ। दक्षिणी अफ्रिका में भारतीयों को आज भी वहां के निवासियों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हो सके। यही नहीं बर्मा और सिलोन जैसे देशोंमें भी भारतीय प्रवासियों के विरुद्ध कई प्रकार के विधान पास हुए हैं। आगेसे हमें इस सम्बन्ध में सतर्क रहने की भारी आवश्यकता है।

(३) सार्वजनिक पद प्राप्ति के अधिकार—सार्वजनिक पदों को प्राप्त करने के सभी लोगों को समान अधिकार दिया गया। अब जब कि हम स्वतंत्र हो गये हैं भारतीय और यूरोपियनों के बीच पक्षपात का प्रश्न नहीं उठता। परन्तु यह उल्लेखनीय है कि हमारे विदेशी शासकों के पक्षपात पूर्ण दृष्टि के कारणही जो सभी विभाग के उच्च पदोंपर अपने आदमियों को रखना ही युक्तिसंगत समझते थे आज हमें टेक्निकल तथा अच्छे सेनापति आदि अनुभवी और सुयोग्य व्यक्तियों का अभाव खटकता है।

(४) स्वतंत्र मताभिव्यक्ति के अधिकार— ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत कार्यकारिणी के अधिकारियों को इतने तानाशाही अधिकार प्रदान किये गये थे कि मताभिव्यक्ति की स्वतंत्रता नाम मात्र की रह गयी थी। वही अधिकारी स्वयं विधान बनाते थे और न्याय के नाम पर स्वयंउसका संचालन भी करते थे।

(५) भारतीय समाचार पत्रोंकी स्वाधीनता— भारतीय दंड विधान की धाराके अन्तर्गत मान हानि तथा राजद्रोहके अंतर्गत दायित्वके अतिरिक्त क्रिमिनल प्रोसेज्योर कोडकी ९९ वीं धाराके अंतर्गत भी प्रेसकी तलाशी ली जा सकती है तथा पुस्तकें और समाचार पत्र जप्त किये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त पोस्ट-आफिस और समुद्री चुंगी ऐक्ट, देशी राज्य सुरक्षा एक्ट आदिके द्वारा भारतीय समाचार पत्रोंपर ब्रिटिश नौकरशाहीने अनेक प्रकारके प्रतिबन्ध लगारक्खे थे।

ब्रिटिश साम्राज्यके आरम्भकालमें भारतीय प्रेसोंपर अनेक प्रकारके बहुत ही आपत्तिजनक प्रतिबन्ध लगे हुए थे। वेलेजलीके समयमें एक भारी प्रतिबंधात्मक आज्ञा लगी थी। लार्ड मेटकाफने बहुतसे प्रतिबंधोंको दूर किया।

सन् १८७८ में लार्ड लिटनके समयमें स्वीकृत वर्नाक्यूलर प्रेस एक्टने समाचार पत्रोंकी स्वतन्त्रता पर भारी कुठाराघात किया। इस प्रकार १९०८, १९१९ १९२२, १९३० और १९३२ में विभिन्न प्रकारके आर्डिनेन्स और कानूनोंके द्वारा भारतीय प्रेसोंकी स्वतन्त्रताका अपहरण किया गया।

(६) व्यक्तिगत पत्रव्यवहारकी स्वाधीनता—व्यक्तिगत पत्र-व्यवहारमें हस्तक्षेप सार्वजनिक भलाईके नामपर न्यायसंगत कहा जा सकता है परन्तु कार्यकारिणीके अधिकारियोंको इतना अधिकार नहीं होना चाहिए कि वे छोटी-छोटी बातोंके आधार पर उसका दुरुपयोग करें। स्वतन्त्र देशोंमें व्यक्तिगत पत्र व्यवहार के साथ तभी हस्तक्षेप किया जाता है जब कि अधिकारियों को यह बात मालूम होती है कि उक्त पत्रकी बातें राज्यके लिए बहुत ही संकटप्रद हैं। परन्तु भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके अंतर्गत छोटी-छोटी बातोंमें भी व्यक्तिगत पत्र-व्यवहार

में हस्तक्षेप होता रहा है और साधारण समयमें भी व्यक्तियोंके पत्र अधिकारियों द्वारा पढ़े जाते रहे हैं।

(७) **सम्मेलन एवं जनसभाका अधिकार**—ब्रिटिश नौकरशाहीके भी समय भारतीयोंको यह स्वाधीनता थी पर गवर्नरजेनरल को यह सुविधा छीन लेनेका सदैव अधिकार रहता था। १९०८ के दण्ड विधान संशोधित ऐक्टसे द्वितीय भागके अनुसार उन्हें उक्त सुविधा दी गयी थी। गवर्नर जेनरलकी इस शक्तिको तानाशाही कह सकते थे क्योंकि उनकी शासन परिषद्के आदेशके विरुद्ध किसी न्यायालयमें मामला नहीं चलाया जा सकता था। भारतीय जनताने जनसभा विशेषको वैधानिक या अवैधानिक सम्बित करनेके लिए न्यायालयकी सदैव मांग की। पर नौकरशाहीके कानोंपर जूँ तक भी नहीं रेंगी।

१९११ के आपत्तिजनक सभा ऐक्टके मुताबिक जिस क्षेत्रमें यह ऐक्ट लागू हो वहां पर किसी प्रकारकी सभा नहीं हो सकती। पर ब्रिटिश नौकरशाहीने १४४ धाराका दुरुपयोगकर जनसभा सम्बन्धी नागरिक अधिकार पर ये कुठाराघात किया।

नौकरशाही ने यह काम आलोचना प्रत्यालोचनाओंसे बचनेएवं विरोधी प्रचारको रोकनेके लिए ही किया करती थी। यह नागरिक अधिकार कोई नयी चीज नहीं है। प्राचीन भारतमें जनताको बोलने और आलोचना करनेका पूरा अधिकार था। महाभारतके शान्ति पर्वसे प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारतमें यह अधिकार बहुत व्यापक था। उसमें लिखा है:—

अतीत दिवसे वृत्तं प्रशंसन्ति नवा पुनः
गुप्तैश्चारैरनुमतैः पृथिवी मनुसारयेत
जानीत यदिमे वृत्तं प्रशंसन्ति न वा पुनः
कश्चिद्रोचेजनपदे कच्चिद्राष्ट्रे चमेयश

जनता द्वारा कटु आलोचनाके कारण ही रामचन्द्रने सीताका परित्याग किया था।

शिक्षा और काम—हम आज स्वाधीन होनेके पश्चात उपर्युक्त अधिकार सम्बन्धी चाहे किसी प्रकारकी मांग करें पर ब्रिटिश नौकरशाहीकी तानाशाहीके अन्दर हमें ये अधिकार प्राप्त नहीं थे। प्रगतिवादी प्रजातन्त्री देशोंमें प्रारम्भिक शिक्षा ही जरूरी नहीं है बल्कि निःशुल्कता भी साथ-साथ परमावश्यक है। जर्मनीमें न केवल निःशुल्क शिक्षा बल्कि प्रारम्भिक छात्रोंको निःशुल्क पुस्तकें एवं अन्य शैक्षणिक साधन प्रदान किये जाते हैं। पर भारत में नौकरशाही ने जनमस्तिष्क को कुचलने की जो चेष्टा की वह सर्वथा निन्दनीय है।

बेकारी के सम्बन्ध में तो भारत को पूछना ही नहीं है। पश्चिम के कर्मचारियों की योग्यता एवं रुचिके अनुसार ही कार्य करना पड़ता है। वह काम चाहता है अतः काम उसे मिलना ही चाहिए। अगर उसे कोई काम नहीं मिलता तो उसके भरण-पोषण की व्यवस्था राष्ट्र को करनी होगी।

कांग्रेस और भारतीय नागरिकों के अधिकार—भारतीय नागरिकों के सम्बन्ध में १९३१ में करांची कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया उसका जिक्र करना अप्रासंगिक नहीं होगा। इस प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए महात्मा गांधी ने कहा था 'यह उन लोगों के लिए है जो व्यवस्थापिका के सदस्य नहीं, जो विधान के प्रश्न को उलझन पूर्ण बनाना नहीं चाहते तथा जो देशकी शासन व्यवस्था में सक्रिय भाग नहीं लेते।' इसका तात्पर्य यह था कि गरीब जनता वास्तव में स्वराज्य का मतलब स्पष्ट रूपेण समझ जाय। प्रस्ताव में यह भी बतलाया गया कि शासन शक्ति भारतीयों के हाथ में आते ही यह विधान लागू कर दिया जायगा। जनता के शोषण को रोकने के लिए राजनीतिक स्वाधीनता को आर्थिक स्वाधीनता बतलाया, (१) व्यक्तिगत सम्पत्ति चालू रहेगी, (२) प्रमुख उद्योगों पर अधिकार कर राष्ट्र मृत्यु कर आदि के दुर्गुणों को दूर करेगा,

(३) सैनिकों की संख्या में कमी कर सैनिक खर्च घटाया जायगा। प्रथम प्रस्ताव को पास कर कांग्रेस ने राजाओं एवं जमींदारों के भय को दूर किया। कांग्रेस की योजना क्रान्तिकारी नहीं थी इसीलिए १९३६ में समाजवादियोंने क्रान्तिकारी समाजवादी योजना उपस्थित करने की मांग की।

कांग्रेस का स्वाधीनतापत्र—मौलिक अधिकार सम्बन्धी कांग्रेस की घोषणा से स्वाधीनता सम्बन्धी कांग्रेस के उद्देश्यों का पूरा ज्ञान हुआ।

मौलिक अधिकार

(१) (क) प्रत्येक भारतीय को मिलने जुलने, विचार स्वातंत्र्य एवं शस्त्रविहीन शान्तिपूर्वक सम्मेलन का अधिकार रहेगा। पर विधान एवं नैतिकता के विरुद्ध ऐसा अधिकार नहीं होगा।

(ख) प्रत्येक भारतीय को धार्मिक एव सांस्कृतिक स्वाधीनता रहेगी। पर इससे जनशांति पर कोई आघात न हो।

(ग) अल्पसंख्यकों की भाषा, संस्कृति एवं लिपि की रक्षा की जायगी।

(घ) धर्म, जाति या वर्ग के विना भेद-भाव माने सभी भारतीय विधान के समक्ष बराबर हैं।

च) सरकारी नौकरी प्राप्त करने, व्यापार चालू करने आदि में धर्म या जाति के कारण किसी भी भारतीय को किसी प्रकार की विशेष सुविधा नहीं दी जायगी।

(छ) सरकारी सड़कें, कुएँ, स्कूल तथा वे संस्थायें जो व्यक्ति द्वारा भी जनता के हित के लिए दी गयी हैं सभी प्रवेश पा सकेंगे।

(ज) अस्त्र-शस्त्र सम्बन्धी नियम में संशोधन के पश्चात् प्रत्येक भारतीय को अस्त्र शस्त्र लेकर चलने का अधिकार और कर्त्तव्य है।

(झ) गैर वैधानिक रूपमें किसी भी व्यक्ति की स्वाधीनता पर आघात नहीं किया जायगा और न तो उसकी सम्पत्ति छीनी ही जा सकती है।

(ट) धार्मिक मामलों में राष्ट्र तटस्थ रहेगा।

(ठ) चुनाव वयस्कमताधिकारानुसार होगा।

(ड) राष्ट्र निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करेगा। शैक्षणिक संस्थाओं का उद्देश्य जनता के उत्साह को बढ़ाना एवं छात्रों को मानसिक प्रगति की ओर ले जाना तथा राष्ट्रीयता का प्रचार करना होगा। शिक्षा देते समय विरोधी विचारों को कुचलने की चेष्टा नहीं की जायगी।

(ढ) राष्ट्र किसी प्रकार की उपाधि नहीं देगा।

(त) प्रत्येक भारतीय का भारत के कोने-कोने में घूमने, निवास करने एवं व्यापार चालू करने का अधिकार होगा।

(थ) कानून के अनुसार अगर कोई व्यक्ति अपराधी नहीं है तो उसे कदापि दण्ड नहीं दिया जायगा।

(द) गैर वैधानिक रूप में पोस्ट, तार, डाक के मामले में व्यक्तिगत गोपनीय बातें नहीं खोली जायंगी।

(ध) किसी भी व्यक्ति को किसी अधिकारी या जनता के प्रतिनिधि के विरुद्ध आवेदन पत्र देने एवं शिकायत करने का अधिकार है। यह काम सामूहिक और व्यक्तिगत दोनों रूपों में हो सकता है।

(न) आर्थिक दण्ड नहीं दिया जायगा।

मजदूरों के अधिकार

(२) राष्ट्र औद्योगिक मजदूरोंके स्वार्थों की रक्षा करेगा तथा उनके लिये उचित वेतन, कार्य की स्वास्थकर शर्तें, सीमित घण्टे, मालिकों और मजदूरों के झगड़े को मिटाने के लिए उचित न्यायालय तथा बुढ़ापा एवं बेकारी के कारण आर्थिक क्षति पूर्ति करने के लिए राष्ट्र उचित विधान बनायेगा।

(३) इच्छा के विरुद्ध एवं उचित मुआविजे के बिना किसी भी व्यक्ति को काम करने के लिए लाचार नहीं किया जा सकता।

(४) स्त्रियों पर विशेष ध्यान दिया जायगा विशेषकर उन पर तो और ध्यान रहेगा जिनके बच्चे हैं। प्रसव-काल के लिए सरकार विधान बनायेगी।

(५) अल्पावस्था के बच्चे किसी फैक्टरी में काम नहीं करेंगे।

(६) अपने स्वार्थों के रक्षार्थ मजदूर यूनियन बनाने को स्वतन्त्र रहेंगे।

कर और व्यय नीति

(७) जमीन कर की पद्धति में सुधार होगा तथा इस प्रकार की व्यवस्था की जायगी जिससे छोटे छोटे किसानों को कृषि सम्बन्धी कम से कम कर देना पड़े। पैदावार मारी जाने पर कर भी माफ होगा, इसी प्रकार की व्यवस्था जमींदारों के साथ भी है।

(८) निश्चित रकम तक की सम्पत्ति से ऊपर की सम्पत्ति पर ही मृत्यु कर वसूल किया जायगा।

(९) पार्श्ववर्ती देशों के साथ शान्ति नीति बरती जायगी तथा सेना घटाकर आधी कर दी जायगी जिससे व्यय कम हो सके।

(१०) सिविल विभागों के व्यय और वेतन दोनों घटाये जायगे। विशेष विशेषज्ञ के अतिरिक्त किसी भी सरकारी कर्मचारी को ५०० रुपये से अधिक वेतन प्राप्त नहीं होगा।

(११) नमक कर उठा दिया जायगा।

आर्थिक और सामाजिक योजनायें

(१२) राष्ट्र स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग को प्रोत्साहन देगा और इस प्रकार की नीति अख्तियार करेगा जिससे विदेशी वस्त्र और सूत का अभाव न हो।

(१३) मद्यपान को निषिद्ध कर दिया जायगा।

(१४) राष्ट्रीय स्वार्थों के लिए ही मुद्रा विनिमय और मुद्राचलन का प्रयोग होगा।

(१५) राष्ट्र प्रमुख औद्योगिक केन्द्र, खानों एवं यातायात के समस्त साधनों पर अधिकार करेगा।

(१६) कृषि सम्बन्धी कर्ज को समाप्त करने के लिए उचित कार्रवाई की जायगी।

(१७) स्थानीय अधिकारियों के जरिये राष्ट्र ग्रामीणों के मनोविनोद, वयस्क शिक्षा, कृषि सुधार, चरखे को प्रोत्साहन तथा अन्य देशी कलाओं को जाग्रत करने की चेष्टा करेगा।

(१८) स्थायी सैनिकों के अतिरिक्त नागरिकों को भी सैनिक शिक्षा दी जायगी जिससे रक्षा के समय वे काम आयें।

प्रश्न

(१) भारतीय नागरिक अधिकार का प्रयोग कहां तक करते हैं ?

(२) समाचार पत्र की स्वतन्त्रता से क्या लाभ है ? क्या तुम भारत में पत्र स्वाधीनता पर किसी प्रकार के रोक के पक्षपाती हो ? (कल० १९२९)

अध्याय ११

नागरिकतासे सम्बन्धित परिवार, गाँव, नगर, देश एवं विश्व

पहले हमलोगोंने नागरिकके स्वभावका जिक्र किया है। खास तौरपर हम लोगोंने नागरिकके कर्त्तव्य और अधिकारका भी वर्णन किया है। नागरिकको केन्द्र मानकर अनेक परिधियाँ बनायी जा सकती हैं जिनमें लघुतम परिधि परिवार है। इसके बाद गाँव या नगर है। महत्तर देश एवं महत्तम विश्व है। अतः नागरिकतासे सम्बन्धित परिवार, गाँव, नगर एवं विश्व के अध्ययनकी आवश्यकता है। इस प्रकारका अध्ययन दो विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा हो सकता है।

प्रथम आधुनिक नागरिककी स्थितिकी परीक्षा, स्थानीय राष्ट्रीय एवं सांसारिक दृष्टिकोणसे इसके अधिकार एवं कर्त्तव्यकी व्याख्या है। द्वितीय मनुष्यके नागरिक ज्ञान एवं इन बातोंके ज्ञानके क्रमिक विकास ऐतिहासिक अध्ययन भी यह हो सकता है। इस प्रान्तकी संक्षिप्त व्याख्यामें हमलोग जांचकी दो पद्धतियोंको एक बद्ध करनेकी चेष्टा करेंगे।

नागरिकता और परिवार—कोई भी पर्यवेक्षक परिवारकी प्रमुखताको अस्वीकार नहीं कर सकता, जो परिवार सभ्यताका गुणनखण्ड एवं नागरिकताका अध्ययन स्थान है। परिवारका स्वाभाविक विधान यह है कि नवयुवक अपने मां बाप पर सर्वथा निर्भर करता है। प्राचीन कालमें केवल माता पिता और बच्चोंसे ही परिवारका गठन नहीं होता था। परिवार में गुलामोंकी भी गणना होती थी।

यहां यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि कानूनकी मातहती स्वीकार करनेकी जो बात उठी वह प्राचीनकालमें परिवारके मुखियाकी मातहतीकाही एक विस्तृत रूप है। अतः नागरिकताका प्रारम्भिक ज्ञान पारिवारिक विद्यालय द्वारा ही प्राप्त हुआ। यद्यपि कालक्रमसे शनैः शनैः पारिवारिक अनुशासनकी ताकत घटती गयी तथापि परिवार नागरिकताके अध्ययनका प्राथमिक स्थान है अनेक दृष्टिकोणों से परिवार राज्यका ही अनुरूप है। क्योंकि सामाजिक एवं नागरिक व्यक्ति पारिवारिक जीवनमें ही विकास प्राप्त करते हैं। परिवारमें ही सर्व प्रथम व्यक्ति सर्वहित पर विचार करता है। अपने परिवारके हितकी कामना करता है। इस ज्ञानसे अच्छा नागरिक बननेमें पर्याप्त सहायता मिलती है। क्योंकि अच्छी नागरिकताका एक तत्व सम्प्रदाय के हितार्थ व्यक्तिके निजी स्वार्थका त्याग है। अगस्तकोम्पके शब्दोंमें पारिवारिक जीवन सामाजिक जीवनका स्थायी विद्यालय है जो सरकार एवं अनुशासन दोनोंके शब्द अर्थके सदृश सम्बद्ध है।

इसके अतिरिक्त एक नागरिक को पारिवारिक सदस्य के रूपमें भी कुछ कर्त्तव्यों का पालन करना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप माँ बाप का यह देखना कर्त्तव्य है कि उनके बच्चे स्वस्थ सुशिक्षित एवं सच्चरित्र हों। इसके अतिरिक्त परिवार की उचित आर्थिक स्थिति पर ही सम्प्रदाय का मंगल निर्भर करता है। परिवार की आर्थिक स्थिति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे स्वावलम्बन, अध्यवसाय एवं सेवा भावना को प्रोत्साहन मिले। इस प्रकार सामाजिक संघ के रूपमें परिवार सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है।

नागरिकता और ग्राम या नगर—परिवार से बाहर निकलकर द्वितीय विस्तृत क्षेत्र एक नागरिक को ग्राम या नगर मिलता है। कृषि सम्बन्धी जीवन व्यतीत करनेके लिए जब अनेक परिवार एक ही स्थान पर आकर बस जाते हैं तो एक ग्राम का विकास होता है। कला और उद्योग की वृद्धि के पश्चात् नगर का विकास हुआ। बहुत बड़ी संख्या में लोग उस केन्द्र की ओर दौड़ने लगे जहाँपर

शाही कचहरी तथा पवित्र तीर्थ स्थान था। इस प्रकार गांव और नगरमें तादात्म्य सम्बन्ध है क्योंकि वे एक दूसरे से स्वतंत्र बिल्कुल ही नहीं है। जब गांव खाद्यान्न, कच्चा माल एवं एतादृश अन्यान्य वस्तुएँ नगरों को देता है तो इनके बदले में नगर भी पक्का माल एवं ग्राममें अप्राप्य अन्य आवश्यक वस्तुएँ देता है। नगर और सभ्यता में कितना गहरा सम्बन्ध है इसे हम पश्चिम को दृष्टिपात करके मजेमें समझ सकते हैं। भारत में सुसंस्कृत कला का स्थान वृद्ध करने एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र नगरों को बनाने की चेष्टा की गयी है।

एक ग्राम के निवासी एक सम्प्रदाय बनाते हैं। उनकी सर्वनिष्ठ समस्या होती है। प्राचीन भारत में एक भारतीय ग्राम स्वशासित होता था जिसमें सबको उचित स्थान प्राप्त था। श्रम विभाजन के आर्थिक सिद्धांत पर ही वर्ग व्यवस्था कायम हुई थी। पर आज यद्यपि बहुत से वर्ग अपने प्राचीन पेशों को अपनाये हैं पर आर्थिक सिद्धांतानुसार श्रम विभाजन का रूप तो बिल्कुल ही नहीं रह गया है। आज ग्राम आर्थिक दृष्टिकोण से संतुष्ट बिल्कुल ही नहीं है।

आधुनिक काल में ग्रामीण समस्यायें अनेक हैं जिनमें शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, सड़कें, पानी की व्यवस्था एवं दवा दारू का प्रबन्ध करना प्रमुख हैं। जब तक राज्य और जनता पारस्परिक सहयोग से काम नहीं करेंगे तब तक इन समस्याओं का समाधान असम्भव है। इन समस्याओं के समाधानार्थ हर नागरिक को लगातार परिश्रम करना ही होगा। अपने ही क्षेत्र में निर्मित ग्रामीण बोर्ड की सेवा करने के लिये भी उन्हें प्रस्तुत रहना चाहिए।

नगरों की भी समस्यायें करीब करीब वही हैं जो ग्रामों की हैं। पर नगरों की समस्यायें इतनी आवश्यक हैं कि किसी भी हालत में व्यक्ति विशेष के ध्यानाकर्षण तक उन्हें छोड़ा नहीं जा सकता। सड़क बनाना, बिजली का प्रबन्ध, पानी की व्यवस्था इत्यादि म्युनिसिपैलिटी को करना पड़ता है। जिस नगर में एक नागरिक रहता है उसके शासन के प्रति उसे उदासीन नहीं रहना होगा। उसे समझना

चाहिए कि नगर के स्वास्थ्य एवं सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व उस पर भी है। नागरिक फण्ड में उसे अपना कोटा जमा करना ही पड़ेगा। संक्षेप में उसे नागरिक ज्ञान का विकास करना ही पड़ेगा।

नागरिकता और देश—नागरिकता से सम्बन्धित परिवार, ग्राम एवं नगर पर विचार करने के पश्चात अब हम लोग नागरिकता से सम्बन्धित देश पर विचार करेंगे। 'देश' शब्द भौगोलिक है। जब 'राष्ट्र' का विचार यह वहन करता है तो इसका राजनैतिक महत्व बहुत बड़ा हो जाता है। जब हम एक नागरिक को ग्राम या नगर निवासी के रूप में देखते हैं तो हमारा दृष्टिकोण स्थानीय हो जाता है। पर जब हम एक देश पर विचार करते हैं तो हमारा दृष्टिकोण राष्ट्रीय बन जाता है।

व्यक्ति अपने ग्राम या नगर की स्थानीय सीमा से निकल कर यहां तक कि प्रान्तीय सीमा को भी पारकर एक बहुत बड़े परिवार और बहुत बड़े स्वार्थ पर विचार करता है। इस प्रकार देश, राज्य और राष्ट्र का विचार प्रकट होता है। इस प्रकार राष्ट्र के नागरिक होने के कारण एक व्यक्ति को विस्तृत दायरा बनाना चाहिए। उसे समझना चाहिए कि विभिन्न स्थानीय स्वार्थों की पूर्ति कैसे होगी। इससे आगे बढ़कर समस्त देश का स्वार्थ साधन कैसे हो सकेगा। उसे अपने राज्य के प्रति वफादार होना चाहिए जिसका वह लघुत्तम सदस्य है।

विश्व की नागरिकता—जब एक शक्तिशाली राजा या सेनापति ने सफलता पूर्वक लड़ाई करके विजित देश पर आधिपत्य स्थापित किया ठीक उसी क्षण साम्राज्यवादी विचारों का उद्भव प्रारम्भ हुआ। सैनिक उत्साह एवं सार्वभौम सत्ता के विचारने इस ओर और प्रोत्साहन दिया। तत्पश्चात् आर्थिक कारणों से साम्राज्य का बनना और बिगड़ना शुरू हुआ।

प्राचीन भारतमें हिन्दू एवं बौद्ध राजाओं के अन्दर विस्तृत साम्राज्य था। सिकन्दर के तत्वावधान में ग्रीसवालों ने एक विस्तृत साम्राज्य की नींव डाली जिसका फैलाव भारत के पंजाब प्रान्ततक था। रोमन साम्राज्य यूरोप, एशिया और अफ्रिका

के विस्तृत भूभाग में फैला हुआ था। आधुनिक समय में वृटिश साम्राज्य व्याव-सायिक अनुसन्धान एवं साम्राज्यवादी उत्साह के कारण ही इतना सुविस्तृत हो सका है। कभी वृटिश साम्राज्य विश्वके ⅙ भागमें फैला था। आज चूंकि भारत और लंका को भी औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त होगया है अतः वृटिश साम्राज्य, वृटिश राष्ट्रमण्डल के ही रूपमें रह गया है। प्राचीनकाल में केवल विजेता ही नागरिकता की पूरी सुविधा प्राप्त कर सकता था।

विश्वके नागरिक—हमलोगों ने परिवार से सम्बन्धित नागरिकता का जिक्र किया है, इसके अतिरिक्त ग्राम, नगर देश एवं विश्व की भी नागरिकता हम समझ चुके हैं। पर आजकल नागरिकता के क्षेत्र को और विस्तृत कर देनेकी भावना भी उठ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क यथा सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक प्रतिदिन निकटसे निकटतर होता जा रहा है। अब यह अच्छी तरह ज्ञात होने लगा है कि आधुनिककालमें मानवीय समस्याओंका समाधान एक देश विशेषके कारण नहीं संभव हो सकता है।

गत महायुद्धसे ही आधुनिक विश्वके बहुतसे देशों में भयानक और आक्रमणात्मक राष्ट्रीयताका विस्फोट होने लगा है। अगर गुलामों की मुक्तिके लिए यह उत्साह उबल रहा हो तब तो इसका स्वागत चारो ओर होगा। कारण एक स्वाधीन देश विश्व में शान्ति एवं अमन कायम करनेके लिये सक्षम हो सकता है जिसके अभावमें मानवीय प्रगति स्वप्नवत है। लेकिन जहाँ यह राष्ट्रीयता स्वार्थी एवं आक्रमणकारी रूप धारण करती है वहाँ उसका विकास रोक ही देना चाहिए।

अब यह समय आ गया है जब कि एक व्यक्तिको अपने देशकी सीमा पारकर विश्वकी नागरिकता पर विचार करना चाहिए। भयानक समस्यायों के समाधानार्थ अन्तर्राष्ट्रीय विचार जरूरी है। यह सोचना भयानक भूल है कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण स्वार्थ पर आघात है। जो राष्ट्रीय विचारधारा मानव कल्याणका विरोधी है उसे प्रश्रय नहीं देना चाहिए। विश्वका नागरिक किसी चीजको न केवल स्थानीय

या राष्ट्रीय दृष्टिकोण बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे देखता है । इन्हीं विचारोंके अभावके कारण 'लीग आव नेशन्स' असफल रहा ।

प्रश्न

(१) नागरिकता पर परिवारका क्या प्रभाव है प्रकाश डालो ।

(२) एक नागरिकके (क) ग्रामीणक्षेत्र (ख) म्युनिसिपल टाउन में क्या उचित कार्य है व्याख्या करो । (कल० १९३०)

(३) एक परिवारके कार्यों पर प्रकाश डालो । (ढाका १९४२)

अध्याय १२

सरकार के अंग एवं शक्ति का विभाजन

देश विशेष की सरकार के हाथों में जितनी शक्ति है उसे हम खास तौर पर व्यवस्थापिका, शासन सम्बन्धी एवं न्याय सम्बन्धी विभागों में बांट सकते हैं। समस्त आधुनिक राज्यों में ये तीनों शक्तियां विभिन्न हाथों में बटी रहती हैं। अतः हम आधुनिक राज्य के तीन अंग ही पाते हैं—व्यवस्थापिका, शासन परिषद एव न्याय सम्बन्धी। व्यवस्थापिका का काम कानून बनाना, शासन परिषद का काम विधान लागू करना तथा न्याय विभाग विशेष केस में कानून के प्रयोग की जांच करना है।

सर जॉन मैरियट द्वारा की गयी खास व्याख्या से स्थिति सुस्पष्ट हो जायगी। हमें सर्व सुपरिचित विभाग पुलिस से ही प्रारम्भ करना चाहिए। व्यवस्थापिका द्वारा घोषित कानून को लागू करना ही पुलिस का काम है। उदाहरण स्वरूप सड़कों पर घूमने वाले यात्रियों की सुरक्षा के लिए जो नियम बनाये जाते हैं उनके अनुसार कार्य करना पुलिस का काम है। मान लीजिए एक बाइसिकिल पर चढ़ा हुआ व्यक्ति सन्ध्या के बाद भी बत्ती नहीं जलाकर चलता है। वह उस व्यक्ति को रोककर उसका नाम लिख लेगा अगर वह व्यक्ति अपना नाम बताने से अस्वीकार करता है तो उसे थाने में जाना पड़ेगा। अन्ततोगत्वा उस व्यक्ति को मजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित होना पड़ेगा जो उस मामले में न्यायाधीश का काम करेगा।

मजिस्ट्रेट के समक्ष पुलिस अपना बयान देगी और गिरफ्तार व्यक्ति अपना बयान देगा। इसके बाद मजिस्ट्रेट अपना निर्णय सुनायेगा। अगर पुलिस की बात सत्य निकली तो कानून तोड़ने के अपराध में उसे दण्ड दिया जायगा। अतः अगर तुम ऐसा कोई काम करते हो जो समाज के विपरीत पड़ता है तथा जो कानून के

विपरीत है तो तुम्हें दण्ड का भागी होना पड़ेगा और पुलिस जो व्यवस्थापिका द्वारा घोषित कानून की रक्षक है तुम्हें गिरफ्तार कर लेगी। अब न्यायाधीश ही निर्णय करेगा कि तुमने गल्ती की है या नहीं और अगर तुमने गल्ती की है तो दण्ड के भागी बनोगे जिसको कार्य रूप में परिणत करना ही पुलिस का काम है।

इस प्रकार वर्तमान सरकारों को व्यवस्थापिका, न्याय एवं शासन तीन भागों में विभक्त करते हैं। इन विभागों के अनुसार शक्तियों का भी विभाजन है।

शक्ति-विभाजन

इसके सिद्धान्त और लाभ—शक्तियों के विभाजन सम्बन्धी सिद्धान्त मांटेस्कू की प्रसिद्ध पुस्तक 'स्पीरिट आव लॉज' में वर्णित है। इंगलैण्ड की सरकार की पद्धति से मांटेस्कू बहुत ही अधिक प्रभावित हुआ था। फ्रेंच एवं अमरीकी आन्दोलन के नेताओं ने भी इसे अच्छी तरह अपनाया। इसे हम निम्नलिखित तीन भागोंमें विभाजित कर सकते हैं :- शक्ति और अधिकार के केन्द्रित हो जाने से अनाचार का उद्भव होता है। व्यक्ति की स्वाधीनता को सुरक्षित रखने के लिए (१) व्यवस्थापिका, शासन एवं न्याय की शक्तियाँ विभिन्न हाथोंमें जानी चाहिए, जिनका उपयोग वे भिन्न-भिन्न प्रकार से कर सकें (२) प्रत्येकको अपनेही क्षेत्र तक सीमित होना चाहिए। (३) प्रत्येक क्षेत्र स्वतंत्र और सार्वभौम होना चाहिए आदि जरूरी हैं। प्राचीन कालमें जब शक्ति का विभाजन नहीं था तो बात कुछ और ही थी। निरंकुश शासक के हाथों में तीनों शक्तियाँ केन्द्रित थीं। राजाके शब्द ही विधान थे। राजा कानून को लागू करता और इसको न माननेवाले को सजा देता। इस प्रकार राजा विधान निर्माता, प्रधान शासक एवं एकमात्र न्यायाधीश होता था। इस प्रकार की व्यवस्था के कारण व्यक्ति की स्वाधीनता सदैव खोती गयी क्योंकि उसके अधिकार राजा की मर्जी पर थे। एक ही व्यक्ति या विभाग के हाथमें अधिक

शक्ति देना केवल घातक ही नहीं सरकार की कमजोरी भी है। आधुनिक सरकारों का कार्य तभी बढ़िया ढंगसे चल सकता है जब विभिन्न कार्यों के लिए विभिन्न व्यक्ति उत्तरदायी हों।

इसकी आलोचना

पूर्णरूपेण शक्ति का विभाजन न तो संभव है और न ऐसा किया ही जा सकता है। वास्तव में कुछ हद तक शक्तिका विभाजन स्वाधीनता के लिए उचित है पर पूर्णतया विभाजन तो बिल्कुल ही निरर्थक है। सम्पूर्णतः सरकार पर विचार करना चाहिए कि उसके कौन-कौन से भाग एक साथ मिलकर काम करे जो हितकर भी हो सके।

वास्तवमें बहुतसे राज्यों में व्यवस्थापिका का बहुत बड़ा अधिकार शासन परिषद् पर होता है। बहुतसे देशों में व्यवस्थापिका पर शासन परिषद् का ही प्रभाव होता है। ग्रेट ब्रिटेन में शासन परिषद् के सदस्य जो विभिन्न विभागों के प्रधान भी होते हैं विधान को भी संचालित करते हैं। शासन संचालन एवं शासन परिषद् पर व्यवस्थापिका का भी बहुत बड़ा अधिकार है।

यद्यपि सभी विभाग बराबर माने जाते हैं पर बातें वैसी नहीं। गार्नर का कथन है कि समस्त सरकारों के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि व्यवस्थापिका सर्व शक्तिशाली एवं न्याय सबसे कमजोर विभाग है। एक प्रजातंत्रीय राष्ट्र में वास्तव में जनमत ही सर्व शक्तिशाली है।

भारतमें शक्ति विभाजन

ब्रिटिश हुकूमत के समय यद्यपि भारत में भी शक्ति विभाजन था पर वास्तविक सत्ताशासन परिषद के ही हाथ में थी। भारतीय शासन परिषद का विशेषाधिकार एवं स्वीकृति अधिकार प्रमुख हैं। साधारण विधान पद्धति के अभाव में शासनपरिषद किसी व्यक्ति विशेष को दण्ड दे सकती है। भारतमें एक ही व्यक्ति के अधीनशासन

एवं न्याय दोनों अधिकार हैं उदाहरणस्वरूप एक जिलाधीश शासन एवं न्याय दोनों शक्तियों का मालिक है। बंगाल के भूतपूर्व प्रधान न्यायाधीश सररिचर्डगर्थ का कथन है कि, 'एक व्यक्ति जो न्यायाधीश एवं मुकदमा चलाने वाला दोनो है न्याय नहीं कर सकता। एक ही व्यक्ति पुलिस, न्यायाधीश एवं मजिस्ट्रेट कैसे हो सकता है।' भारत की न्यायपद्धति में संशोधन करने को जितनी अधिक आवश्यकता है उतनी अधिक आवश्यकता और किसी चीज की नहीं। भारत के न्यायाधीशों को शासनपरिषद के नियंत्रण से निकलकर काम करने की बड़ी आवश्यकता है।

व्यवस्थापिका

व्यवस्थापिका राष्ट्र का सर्वप्रथम एवं प्रमुख अंग है। लास्की का कथन है कि 'शासन एवं न्यायसम्बन्धी शक्तियाँ व्यवस्थापिका की घोषित इच्छा से ही अपनी सीमा प्राप्त करती हैं।

इससे राष्ट्रकी इच्छा को प्रकाश मिलता है। व्यवस्थापिका कानून बनाती है, इस उद्देश्य से विस्तर विचार करती है, तथा अर्थ पर नियंत्रण रखती है और बजट पर विचार करती है। पार्लमेण्ट सरकारों में यह शासनपरिषद पर अधिकार रखती है तथा उस उद्देश्य से शासनपरिषद की नीति और शासनपर विचार करती है। आफिसपर अधिकार रखने के लिए शासनपरिषद का भी मनोनयन यही करती है। बहुत से देशों में शासन परिषद पर दोषारोपण करने एवं दुश्चरित्रताके लिए न्यायाधीशोंको मुअत्तल करने का भी इसे अधिकार है। इस प्रकार व्यवस्थापिका न केवल विधान-निर्मातृ अपितु आलोचक एवं नीति-निर्मातृ संस्था भी है।

व्यवस्थापिका का निर्माण

व्यवस्थापिका या तो एक ही परिषद् या दो परिषदों की होती है। बहुत से आधुनिक राष्ट्रों में दो परिषद् होते हैं एक उच्च परिषद् एवं दूसरा निम्न परिषद्। निम्न परिषद् सदैव निर्वाचित होती है तथा दोनों में यह सर्वश्रेष्ट एवं

शक्तिशाली है। यह सर्वश्रेष्ठ सत्ता है तथा कर सम्बन्धी एवं अन्य खर्च सम्बन्धी समस्त अधिकार इसके अन्दर निहित है। उच्च परिषद पैतृक अधिकार मनोनयन तथा संकुचित निर्वाचन से चलता है जैसा कि ग्रेटब्रिटेन और जापान में है। इसके आजीवन सदस्य भी होते हैं जैसा कि कनाडा में पाया जाता है। बहुत से देशों में उच्च परिषद का भी चुनाव होता है। यह चुनाव सीमित एवं निम्न परिषद की अपेक्षा दीर्घकालीन होता है। उच्च परिषद के सदस्यों के लिए काफी शिक्षा एवं उसकी आवश्यकता होती है।

उच्च परिषद् की भलाइयाँ—निम्न परिषद में बिना पूरा विचार किए जल्दबाजी में जो कानून स्वीकार किया जाता है उसे उच्च परिषद् रोकता है। यह परिषद् विद्वानों का परिषद् इसलिये कहा जाता है क्योंकि इसके सदस्य अनुभवी, वृद्ध एवं निम्न परिषद् के सदस्यों से अधिक विद्वान होते हैं। उच्च परिषद् निम्न परिषद् की इच्छाओं पर कुठाराघात नहीं कर सकता केवल देर करता है एवं विचार के लिए पर्याप्त समय ले सकता है। बिलको पुनः विचारार्थ भेजकर यह उस पर ठंडे दिल से गौर करने का मौका देता है।

इससे हानियाँ—आबे सिए का कथन है, जो आज भी सत्य ही माना जाता है कि अगर उच्च परिषद् निम्न परिषद् के साथ मिलकर काम करता है तब तो ठीक है और अगर ऐसा नहीं हुआ तो मामला ही बिगड़ जायगा। चूंकि उच्च परिषद् पूंजीपतियों की चीज है अतः प्रगतिवादी शक्तियों के विरुद्ध पूंजीवादी ताकतों का ही समर्थन करती है। अतः प्रजातंत्रवाद एवं मजदूरों के लिए इसका अस्तित्व घातक है।

दो परिषदों की व्यवस्थापिका की कटु-आलोचक प्रो॰ लास्की का कथन है कि यह कोई प्रमाण नहीं कि उच्च परिषद जल्दबाजी रोकता है। आजकल कोई कानून विधान-पुस्तिका में सहज में ही प्रवेश नहीं पाता। बिलको एक

एक धारा पर काफी विचार विमर्श एवं विवादव्याख्या की जाती है जिससे राजनीतिक वर्तमान स्थिति में उच्च परिषद् की जल्दबाजीवाला फायदा गायब हो गया है।

भारत में उच्च परिषद प्रजातंत्रवाद के लिये नहीं था। यह तो प्रगतिवादी विरोधी संस्था मात्र थी।

शासन परिषद

शासन परिषद राष्ट्र की इच्छा द्वारा संचालित होती है। शासन परिषद के कार्य विभिन्न विभागों के संचालन, शासन एवं प्रबन्ध हैं।

शासन परिषद का निर्माण

शासन परिषद में राजा या अध्यक्ष एवं शासन से सम्बन्धित समस्त पदाधिकारियों के साथ सचिव सम्मिलित हैं। उच्च पदाधिकारियों में अध्यक्ष सर्वदा निर्वाचित होता है किन्तु राजा का पद पैतृक है। मंत्रियों की नियुक्ति व्यवस्थापिका के मनोनीत सदस्यों में से राजा या अध्यक्ष के द्वारा होती है। निम्न या स्थायी परिषद उन व्यक्तियों से बनती है जो उच्च पदाधिकारी या विशेष नियुक्ति समिति द्वारा नियुक्त किये गये हैं। यद्यपि शासन परिषद का मुख्य काम शासन करना है तथापि व्यवस्थापिका और न्याय विभाग के साथ भी इसका निकट सम्पर्क है। व्यवस्थापिका को बुलाना, भंग करना और कुछ कालतक के लिये टाल देना भी इसका काम है। व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधानानुसार यह विधान के संचालन क्रमको ठीक करती है एवं आवश्यकतानुसार विशेषाधिकार का भी प्रयोग करती है। न्यायाधीशों की नियुक्ति, अनुशासन की कार्रवाई, अपने अफसरों के विरुद्ध सैनिक न्यायालय द्वारा जांच एवं न्यायालयों द्वारा दण्डित व्यक्तियों को क्षमा कर देने की शक्ति भी इसमें है। शासन परिषद अनेक विभागों में बँटी है। समस्त शासन परिषद का प्रधान

अध्यक्ष या प्रधान मंत्री होता है। हर एक विभाग अलग सचिव के तत्वावधान में है जिसके नीचे विभाग के स्थायी प्रधान हैं। प्रमुख विभाग ये हैं :-(१) सैनिक विभागके तत्वावधानमें सुरक्षा या युद्धदफ्तर,नौ-सेना और हवाई शक्ति। (२) पर-राष्ट्रीय कार्यों के लिये पराराष्ट्रीय दफ्तर। (३) अमन और शांति, पुलिस और बन्दी-गृह आदि की देख रेख के लिये गृह विभाग (४) अर्थ विभाग जो राष्ट्र की सम्पत्ति का नियत्रण एवं देख भाल करता है। (५) शिक्षा विभाग। (६) उद्योग और श्रम तथा (७) यातायात हैं। अन्य विभाग कृषि, जन स्वास्थ्य, व्यापार और आवागमन आदि हैं।

निरंकुश और स्थायी सिविल सर्विस दो प्रकार के शासन हैं। प्रजातांत्रिक सरकार जनता की इच्छा और आवश्यकता की पूर्ति करती और उसे उन्नतिशील बनाती है। कल्पना और उत्साह प्रजातंत्र के प्रमुख अंग है। परन्तु इससे कभी कभी खतरा और अन्यान्य बुराइयाँ भी हो जाती हैं। निरंकुश शासन अकाल्पनिक और नियमितहोता है। लेकिन यह अनुभव और गतानुगतिके अनुसार चलता है अतः दैनिक शासन में इसे काफी सफलता मिलती है। आधुनिक प्रजातन्त्री सरकारें कुछ हद तक प्रजातंत्री एवं कुछ हद तक निरंकुश आधार पर निर्मित होती हैं। अध्यक्ष या मन्त्री जनता की इच्छाओं में परिवर्त्तनानुसार आते जाते रहते हैं, इसलिये वे प्रजातन्त्री व्यक्ति हुये। दैनिक शासन व्यवस्था स्थायी सिविल सर्विस के हाथमें है। जो निरंकुश आधार पर कायम है। स्थायी सिविल सर्विस में विशेषज्ञों का वह दल सम्मिलित है जिसको बहुत बड़ा ज्ञान और योग्यता प्राप्त है, जिनकी नियुक्ति प्रतिस्पर्द्धी परीक्षा द्वारा होती है। स्थायी सिविल सर्विस की शक्ति इतनी बढ़ गई है कि ग्रेट बृटेन के समान राष्ट्र भी निरंकुश कहा जाने लगा है। भारत में स्थायी सिविल सर्विस की महत्ता से इनकार नहीं किया जा सकता लेकिन राजनीति में इन्हें बोलने का अधिकार नहीं होना चाहिये। राष्ट्र की नीति जनता द्वारा चुने गये उत्तरदायी व्यक्तियों द्वारा

ही निर्धारित होनी चाहिये। जनता के अभावों की व्यंजना होनी चाहिये तथा शासन परिषद् शीघ्रातिशीघ्र एवं सस्ते दर पर उनकी पूर्ति करे। प्रजातन्त्री एवं उत्तरदायी सरकार की यही अच्छा ही है। अबतक भारत की निरंकुश सरकार अनुत्तरदायी थी जिसे नीति निर्धारण का भी अधिकार था। जनता के अविश्वास और पूँजीवादी मनोवृत्ति द्वारा संचालित सरकार जनता की इच्छाओं की नहीं पूर्ति करती थी।

न्याय विभाग

न्याय विभाग विभिन्न साधनों द्वारा कानूनों की प्राप्ति, उनकी व्याख्या एव मामला विशेष में उनके प्रयोग का स्पष्टीकरण करता है। न्यायाधीश फौजदारी मामले में अपराधियों को सजा देकर एवं दीवानी मामले में पंच का काम करके न्यायकी रक्षा करता है। न केवल व्यक्ति-व्यक्ति बल्कि राष्ट्र और व्यक्ति के बीच के भी झगड़ों का वह निपटारा करता है। ऐसा प्रायः देखा जाता है कि न्यायाधीशों को वैसे कानूनों की व्याख्या करनी पड़ती है जिसकी व्याख्या का आधार अप्राप्य है। वैसी स्थिति में न्यायाधीशों को परम्परानुगतिकताके आधारों पर चलना पड़ता है। उस केस के लिये जज विधान-निर्माता का काम करता है। इसलिये हमें जज द्वारा निर्मित विधान भी प्राप्त है जो न्याय और औचित्य के साथ निर्णय में सहायक है। न्यायाधीशों को वैधानिक महा पंडित एवं निष्पक्ष होना चाहिये। न्यायाधीशों की निष्पक्षता के रक्षार्थ उन्हें व्यवस्थापिका और शासन परिषद के नियंत्रण से मुक्त कर देना चाहिये। न्याय-विभाग की यह *स्वाधीनता, उचित वेतन, स्थायी पट्टा एवं कार्यकाल से न हटाने के आश्वासन द्वारा* सुरक्षित होनी चाहिये। जजों की नियुक्ति योग्यता के आधार पर होनी चाहिये जसमें दल, सम्प्रदाय या राजनीतिक भावनाओं को प्रश्रय नहीं मिलना चाहिये।

प्रश्न

१—शक्ति विभाजन के सिद्धान्त का वर्णन करो। क्या प्राचीन सिद्धान्त उचित है।

२—शक्ति विभाजन के उपयोगों का वर्णन करो और भारतीय स्थिति को ध्यान में रखकर उनपर प्रकाश डालो (क० यु० १९२५)

३—टिप्पणी लिखो—

(क) शासन परिषद (ख) उच्च परिषद (ग) न्याय विभाग।

४—सरकार के कार्यकारी सिद्धान्तानुसार शक्ति का विभाजन न केवल असम्भव बल्कि यह अरुचिकर भी है।" इस कथनकी पुष्टि करो। (क० वि० १९२४)

५—आधुनिक सरकार तीन भागों में बँटी है—व्यवस्थापिका, न्याय विभाग और शासन परिषद—इसकी चर्चा करो, (क० १९३५)

६—सरकार के प्रधान अंग कौन-कौन से है तथा उनके कार्यों पर प्रकाश डालो (क० १९४१) क्या राजनीतिक स्वाधीनता के लिये शक्ति विभाजन का होना जरूरी है ? (क० १९४१)

७—आधुनिक राष्ट्र की शक्तियों का वितरण कैसे होता है ? (क० १९३८)

८—व्यवस्थापिका के प्रति शासन परिषद के सम्बधों को ठीक करने के लिये किन-किन बातों की आवश्यकता है ? शासन परिषद और व्यवस्थापिका के साथ न्याय विभाग का क्या सम्बन्ध होना चाहिये

(यू० पी० बोर्ड १९३८)

९—व्यवस्थापिकाकी दो परिषदी पद्धतिके कारणों पर प्रकाश डालो। (क०वि०१९४१)

१०—व्यवस्थापिका का कार्य केवल विधान बनाना ही नहीं है, एक प्रजातन्त्री राष्ट्र में व्यवस्थापिका और कौन-कौन काम करती है ? (क० वि० १९४२)

———

अध्याय १३

सरकार के कार्य

वर्तमान सरकार के कार्यों का जिक्र करने के पहले हमें उनसे सम्बन्धित विभिन्न विचारों का अध्ययन कर लेना होगा। क्योंकि जनता राष्ट्र के आदर्श और सरकार के उचित संचालन में एकमत नहीं है। यह प्रश्न बड़ा ही प्रमुख है क्यों कि राष्ट्र के कार्यों से इसका बहुत बड़ा सम्बन्ध है जो हमारे जीवन के हर पहलू का निर्णायक और निर्माता है। स्वतः यह प्रश्न उठता है कि व्यक्ति के कार्यों पर नियंत्रण करके राष्ट्र कहाँ तक उचित करता है। इसलिये व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए सरकारी कार्यों का पूर्ण ज्ञान रखें। इसको इस रूप में समझना चाहिये कि इस विषय से सम्बन्ध दो ही सिद्धान्त मान्य हैं। १—व्यक्तिवादी २—समाजवादी। व्यक्तिवादी सिद्धान्तानुसार राज्य के कार्य संकीर्ण सीमाओं से आबद्ध होते हैं जिसमें व्यक्ति को स्वेच्छानुसार बढ़ने की सुविधा होती है। लेकिन समाजवादी सिद्धान्तानुसार सरकारी कार्यों का विस्तार इस प्रकार होना चाहिये जिससे समस्त समाज की भलाई हो सके।

'अराजक सिद्धान्त'

उपर्युक्त दो सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या के पूर्व हमें दूसरे दृष्टिकोण पर भी विचार कर लेना है जिसे अराजक सिद्धान्त कहते हैं। यद्यपि स्पष्ट रूपेण राष्ट्र के कार्यों की व्याख्या में इसे स्थान प्राप्त नहीं है क्यों कि एक अराजकवादी के लिये राष्ट्र महान बुराई है जिसका वह अन्त चाहता है। अराजकवादी सिद्धान्त इस आधार पर निर्मित है कि व्यक्तिवादी सिद्धान्त का यह वीभत्स रूप

है। व्यक्तिवादी और अराजकवादी हर प्रकार के नियन्त्रण को बुरा मानते हैं। व्यक्तिवादी कुछ सिद्धान्तों को स्वीकार करता है इसीलिये वह राष्ट्र की आवश्यकता बतलाता है। लेकिन अराजकवादी हर प्रकार के नियंत्रण को बुरा मानता है इसीलिये राष्ट्र को भी अनावश्यक मानता है। अराजकता के माने शासन का अन्त है। अराजकता उस प्रकार के समाज की स्थापना करना चाहती है जिसमें व्यक्ति स्वशासित होता है जिसमें वह संघों के प्रति स्वतः वफादारी प्रकट करता है तथा जिसमें ताकत के द्वारा हुकूमत नहीं की जा सकती। अराजकवादी सरकार को स्वाधीनता का दुश्मन समझता है। वह बतलाता है कि कुछ निहित स्वार्थियों के द्वारा ही सरकार का संचालन होता है और राष्ट्र दमन के सिद्धान्त पर निर्मित होता है जो अराजकवादी समाज में अप्राप्य है। अराजकवादी समाज की अनियन्त्रित स्वाधीनता में ही व्यक्ति का पूरा विकास सम्भव है। अराजकवादी प्रमाणों द्वारा समस्त नियन्त्रणों को बुरा, राष्ट्र को अनावश्यक बतलाया जाता है। व्यक्तिवादी सिद्धान्तों पर दृष्टिपात करने से ये बातें प्रकट हो जायेंगी।

अराजकवादी सिद्धान्त की कीमत

प्रो० जैथ्रो ब्राउन ने अराजकवादी सिद्धान्त की कीमत निम्नांकित बतलाई है। (क) अराजकवादी समाज व्यवस्था की उचित आलोचना करता है यद्यपि उसके द्वारा प्रस्तावित समाधान उचित नहीं हैं। (ख) अराजकवादी व्यक्ति के स्वशासन अधिकार पर खूब जोर देता है। (ग) राष्ट्र के प्रकृति और अधिकार की आलोचनात्मक चर्चा के अध्ययन के कारण विद्रोही चुनौती ने समाज की बहुत बड़ी भलाई की है।

(घ) अराजकवादी को विश्वास है कि अगर व्यक्ति को स्वेच्छा पर छोड़ दिया जाय तो पुलिस और सेना के द्वारा आरोपित राज्य के कर्तव्य अधिक अच्छी तरह निभाये जा सकते हैं।

व्यक्तिवादी सिद्धान्त

अराजकवादी के सदृश व्यक्तिवादी भी हर प्रकार के नियन्त्रण को बुरा मानता है और राष्ट्र की हर प्रकार की शक्ति के विस्तार को व्यक्तिगत स्वाधीनता द्वारा ही प्राप्त समझता है। पर अराजकवादी के विपरीत वह राष्ट्र को इसलिये जरूरी समझता है अगर वह नहीं रहेगा तो एक व्यक्ति का स्वार्थ दूसरों के अधिकारों का अपहरण करेगा। व्यक्तिवादी सिद्धान्तानुसार राष्ट्र की शक्ति का विस्तार वहीं तक होना चाहिये जहां तक वह शान्ति, अमन एवं सुरक्षास्थापना में समर्थ हो सके। इससे आगे यह अपेक्षित नहीं। व्यक्तिवादी यह कभी नहीं चाहता कि राष्ट्र के हाथ में विधान निर्माण, गरीबों बेकारों की सहायता एवं शिक्षा आदि की व्यवस्था रहे। राष्ट्र, पुलिस संस्था के अतिरिक्त अधिक आगे नहीं जाने पावे। केवल शान्ति स्थापन, अपराधियों को दंड देना, आदि ही उसके कार्य हों। यह कार्य समाप्त होने पर उसके कर्त्तव्यों की इतिश्री हो जाती है।

व्यक्तिवादी के अनुकूल प्रमाण

(क) मनुष्य का वास्तविक उद्देश्य अपनी शक्ति का उस हद तक विकाश करना है जहां वह पूर्णता को प्राप्त हो जाय। राष्ट्र इस प्रकार के वैयक्तिक विकास के लिये दारुण नियन्त्रण का काम करता है। इस प्रकार के कार्य राष्ट्रीय एकता के लिये जरूरी हैं समाज को एक जायज स्तर पर ले जाना ही राष्ट्र का काम है। राष्ट्र मौलिकता को चूर चूर करता एवं व्यक्तिगत चरित्र को समाप्त करता है।

(ख) व्यक्तिवाद वैज्ञानिक आधार पर टिका हुआ है क्योंकि विकासवाद के साथ साथ इसका संचालन होता है। यह सभी को विकास का समान अवसर प्रदान कर योग्यतमावशेष की नीति को चरितार्थ करता है।

(ग) यही सिद्धान्त इसलिये सत्य है क्योंकि मनुष्य अपने स्वार्थ को चाहता है और स्वयं यही जानता है कि उसका स्वार्थ कहां है ।

(घ) व्यक्तिवादी इसलिये संतुष्ट रहता है क्योंकि उसका सिद्धान्त विस्तृत आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित है । उद्योग के संचालन में हस्तक्षेप न करने की नीति से ही अच्छी औद्योगिक उन्नति हो सकती है। अगर औद्योगिक होड अनियंत्रित रूप से चलेगी तभी उत्पादनकर्ता अधिक उपजा सकेंगे वेतन निमनस्तर तक चला आयेगा तथा उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि होगी ।

(छ) राष्ट्र को सर्वश्रेष्ठ समझना भ्रमात्मक है । यह उस व्यक्ति से अच्छा नहीं है जो इसका निर्माण करता है । राष्ट्र की आवश्यकता जितना व्यक्ति समझता है, उससे अधिक राष्ट्र नहीं समझता ।

व्यक्तिवादी सिद्धान्त की आलोचना

व्यक्तिवाद मृत है और कोई भी समाज शुद्ध व्यक्तिवाद पर आधारित नहीं रह सकता । व्यक्तिवादी सिद्धान्त की आलोचना निम्नांकित कारणों से की जा सकती है:—

(क) व्यक्तिवादी राष्ट्र को बुरा मानता है । जो सर्वथा भ्रमात्मक है । इतिहास बतलाता है कि राष्ट्र ने मानव सभ्यता को कभी अवरुद्ध नहीं प्रत्युत आगे बढ़ाया है ।

(ख) व्यक्तिवादी का यही सिद्धान्त राष्ट्र केवल नियंत्रण के लिये है बिलकुल ही भ्रमात्मक है । आधुनिक सभ्यता के विकास के साथ ही साथ राष्ट्र के प्रबन्ध एवं राज्य की व्यवस्था की आवश्यकता प्रतीत हुई । आधुनिक जीवन की समस्यायें इतनी उलझन पूर्ण हो गई हैं, कि केन्द्र एवं प्रान्त के सहयोग के बिना उनका समाधान संभव नहीं हो सकता । राष्ट्र को बढ़ा चढ़ाकर बतलाने एव लाभ को कम कराने को चेष्टा कर व्यक्तिवादी ने गलती की है ।

(ग) व्यक्तिवादी स्वाधीनता की भ्रमात्मक कल्पना करता है। यह समझ कर तो वह और गलत करता है कि राष्ट्र स्वाधीनता का शत्रु है। सरकार और स्वाधीनता एक दूसरे के शत्रु नहीं। इसके विपरीत बुद्धिमानी से सुगठित एवं उचित रीति से निर्दोषित राष्ट्र व्यक्ति के नैतिक, बौद्धिक एवं शारीरिक योग्यता को बढ़ाता है। स्वार्थियों द्वारा उपस्थित विघ्न बाधाओं को राष्ट्र सदैव दूर करता रहता है।

(घ) नियन्त्रण सदैव बुरा ही नहीं होता है। चरित्र निर्माण के लिये अनुशासन एवं नियन्त्रण की आवश्यकता है। समाज की हत्याकर व्यक्तिगत लाभ के लिये वैयक्तिक महत्ता को व्यक्तिवाद ने व्यर्थ बढ़ाया है।

(ङ) यह कहना भी सत्य से परे है कि हरेक व्यक्तिवादी राज्य की अपेक्षा अपने स्वार्थों का अच्छा ज्ञान रखता है। उदाहरण स्वरूप सफाई, शिक्षा एवं नाबालिग श्रम के सम्बन्ध में व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्र को अच्छा अनुभव है।

(च) आर्थिक क्षेत्रमें स्वाधीनता का अर्थ एकाधिकार है। अतः समाज के स्वार्थ के लिए राष्ट्रका नियंत्रण जरूरी है। जब तक राष्ट्र की सहायता प्राप्त न हो तब तक धनिकों के साथ गरीबों का स्वार्थ नियत नहीं हो सकता।

(छ) विश्व की वर्तमान समस्या को ध्यान में रखकर तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था को देखकर राष्ट्र का नियंत्रण जरूरी है। जबतक कर, चूंगी आदि सम्बन्धी राष्ट्र की सहायता प्राप्त न हो तो तबतक राष्ट्रीय उद्योग विदेशी उद्योगों की तुलना में नहीं टिक सकते।

समाजवादी सिद्धान्त

व्यक्तिवादी विचारधारा के ठीक विपरीत समाजवादी विचारधारा है जो मनुष्य के कार्यों में हस्तक्षेप करने के लिए सरकार की बहुत बड़ी शक्ति की आवश्यकता प्रतीत करती है।

समाजवादके पक्षमें प्रमाण

(क) व्यक्तिवादी के विपरीत समाजवादी राष्ट्र पर पूरा विश्वास रखता है तथा अपनी अत्यधिक भलाई के लिए इसे जरूरी समझता है। अतः सामूहिक रूप से जनता के स्वार्थों की वृद्धि की आवश्यकता समाजवादी हर प्रकार से समझता है। सम्पत्ति के विषम वितरण को वह अधूरा समझता है। अतः वह सम्पत्ति का समान वितरण के आधार पर जरूरी बतलाता है।

(ख) समाजवादी कहता है कि समाजवाद न्याय के आधार पर टिका हुआ है। उसके अनुसार प्रकृति के स्वाधीन उपहार जमीन और खानें जनता (शासन) के अधिकार में होनी चाहिये। इन पर एकाधिकार नहीं होना चाहिए। जमींदार का उनपर उसी प्रकार अधिकार नहीं है जिस प्रकार हवा एवं धूप पर वह अधिकार नहीं कर सका।

(ग, समाजवादी उत्पादन के समस्त साधनों पर शासन का अधिकार करना चाहता है। जनता के लिए लाभप्रद समस्त नौकरियों को भी वह हस्तगत करना चाहता है। जनता की ओर से टेलीफोन, फैक्टरी आदि सामानों पर राष्ट्र का अधिकार होना चाहिए। दूसरे शब्दों में समाजवादी वर्तमान आर्थिक व्यवस्था का अन्त चाहता है। जिसमें मजदूरों का शोषण कर पूजीपति मोटा ताजा होता जाता है। वास्तविक उत्पादन कर्त्ता मजदूर बहुत ही कम पाता है जब कि पूजीपतियों के हाथ में आय का बहुत बड़ा भाग चला जाता है।

(घ) वर्तमान आर्थिक व्यवस्था से धनी और धनी तथा गरीब और गरीब होता जाता है। इस प्रकार सम्पत्ति और ऐश्वर्य की बड़ी असमानता फैली हुई है। जनता का लगातार शोषण होता है। राष्ट्र जो कि जनता का रक्षक है अल्पसंख्यक पूजीपतियों से आम जनता की रक्षा अवश्य करे।

समाजवादी सिद्धान्त की आलोचना

समाजवादी सिद्धान्तके विपरीत प्रमाण निम्नांकित हैः—

(क) समाजवादी मजदूरों के श्रम को विनष्ट करता है। अगर सम्पत्ति एकत्र करने की भावना का अन्त हो जाय तो जनता परिश्रम करने से अनिच्छा प्रकट करेगी। मानवीय प्रयत्न कम होगा तथा समस्त प्रगति का अन्त हो जायगा। समाजवादी सिद्धान्त यह है कि मूर्ख, सुस्त एवं काहिलों को भी योग्य अध्यवसायी एवं परिश्रमी व्यक्ति के उत्पादनमें नाजायज हिस्सा बटानेका मौका मिलेगा।

(ख) राष्ट्र की योग्यता और सुव्यवस्था की अत्यधिक कल्पनाकर समाजवादी गल्ती करता है। समाजवादी राष्ट्र से जिन-जिन कार्यों की आशा करता है उन-उन कार्यों को सम्पन्न करना राष्ट्र के लिए असंभव है।

(ग) समाजवाद व्यक्तिवाद को चोट पहुंचाता है। क्योंकि राष्ट्र हर प्रकार की व्यवस्था करता है जिससे व्यक्तिगत कार्य को प्रश्रय नहीं मिलता।

परिणाम—व्यक्तिवाद एवं समाजवाद की चर्चा तथा आलोचनात्मक अध्ययन के पश्चात हम इस निर्णय पर पहुंचते हैं कि दोनोंमें से कोई भी बिल्कुल ठीक ही नहीं। पर दोनों में सत्यांश है।

परिवर्तित विचारधारा—वर्तमान सरकार के व्यापक कर्त्तव्यों के कारण यह विचारधारा बदल गयी है। अब इस प्रकार का वितण्डावाद चल नहीं सकता क्योंकि आज कोई भी सरकार व्यक्तिवादी नहीं। आधुनिककाल में व्यक्तिवाद का सिद्धान्त कहीं भी लागू नहीं हो सकता। इसी प्रकार समाजवाद या साम्यवाद भी समस्त राष्ट्रों का सिद्धान्त नहीं है। सत्य तो यह है कि राष्ट्र के वैधानिक हस्तक्षेप का विभाजन असंभव है क्योंकि समाज की आवश्यकता एवं अवस्था के अनुसार ही सीमा बांधी जा सकती है।

राष्ट्र केवल पुलिस नहीं—समाज की असभ्यावस्था में राष्ट्र केवल पुलिस के ही सदृश था पर सभ्यता के विकास के साथ यह दृष्टिकोण भी बदल गया। सर्वहित के लिए राष्ट्र का हस्तक्षेप न्यायोचित एवं श्लाघ्य है। पुलिस राष्ट्र के विचार ने सभ्य राष्ट्र के लिए रास्ता साफ कर दिया।

समाजवाद का विस्तार और उसकी द्रुत प्रगति—वास्तव में आधुनिक समस्त राष्ट्र बहुत से ऐसे कार्य करते हैं जो व्यक्तिवादी विचारधारानुसार उनके क्षेत्र से बाहर पड़ते हैं। उदाहरणस्वरूप ग्रेट ब्रिटेन में ओल्डएजपेन्शन्स एक्ट, समाजवाद की प्रगति के उदाहरण हैं। इंगलिश पार्लियामेण्ट ने आवास, स्वास्थ्य और कारखाना सम्बन्धी कानून बनाकर समाजवाद की ओर कदम बढ़ाया है। फ्रांस और जर्मनी में भी अनेक समाजवादी कानून बन रहे हैं। भारत में भी मजदूर कानून समाजवादी आधारपर निर्मित हैं। समस्त रेलवे, पोस्ट, टेलीग्राफ आदि राष्ट्र द्वारा संचालित हैं जो समाजवाद का प्रमुख अंग है। जनहितकारी समस्त नौकरियाँ म्युनिसिपल या कारपोरेशन व्यवस्था के ही अन्दर हैं। व्यक्ति की महत्ता पर जोर देकर व्यक्तिवादी अच्छा ही करता है। पर आज के समाज में फूलने फलने के लिए व्यक्ति को अकेले छोड़ देना हितकर नहीं क्योंकि ऐसी स्थिति में अधिक सक्षम व्यक्ति कमजोरों को दबाकर शोषण करने लगेंगे। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐसे भी कार्य हैं जो व्यक्तिगत क्षेत्रद्वारा सम्पन्न नहीं हो सकते अतः यहां भी राष्ट्र को हस्तक्षेप करना पड़ता है। नागरिक का सामाजिक और सांस्कृतिक मंगल जितना एक नागरिकके साथ सम्बन्धित है उतना ही राष्ट्र के साथ भी। राष्ट्र जो कि प्राचीन व्यक्तिवादी के विचारानुसार पुलिस राष्ट्र से अच्छा नहीं है, नागरिक के हित साधक एवं उसके स्वार्थों के अभिभावक के रूप में अपने को स्वीकार करता है। राष्ट्र नागरिक की नैतिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करता है। आधुनिक राष्ट्र के अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक अधिकार बिल्कुल सुरक्षित हैं।

सरकारी कार्य्यों का वर्गीकरण

राष्ट्र के कार्यों के विभिन्न सिद्धान्तों पर पहले ही हमने प्रकाश डाला है। अब हम उनका वर्गीकरण करेंगे। खासतौर पर सरकारी कार्यों को दो भागों में विभाजन करते हैं। प्रथम अगर राष्ट्र को अपना अस्तित्व कायम रखना है तो ऐसे भी कार्य हैं जिनको करना अत्यावश्यक है। इन्हें मौलिक आवश्यक कार्य कहते हैं। वुड्रोविल्सन ने इन्हें वैधानिक कार्य बतलाया है। और द्वितीय बहुत से ऐसे कार्य हैं जिन्हें गैर जरूरी कार्य कहते हैं।

वैधानिक या जरूरी कार्य—इनके अन्दर (१) वाह्य सुरक्षा की हिफाजत, (२) घरेलू अमन और शान्ति की स्थापना आती हैं। ये राष्ट्र के प्रारम्भिक और मौलिक कार्य कहलाते हैं। अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए राष्ट्र को ये कार्य करने ही होंगे।

वाह्य सुरक्षा की हिफाजत—वाह्य सुरक्षा का तात्पर्य बाहरी खतरे से सुरक्षा है चाहे वह खतरा सैनिक आक्रमण हो या अन्तर्राष्ट्रीय अधिकार में हस्तक्षेप। अतः राष्ट्र को विदेशी आक्रमण के मुकाबले के लिए समर्थ होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए राष्ट्र स्थलसेना, नौसेना एवं वायुसेना रखता है तथा आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र की रक्षा के लिए नागरिकों को शस्त्र ग्रहण करने के लिए भी निमंत्रित करता है। शान्तिकाल में भी राष्ट्र को विदेशी शक्तियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने एवं अपने अन्तर्राष्ट्रीय स्वार्थकी देखभाल करनेमें समय व्यतीत करना पड़ता है। बाहरी सुरक्षाके लिए शक्तिशालीसेना, नौसेना एवं वायुसेना की ही केवल आवश्यकता नहीं है, गृह एवं परराष्ट्रीय बुद्धिमत्ता पूर्ण नीतिपर भी सुरक्षा निर्भर करती है।

आन्तरिक शान्ति स्थापन—हर एक सरकार को देश के अन्दर शान्ति एवं अमन कायम करना पड़ता है। जबतक देश के अन्दर अमन कायम न हो तबतक किसी प्रकार की उन्नति असंभव है। अतः शान्ति स्थापनार्थ सरकार को उतना ही अधिक परिश्रम करना पड़ता है उतना ही अच्छा प्रबन्ध करना पड़ता है जितना एक नागरिक को ऐसे कार्य में सरकार के साथ सहयोग करना पड़ता है। पूंजीवादी

व्यवस्था के अन्दर राष्ट्र को जीवन और सम्पत्ति की रक्षा के लिए विधान बनाना पड़ता है। जिस राष्ट्र के अन्दर जीवन और सम्पत्ति अरक्षित रहे उस राष्ट्र के तत्वावधान में कोई भी व्यक्ति जीवन व्यतीत करना नहीं चाहेगा। अपराधों को दूर करने के लिए राष्ट्र पुलिस संघटनको मजबूत बनाता है। अपराधियों को दण्ड देने के लिए राष्ट्र फौजदारी अदालतों की भी व्यवस्था करता है। न केवल हिंसा प्रत्युत हर प्रकार के हस्तक्षेप से भी राष्ट्र सम्पत्ति की रक्षा करता है। अतः राष्ट्र दीवानी के मुकदमों का भी फैसला करता है जिससे राष्ट्र का प्रत्येक नागरिक अपनी सम्पत्तिका समुचित उपयोग कर सके।

गैर जरूरी कार्य—गैर जरूरी कार्यके राष्ट्र के लिए अत्यावश्यक नहीं हैं। तथापि सामाजिक लाभ के लिए समाजवादी राष्ट्र इन्हें भी अपने हाथों में रखता है। इन कार्यों से राष्ट्र की जनता नैतिक और व्यावहारिक दृष्टि से कुशल होती है। ये कार्य राष्ट्र द्वारा सम्पादित होते हैं क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि अगर वैयक्तिक हाथों में ये कार्य छोड़ दिये जायं तो इनका सम्पादन असभव होगा। हरएक देश की आवश्यकता के अनुसार हर देश के जरूरी कार्य भिन्न भिन्न होते हैं। ये गैर जरूरी कार्य निम्नाङ्कित हैं—

(१) उद्योग एवं व्यवसाय का संचालन—राष्ट्र को सिक्के, तौल के हिसाब-किताब एवं ट्रेड लाइसेन्स की भी देखभाल करनी पड़ती है इसे कस्टम की भी देखभाल करनी पड़ती है जिसका सम्बन्ध आयात और निर्यात मालसे है। फैक्टरियों की कार्यावस्था की भी देखभाल इसे करनी पड़ती है। फैक्टरी कानूनों में अत्यधिक वृद्धि इस बातका सबूत है कि हाल के वर्षों में इसकी महत्ता बढ़ गयी है।

(२) जन उपयोगी उद्योगों की देखभाल—आजकल जनता से सम्बन्धित समस्त उद्योगों को राज्य अपने अधिकार में करने की चेष्टा कराता है। न केवल पोस्टल एवं टेलीग्राफ प्रत्युत रेलवे, ट्रामवे एवं टेलीफोन आदि उद्योगों को भी राज्यके द्वारा सचालित होनी चाहिए। जलकल व्यवस्था, विद्युत व्यवस्था आदि भी व्यक्ति के हाथों से निकलकर राज्यके हाथों में चली जानी चाहिये।

(३) जन-स्वास्थ्य, सफाई और चिकित्सा की व्यवस्था—आजकल जनताके स्वास्थ्यों की ओर राष्ट्रका ध्यान अनुदिन आकृष्ट हो रहा है। स्वास्थ्य और सफाई प्रत्येक राष्ट्रके ध्यानाकर्षण के विषय हैं। नागरिकोंके सहायतार्थ अस्पतालों की व्यवस्था हो रही है। राष्ट्र औषधिकी व्यवस्था की ओर अधिक ध्यान दे रहा है।

(४) शिक्षा—राष्ट्र अपने नागरिकों की न केवल व्यावहारिक उन्नति की ओर ही ध्यान देता है अपितु राष्ट्रको समस्त नागरिकों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करनी पड़ती है।

(५) गरीबों एवं वृद्धों की चिन्ता—राष्ट्र समस्त समाज की भलाई की व्यवस्था तो करता ही है पर गरीबों, वृद्धों एवं कमजोरों के लिए विशेष विधान बनाता है। गरीबी की समस्या राष्ट्र ही सुलझाता है। जबतक गरीबी देश में अड्डा जमाये रहती है तबतक राष्ट्रको सदैव यह देखना पड़ता है कि कहीं गरीबी के कारण गरीबों का अन्त न हो जाय। इसके अतिरिक्त राष्ट्र को कमजोरोंकी भी देखभाल करनी पड़ती है जो अपने भरण-पोषण के लिए स्वयं परिश्रम नहीं कर सकते। आजकलके कुछ राष्ट्रों में वृद्धोंको पेंशनें दी जाती हैं तथा राष्ट्र द्वारा गरीबों के लिए खैरातघर बने रहते हैं।

प्रश्न

(१) आधुनिक सरकारके कुछ कार्यों का जिक्र करो। (कल० १९२८)

(२) संक्षिप्त नोट लिखो :—
(क) व्यक्तिवादी सिद्धान्त (ख) समाजवादी सिद्धन्त एवं (ग) अराजकतावादी सिद्धान्त।

(३) राष्ट्र के कार्यों का वर्णन करो। 'कहते कि नागरिकों के हर जीवन क्षेत्र में राष्ट्रका मांगलिक सम्बन्ध है।' क्या यह विचार ठीक है ? (कल० १९३८-४०)

(४) राष्ट्र के जरूरी और अतिरिक्त कार्यों के बीच अन्तर बतलाओ। बंगाल सरकार द्वारा सम्पादित कार्यों का जिक्र करो और यह भी बतलाओ कि वे जरूरी हैं या अतिरिक्त। (कल० १९४८)

(५) आधुनिक राष्ट्र के कार्यों का वर्गीकरण करो। (ढाका १९२३)

अध्याय १४

सरकारके रूप

अरस्तूका वर्गीकरण

राष्ट्रके अन्दर सार्वभौम सत्ता प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के संख्यानुसार अरस्तू ने सरकारोंका वर्गीकरण किया है। अगर सार्वभौम सत्ता एक ही व्यक्ति के अन्दर निहित हो तो उसे एकाधिकार कहते हैं, मगर यदि सत्ता कुछ व्यक्तियों के हाथ में हो तो उसे निरंकुश शासन कहते हैं। परन्तु अगर उक्त सत्ता अनेक व्यक्तियों के हाथ में हो तो उसे राष्ट्र शासन-विधि कहते हैं। जब इस शक्तिका प्रयोग स्वार्थपरता से प्रेरित होकर होने लगा, एकाधिकार अत्याचार, निरंकुशता के कारण अल्प जन शासित राज्य तथ गणतंत्र के रूप में परिणत हो गया। इस प्रकार अरस्तू के कथनानुसार परिवर्तित रूप अनाचार, अल्प जन शासित राज्य एवं गणतंत्र हुए। अरस्तू ने एकाधिकार शिष्ट जन सत्ता राज्य एवं गणतंत्र तीन सरकारी रूपों का जिक्र किया है। जिसमें प्रथम एक व्यक्तिका राज्य द्वितीय कुछ व्यक्तियों का राज्य एवं तृतीय बहुतों का राज्य है।

सरकारें—निरंकुश और प्रजातंत्री—अभी कल तक सरकारों का वर्गीकरण या तो निरंकुश या प्रजातन्त्री दो ही रूपों में किया जाता था। जब एक ही व्यक्तिके हाथ में सत्ता निहित हो, जो स्वेच्छानुसार राष्ट्र का शासन, प्रबन्ध एवं नियन्त्रण करता हो तो उसे निरंकुश सरकार कहते हैं। प्रजातंत्र के विकासके साथ ही साथ निरंकुशता प्राचीन पड़ती जा रही है। इसका अच्छा प्रमाण अफगानिस्तान है। जब वास्तविक सत्ता राष्ट्र के हाथ में हो तथा प्रतिनिधियों का एक दल शासन, प्रबन्ध या नियंत्रण करता हो तो इसका रूप चाहे जो भी हो यह शुद्ध प्रजातंत्री सरकार है। अमरीकी रिपब्लिक एवं ब्रिटिश सरकार दूसरे प्रजातन्त्रित

उदाहरण हैं क्योंकि दोनों सरकारें जनताकी मर्जी पर चलती हैं। आज प्रजातंत्र लोकप्रिय सरकार को कहते हैं; अरस्तूके सदृश एक समूह के शासन को नहीं।

(अ) राजतंत्र

जब सार्वभौम सत्ता एक ही व्यक्तिके हाथ में निहित हो तो उस सरकारको राजतंत्र कहते हैं। राजतंत्र पैतृक होता है। यद्यपि रोम के राजा के सदृश कुछ प्राचीन राजाओं का भी मनोनयन होता था। आज भी एक राजा का मनोनयन हो सकता है। अफगानिस्तान का स्वर्गीय राजा नादिर खाँ मनोनीत राजा था। पर गद्दी के लिए एक राजा का पैतृक अधिकार राजतंत्रका प्रमुख अंग है। मगर व्यवहार में इस अंग को छोड़ दिया जाय तो आधुनिक अध्यक्ष एवं राजा के बीच कोई विशेष अन्तर नहीं दिखलायी पड़ेगा। राजतंत्र को (क) निरंकुश, या नियंत्रण रहित (ख) वैधानिक या सीमित राजतंत्र दो भागों में बाटा जा सकता है।

(क) **निरंकुश राजतंत्र**—निरंकुश राजतंत्र के अन्दर हर प्रकार के सरकारी इच्छा को ही प्रधानता होती है। उसकी शक्ति उसी की इच्छाओं तक सीमित होती है। निरंकुश शासन का सर्वोत्तम उदाहरण फ्रांसके चौदहवें लुई थे जिनकी अहमन्यता (मैं ही राज्य हूँ) निरंकुश शासन की स्थितिपर प्रकाश डालती थी।

सभ्य संसार के राष्ट्रों में निरंकुश राजतंत्र अब पुरानी बात पड़ गयी है। टर्की के सुल्तान, रूस के जार एवं जर्मनी के कैसर के पश्चात इसका अन्तिम रूपेण अन्त हो गया। बहुत से उदारचेता राजतंत्र शासक भी हो गये हैं जिनको जनता का बहुत बड़ा समर्थन प्राप्त था। इन राजाओं में अशोक, अकबर और पीटर महान के नाम लिये जा सकते हैं। लेकिन उदारचेता राजतंत्री शासक अपने पीछे भी उसी प्रकार का उत्तराधिकारी छोड़ जाय यह कोई जरूरी नहीं है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि योग्यशासक के अयोग्य उत्तराधिकारी भी हो जाते हैं। यहाँ

तक कि उदारचेता निरंकुशता भी आपत्तिजनक है क्योंकि इससे जनता की स्वाधीनता एवं उत्साहपर बहुत बड़ा आघात पहुंचता है।

(ख) सीमित राजतंत्र या वैधानिक राजतंत्र—सीमित राजतंत्र उसे कहते हैं जिसमें शासक की शक्ति सीमित होती है। जनता का उसपर नियंत्रण होता है तथा राष्ट्रद्वारा निर्मित विधानानुसार उसे कार्य करना पड़ता है। कभी कभी शासक स्वेच्छानुसार अपने अधिकारों को समर्पित कर स्वयं वैधानिक शासक हो जाते हैं। १५ अगस्त १९४७ को *भारतीय स्वाधीनता* के बाद भारत के अनेक राजाओं ने अपने समस्त अधिकारों को समर्पित कर स्वयं वैधानिक प्रधान बनना ही स्वीकार किया। कभी कभी सफलता पूर्ण प्रस्तावों द्वारा ये विधान राजाओंपर लादे जाते हैं। वह राजा वैधानिक प्रधान कहलाता है जो राज तो करता है पर शासन नहीं।

(ब) अभिजाततंत्र

जब सार्वभौम सत्ता कुछ व्यक्तियों के हाथ में हो तो उस सरकारी रूप को अभिजाततंत्र राज्य कहते हैं।

अभिजाततंत्र राज्य कुछ व्यक्तियों के राज्य को कहते हैं। प्राचीन ग्रीक इस प्रकार के राज्य को सर्वोत्तम शासन कहते थे क्योंकि शिष्टजन राज्यसत्ता का संचालन कुछ योग्य व्यक्तियों द्वारा होता था जिनकी संख्या अल्पात्यल्प होती है। कार्लाइल का कहना है कि मेधावी व्यक्तियों द्वारा शासित होना मूर्खों का काम है। इस प्रकार की सुविधा *मेधावी व्यक्तियों को सदैव प्राप्त होगी*। अतः यह कहना कठिन है कि जो व्यक्ति सत्ता प्राप्त करते हैं वे सर्वदा अच्छे और बुद्धिमान ही होते हैं। शिष्टजन शासित राज्य अल्प जन शासित राज्य के रूपमें परिणित होता है जिसके अन्दर सत्ता-प्राप्त थोड़े से लोग अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। *शिष्टजन शासित राज्य गुण, सम्पत्ति, पैदायशी, या सैनिक संघ पर* आधारित हो सकता है। अभिजात शासित राज्य की कठिनाइयां (क) शासन के

लिए न्यायी, मेधावी व्यक्ति की असंभव प्राप्ति (ख) यह कहना कि कुछ ही लोग सर्वहित का ध्यान रखकर कार्य करेंगे— हैं।

(स) प्रजातंत्र

प्रजातंत्रवाद का तात्पर्य जनता की सरकार है। एब्राहिम लिंकन ने प्रजातंत्री सरकार की परिभाषा, जनता की सरकार, जनता द्वारा सरकार एवं जनता के लिए सरकार बतलायी है। प्राचीन ग्रीक राज्यों में गुलामों को कोई राजनीतिक अधिकार नहीं था। इसलिए ग्रीक परिभाषा में प्रजातन्त्रवाद का तात्पर्य बहुतों की सरकार था पर जनता की सरकार नहीं। प्रजातंत्रवाद की आधुनिक कल्पना, 'वह सरकार जिसमें सबको हिस्सा हो' है। यह परिभाषा प्रजातंत्री आदर्शों के साथ ही लागू हो सकती है पर प्रजातंत्रवाद के साथ यह लागू नहीं हो सकती क्योंकि आधुनिक अनेक राज्यों में इसकी यही रूप प्राप्त है। प्रजातंत्रवाद का आधार राजनीतिक समानता है।

अभी भी बहुत-सी ऐसी सरकारें हैं जो कहने को तो प्रजातंत्री हैं पर उनमें सभी को समान राजनीतिक अधिकार नहीं प्राप्त हैं। संभवतः अभीतक विश्व में कहीं भी वास्तविक प्रजातंत्रवाद की स्थापना नहीं हो सकी है। सरकारी कार्यों में भाग लेने के लिए नागरिकों का विभाजन उम्र, वर्ग, जाति, सम्पत्ति एव शिक्षा के आधार पर हुआ है। पर समस्त सुसभ्य देशों की प्रवृत्ति राजनीतिक समानता एवं बालिग मताधिकार की ओर है। सर्वाङ्गपूर्ण प्रजातंत्री सरकार के तत्वावधान में प्रत्येक व्यक्ति को मत देने, बैठने एवं पदभार ग्रहण करने के समान अधिकार प्राप्त होंगे। अतः प्रजातंत्रवाद (क) शुद्ध या प्रत्यक्ष और (ख) प्रतिबन्ध मूलक या अप्रत्यक्ष है।

(क) शुद्ध या प्रत्यक्ष प्रजातंत्रवाद—जब राष्ट्र की इच्छा का अभिव्यंजना राष्ट्र की समस्त जनता के द्वारा होती है तो उस प्रजातंत्रवाद को शुद्ध प्रजातंत्रवाद कहते हैं। शुद्ध प्रजातंत्रवाद स्वीट्जरलैण्ड में ही प्राप्य है जहां कानून

स्वीकार करने, कर लगाने, रुपये की स्वीकृति देने, एवं राष्ट्र के पदाधिकारियों को चुनने के लिए जनता की सभा होती है अर्थात समस्त जनता एकत्र होकर उपर्युक्त काम करती है। शुद्ध प्रजातंत्रवाद का प्राचीन रूप ग्रीसमें पाया जाता है जहाँ एथेन्स नागरिकों को एसेम्बली एवं, कोर्ट में भाग लेने का अधिकार था तथा क्रमसे सभी को सरकारीपदोंपर सुशोभित होने का मौका मिलता था प्राचीन ग्रीसके नगर राज्य में इसका शुद्ध रूप पाया जाता है क्योंकि ये राज्य छोटे थे। इसके अतिरिक्त ग्रीस के नागरिक राजनीतिक कार्यों में अपना अधिक समय व्यतीत करते थे और गुलाम गृहकार्य करते थे।

(ख) अप्रत्यक्ष या प्रतिनिधि मूलक प्रजातन्त्रवाद—आज के बड़े राष्ट्रों में शुद्ध प्रजातन्त्रवाद असंभव है क्योंकि बहुत अधिक जनता के लिए एक साथ एकत्र होना असंभव है। सरकारी विधान में सबकी राय संभव नहीं है। आधुनिक सरकारों के कार्यों के लिए समस्त जनता की बैठक कार्यकारी भी नहीं हो सकती। इस प्रकार के समस्त राष्ट्रों में हमें प्रतिनिधि मूलक प्रजातन्त्रवाद ही संभव है। चूंकि समस्त जनता का एकत्र होकर सरकारी कार्यों में भाग लेना असंभव है एतदर्थ हमें चुनाव करना पड़ता है। जब सरकारी कार्यों को सुलझाने के लिए प्रतिनिधियों की बैठक होती है तो उसका तात्पर्य समस्त जनता की ही आवाज है। यद्यपि प्रतिनिधियों द्वारा ही कार्य होता है। पर वास्तविक सत्ता जनता के हो हाथ में मानी जाती है।

प्रतिनिधि सरकार सर्वोत्तम सरकार है—आज सर्वस्वीकृत हो चुका है कि वर्तमान वस्तुस्थिति में प्रतिनिधि सरकार ही सर्वोत्तम सरकार है। विस्तृत क्षेत्र एवं जन सख्या के ख्याल से आधुनिक राष्ट्रों में शुद्ध प्रजातन्त्रवाद असम्भव है। जब कि शिक्षक शासित राज्य एवं राज्य तंत्र राष्ट्र के लक्ष्यों की पूर्ति नहीं कर सकता।

मिलके कथनानुसार अच्छी सरकार के दो सिद्धान्त हैं। प्रथम, समाज में

उपस्थित अच्छाई को यह कहाँ तक सुरक्षित रखता है। द्वितीय, भविष्य की भलाई को यह कहाँ तक बढ़ाने की चेष्टा करता है। उनके विचारानुसार प्रतिनिधि सरकार दोनों सिद्धान्तों की पूर्ति करती है। आधुनिक विचारक ब्राइस और लास्की ने भी स्वीकार किया है कि प्रतिनिधि सरकार ही सर्वोत्तम है। ब्राइस के कथनानुसार प्रतिनिधि सरकार अपने उत्तरदायित्व के द्वारा जनता की नैतिकता को बढ़ाती है। लास्की भी यही बतलाता है कि उत्तरदायित्वके ज्ञान को बढ़ाकर यह उत्साह को भी बढ़ाता है। संक्षेप में राजनीतिक जागरण के द्वारा प्रतिनिधि सरकार मनुष्यों के गुण को बढ़ाती है। लास्की का पुनः कथन है, 'राष्ट्र के सैद्धान्तिक लक्ष्य की पूर्ति के लिए किसी अन्य प्रकार की सरकार में क्षमता नहीं।'

यह समझ लेना चाहिए कि प्रतिनिधि सरकार का आवश्यक गुण यह है कि यह हर हालत में प्रतिनिधि मूलक हो। ब्रिटिश भारत में भारतीयों को मतदान का अधिकार दिया गया था पर १४ प्रतिशत भारतीय से अधिक मतदान नहीं दे पाते थे। इस प्रकार से निर्मित सरकार प्रतिनिधि मूलक सरकार नहीं हो सकती है। प्रतिनिधियों के मनोनयन में साम्प्रदायिकता को भी प्रमुखता दी जाती थी। वास्तविक प्रतिनिधि सरकार में उन आदमियों के लिए कोई स्थान नहीं जो जनता के प्रतिनिधि नहीं हैं। भारतीय व्यवस्थापिका में मनोनीत प्रतिनिधियों की उपस्थिति प्रतिनिधि सरकार के लिए महान घातक है।

राज्यों का आधुनिक वर्गीकरण—आधुनिकतम सरकारी रूप—आज उपर्युक्त सरकारी वर्गीकरण बिल्कुल ही निकम्मा है क्योंकि आधुनिक सरकारों के वास्तविक रूपों को समझने में इससे सहायता नहीं मिलती। इसके अनुसार इङ्गलैंड राजतंत्र है परन्तु रूस और टर्की भी गत महायुद्ध के पहले राजतन्त्र ही थे। पर आज उनमें कितना अन्तर हो गया है। ब्रिटिश सरकार का रूप तो राजतन्त्रवादी अवश्य है पर यह वास्तव में प्रजातंत्रवादी ही है। नामके लिए ब्रिटेन की शक्ति राजा के अन्दर निहित है पर वास्तव में जनता ही भाग्यनिर्णायक है।

अतः नाम की कोई विशेष कीमत नहीं। आजकी परिवर्तित स्थिति में प्राचीनतम वर्गीकरण आज केवल ऐतिहासिक कीमत की वस्तु है।

(द) तानाशाही

सरकार को सुन्दरतम एवं सर्वशक्तिशाली बनाने के विचार के कारण *तानाशाही का आविर्भाव हुआ है। तानाशाही सरकार का रूप भी प्रतिनिधि* सरकार हो सकता है लेकिन नियंत्रण एवं निर्देश एक ही व्यक्तिके हाथ में है जो तानाशाह कहलाता है। तानाशाह कुछ परामर्शदाताओं की सहायता से शासन करता है। तानाशाह धोखाबाजी या चुनाव के द्वारा शक्ति प्राप्त करता है। प्रथम महायुद्ध के बाद यूरोप ने इटली में मुसोलिनी की तानाशाही हो जाने दी। इसी प्रकार जर्मनी में हिटलर की तानाशाही हुई। एक प्रजातंत्री राष्ट्र के सिद्धांत-विहीन एवं स्वार्थी प्रतिनिधियों की कमजोरी से लाभ उठाकर तानाशाह अपनी शक्ति प्राप्त करता है। सरकार के कुप्रबन्ध से वे काफी फायदा उठाते हैं।

सरकारी कार्यों में हाथ बटाने में जब किसी राष्ट्रकी नागरिक कमजोरी दिखलाते हैं तो तानाशाही को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। तानाशाही राजतन्त्र से फरक है *क्योंकि तानाशाही का पद पैतृक नहीं होता। अपने उद्देश्य एवं तरीकों में अन्तर के* कारण एक तानाशाह अत्याचारी से भिन्न है। वह अत्याचारी के सदृश निरंकुश हो सकता है पर वह स्वार्थी नहीं। इसमें तानाशाही प्रजातन्त्रवादी सरकार से फरक है। यह एक व्यक्ति का राज्य है जिसमें बहुतों को स्थान नहीं। अधिक एवं महायुद्ध के दबाव के कारण तानाशाही का आविर्भाव होता है। कुछ आज के वर्गीकरण नीचे दिए जाते हैं :—

(१) शासन परिषद या अध्यक्ष मूलक सरकारी रूप

शासन परिषद इंग्लैंड की शासन परिषद एवं अध्यक्ष मूलक सरकार अमरीकी सरकार के आधार पर बनती है। एक देश का शासन परिषद और व्यवस्थापिका के बीच स्थापित सिद्धान्तों के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है।

(क) शासन परिषद् – व्यवस्थापिका की समिति के द्वारा जिस सरकार का संचालन होता है उसे ही शासन परिषद कहते हैं। ब्रिटेन की शासन परिषद सरकार का तात्पर्य यह है कि शासन का नियंत्रण (१) एक मन्त्रिमण्डल के हाथ में निहित है जो (२) पार्लमेण्ट की एक समिति है जिनका मनोनयन (३) पार्टीके सदस्यों में से ही होता है। चुनाव के समय गुप्त बैठक होती है। धारा सभा के प्रति सामूहिक उत्तरदायित्व इसी पर होता है तथा यह परिषद तभी तक आफिस में रहती है जबतक पार्लमेंट में इसका बहुमत है तथा जब तक पार्लमेंट का इस पर विश्वास है। ब्रिटेन में शासन परिषद ही वास्तविक परिषद है। राजा केवल वैधानिक प्रधान है। यही शासन परिषद राजा के नाम पर राज्य करती है। वही सचिव शासन परिषद में भाग ले सकते हैं जो प्रमुख विभागों के रक्षक हैं। साथ ही साथ ये सचिव पार्लमेण्ट के सदस्य अपने विभागों के प्रधान, तथा व्यवस्थापिका एवं शासन सम्बन्धी कार्यों से भी ये सम्बन्धित हैं। शासन परिषद न केवल शासन चलाती वल्कि विधान के मार्ग को भी प्रदर्शित करती है। शासन परिषद सरकार काफ़ी उत्तरदायी एवं सफल तथा प्रजतन्त्री सरकार है। शासन परिषद् व्यवस्थापिका एवं मन्त्रित्व उत्तरदायित्व इसके प्रधान गुण हैं। इसके विपरीत शक्ति कुछ पार्टी नेताओं के हाथ में आजाती है जो शासन परिषद में भाग लेते हैं तथा पार्लमेण्ट को निकम्मी बना देते हैं।

शासन परिषद् सरकार उत्तरदायी सरकार का एक रूप है जो व्यवस्थापिका के प्रति शासन के लिए उत्तरदायी है। इङ्गलैंड से ही यह ढंग सुसभ्य संसार के विभिन्न भागोंमें फैला है। ब्रिटिश केबिनेट सरकार का अनुकरण औपनिवेशिक ब्रिटिश देशों में खूब हुआ है जिनका अन्यतम सम्बन्ध ब्रिटिश सरकार से है। जर्मनी, इटली, फ्रांस, स्पेन के पार्लमेण्टरी ढंग बिल्कुल निकम्मे सिद्ध हुए क्योंकि इन्होंने तानाशाही के लिए मैदान साफ़ कर दिया।

१५ अगस्त १९४७ के बाद भारत में भी उत्तरदायी सरकारकी स्थापना हुई

है। मांटफोर्ड सुधार के कारण उत्तरदायी सरकार, भारत में स्थापित हुई पर इस प्रकारकी सरकारोंकी स्थापना केवल प्रान्तों में ही हुई। १५ अगस्त के घोषणानुसार पूर्ण उत्तरदायी सरकार की स्थापना हुई है। अबतक केन्द्र में उत्तरदायी सरकार नहीं थी पर अब केन्द्र में भी भारतीय उत्तरदायी सरकार चल रही है।

(ख) **अध्यक्ष मूलक सरकार**—ब्रिटिश केबिनेट सरकारके विपरीत हमारे समक्ष अमरीकी सरकार भी आती है जिसे अध्यक्ष मूलक सरकार कहते हैं। अध्यक्ष मूलक सरकार रिपब्लिक के अध्यक्ष के तत्वावधानमें निर्मित सरकारको कहते हैं। केबिनेट सरकार से भिन्नता प्रकट करने के लिए दो बातें बतलायी गयी हैं। प्रथम बात यह है कि अध्यक्ष स्वयं अमरीकी व्यवस्थापिका के नियन्त्रण से बाहर है। शासन परिषद व्यवस्थापिका के नियन्त्रण से बाहर है पर ब्रिटिश ढंगसे यह बात नहीं। अतः इस प्रकारकी सरकारको अध्यक्ष मूलक सरकार कहते हैं। दूसरी विशेष बात यह है कि कांग्रेस भी शासन-परिषदके नियन्त्रण से बाहर हैं। अतः इस प्रकारके सरकारको कांग्रेसनल सरकार भी कहते हैं।

अमरीकी सरकार के कार्य और शक्ति में महान अन्तर है। अध्यक्ष व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं तथा ब्रिटिश केबिनेटके विपरीत इसके नियंत्रणसे स्वतंत्र भी होता है। राज्यके विभिन्न पदोंपर नियुक्त होनेवाले सचिव अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किये जाते हैं जो उनके सहयोगी भी होते हैं।

ये व्यवस्थापिका के न सदस्य ही होते और न इसके द्वारा नियंत्रित ही हैं। शासनका प्रधान, अमेरिकाका अध्यक्ष अमरीकी जनता द्वारा चुना जाता है। अमरीकी जनताके प्रति ही अध्यक्ष उत्तरदायी हो सकता है। राजनीतिक दृष्टि से वह व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होता। जरूरत पड़ने पर उसपर दोषारोपण भी किया जाता है तथा उसे आफिससे बाहर किया जा सकता है।

(२) एक यद्ध एवं संघ सरकार

जहां वर्गीकरणके सिद्धान्तसे शक्तिका केन्द्रीकरण है वहां सरकारको (१) एकबद्ध (२) एवं संघ दो भागों में विभाजित करते हैं।

(क) एकं वद्ध सरकार—एक वद्ध सरकार उसे कहते हैं जब समस्त सरकारी शक्तियाँ एक केन्द्रके अन्तर्गत सर्वभौम-सत्ताके अन्दर केन्द्रित हो जांय। एक वद्ध सरकार में केन्द्रीय सरकार सम्मिलित है जब कोई क्षेत्र इतना विस्तृत हो जाता है कि एक ही केन्द्रीय सरकार के लिए उसका शासन असम्भव हो जाता है तो विभिन्न स्थानों के लिए स्थानीय सरकारें बनाई जाती हैं पर इस प्रकार निर्मित सरकारें केन्द्रीय सरकार के ही इंगित पर चलती हैं। स्थानीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के ही अंग हैं और केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राप्त अधिकारों का ही उपभोग कर सकती हैं। बृटिश सरकार एक वद्ध सरकार है। अतः समस्त ग्रेट बृटेन का शासन लन्दन स्थित वेस्ट मिनिस्टर द्वारा ही होता है। फ्रांस, इटली और जापान इसके दूसरे उदाहरण हैं।

(ख) संघ सरकार—एक वद्ध सरकार के अलावे संघ सरकार वह सरकार है जिसमें सरकारी शक्तियाँ केन्द्रीय सरकार और विभिन्न स्थानीय सरकारों में विभाजित हैं जिनको मिलाकर एक संघ बनता है। एक वद्ध सरकार के विपरीत केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें संघ विधान से ही अधिकार प्राप्त करती हैं। संघ सरकार के कुछ उदाहरण अमेरिका, स्वीटजरलैन्ड, कनाडा और अस्ट्रेलिया हैं। एक वद्ध सरकार से अलग करने के लिए हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि संघ सरकार द्वैध सरकार है। न्यूयार्क का नागरिक परराष्ट्रीय कार्यों में न्यूयार्क स्थित परराष्ट्रीय सरकारके अधीन है। संघीय कार्यों में उसे अमरीकी सरकार के भी अधीन रहना पड़ता है। संघ सरकार के अन्दर केन्द्रीय सरकार के विपरीत स्वायत्त सरकार भी होती हैं। भ्रम से लोग संघ सरकारको केन्द्रीय सरकार समझ लेते हैं पर बात ऐसी नहीं है। यह केन्द्रीय सरकार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकार के योग से बनती है। इस प्रकार की पद्धति के अनुसार प्रान्तीय सरकारें संघ या केन्द्रीय सरकार से पूर्ण स्वतंत्र हैं। संघ सरकार और केन्द्रीय सरकारोंकी शक्तियोंकी परिभाषा विधान द्वारा स्पष्ट होती है। उनका विभाजन इस प्रकार होता है जिससे

एक दूसरे के अधिकार में हस्तक्षेप न हो। इस प्रकारके विभाजन में हर एक सरकार अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्र और सार्वभौम होती हैं। यहां हम संघ की प्रमुख तीन बातें बतलायेंगे।

(१) वैधान की सार्वभौमिकता (२) संघ और प्रान्तीय, रियासती या स्थानीय सरकारों की शक्तियों का विभाजन (३) संघ सम्बन्धी अधिकारों के निर्माण और विधान के स्पष्टीकरण के लिए न्याय विभाग की स्थापना है।

संघ से लाभ और हानि—(१) संघ से प्रधान लाभ यह है कि एकता द्वारा बल और बड़प्पन की प्राप्ति होती है। छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता हमेशा खतरे में रहती है और जागरूक नागरिकों को इसमें उतनी सुविधा प्राप्त नहीं हो सकती जितनी सुविधा काफी ताकतवर और धनी राष्ट्र में प्राप्त होती है। (२) केन्द्र से हट जाने वाली शक्ति और केन्द्रकी ओर जाने वाली शक्ति के बीच यह शक्ति सन्तुलनका काम करता है। इसे विभिन्नता में एकता कहते हैं। प्रान्तीय स्वायत्त शासनाधिकार के बावजूद भी केन्द्रीय सरकार एकता और पारस्परिक सहयोग की जननी है।

हानि—(१) द्वैधशासन से क्षीणता प्रकट होती है। (२) किसी भाग के निकल जाने की हर समय आशंका रहती है।

संघ में शक्तियों का विभाजन—केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन पूर्ण और अन्तिम नहीं हो सकता खासतौर पर केन्द्रीय सरकार सभी प्रान्तों के नागरिकों के स्वार्थों की रक्षा करती है। सुरक्षा, रेलवे, पोस्ट टेलीग्राफ, करेन्सी एवं सिक्के का अधिकार केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है। केन्द्र से स्वतंत्र स्थानीयशासन के लिए प्रान्तीय सरकार ही उत्तरदायी है।

कनाडा और अमेरिका में अवशिष्ट अधिकार—संघ और प्रान्तीय-सरकारों के कार्यों में विभिन्नता बतलाते हुए एक लिस्ट बनानी पड़ती है। जिसके

अनुसार हर एक को अपने क्षेत्र-विशेष में ही कार्य करना पड़ता है। पर इस प्रकार की तालिका अन्तिम नहीं हो सकती। संघ सरकार को इस प्रकार का अतिरिक्त अधिकार है। इस प्रकार की व्यवस्था कनाडा में है।

अमेरिका में संघका तरीका—अमेरिका से ही संघ की व्यवस्था प्रारम्भ हुई। जितने राज्यों की ओर से संघ बनता है वे संघ तो चाहते हैं पर एकता नहीं। संघ बनाते समय प्रान्तीय सरकारें अपने लिए कुछ विशेष अधिकार बचा लेती हैं। कनाडा की सरकार ऊपर से ही प्रारम्भ हुई और केन्द्रीय सरकार के विकेन्द्रीकरण से ही नीचे आयी। विभिन्न प्रान्तोंके सहयोग से कनाडा के संघ का निर्माण हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि कानाडा को संघ सरकार अमेरिका की संघ सरकार से मजबूत है। कनाडा की सरकार प्रान्तीय सरकारोंपर विशेष अधिकार का भी प्रयोग कर सकती है। इस प्रकार भारतीय सरकार भी कनाडा के ही सदृश संघीय सरकार होगी। संघ सरकार की प्रमुख बातें ये हैं।

(१) विभिन्न कौमों का अस्तित्व जिन्हें अपने विधान, अपनी सरकार एवं अपने क्षेत्र में सार्वभौम अधिकार प्राप्त हो (२) सर्वनिष्ठ वस्तुओं की व्यवस्था के लिए सर्वनिष्ठ सरकार एवं विधान का होना।

अमेरिका और संघ विचारों की प्रगति

संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की सरकार सन्देहपूर्ण संघीय सरकार है। इसकी राजधानी वाशिंगटन है। सर्वनिष्ठ स्वार्थों के ख्यालसे ४८ राज्योंने मिलकर अपनी संघ सरकार बनायी है पर वे अपनी क्षेत्रीय सरकार भी रखते हैं जिनकी अलग अलग राजधानी हैं तथा जिन्हें वे अधिकार सुरक्षित हैं जिनको उन्होंने संघ सरकार को सुपुर्द नहीं किया है। गत ५० वर्षों से संघ की ओर विश्व की प्रवृत्ति है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के प्राचीन संघ के अतिरिक्त स्वीटजरलैण्ड, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं दक्षिण अफ्रिकामें भी संघ सरकारें चल रही हैं। नवीन विधानानुसार भारतीय सरकार भी संघ सरकार

होगी। मध्यकाल में जिस प्रकार फ्यूडल पद्धति की ओर जनता का विशेष ध्यान था, १५ वीं और १६ वीं शताब्दी में जैसे निरंकुशता की ओर जनता की प्रवृत्ति रही उसी प्रकार आजकल संघ की ओर जनता झुक रही है। सेडविक ने भविष्यवाणी की है कि भावी सरकार की रूपरेखा संघ के आधार पर अधिक संभव हो सकती है। लास्की का भी कथन है कि स्वभावतः समाजका आधार संघ ही हो सकता है।

संघकी वैधानिक कठिनाइयाँ—संघ की विशेष कठिनाइयाँ (क) विधान के संशोधन सम्बन्धी हैं जो एक संघ के अधीन बहुत ही उलझे होते हैं। (ख) संघ में झगड़ों का निर्णय भी बड़ा ही उलझनपूर्ण होता है। आधुनिक संघ सरकार का आवश्यक अंग संघ न्यायालय है जो संघ के क्षेत्र एवं विधान सम्बन्धी निर्णय देता है। ऐसी व्यवस्था अमेरिका में है।'

भारतीय संघ

ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावित समाधानानुसार भारतके लिए संघ की ही व्यवस्था सर्वोत्तम बतलायी गयी है जिसमें ब्रिटिश भारत एवं भारतीय रियासतें शामिल होंगी। इसके निम्नांकित कारण बतलाये गये हैं।

(१) विभिन्न शासन, व्यवस्थापिका एवं स्थानीय एकता का समाप्त किए बिना भारतकी एकता को कायम रखने का एक मात्र तरीका संघ ही होगा जिसमें ब्रिटिश भारत एवं भारतीय रियासतें एक ही राष्ट्रीय सरकार के तत्वावधान में काम करेंगी।

(२) संघ सरकार के द्वारा ही भारत के सदृश महादेश का सुशासन हो सकता है तथा भारत की शीघ्र उन्नति सम्भव हो सकती है।

(३) भारत में उत्तरदायी सरकार की स्थापना के पूर्व ब्रिटिश सरकार संघ के रूप में शर्त उपस्थित करना चाहती थी।

(४) संघ सरकार के अन्दर स्वायत्त सरकार या प्रान्तीय स्वाधीनता सम्मिलित है। प्रान्तीय स्वाधीनता या स्वायत्त शासन से स्थानीय कार्यों में विशेष सहूलियत

हो सकती है। स्वायत शासन से जनता अपना प्रबन्ध स्वय स्वेच्छापूर्वक कर सकेगी। इससे नागरिकोंको काफी शिक्षा भी मिलेगी। गोलमेज सम्मेलन में भारत ने संघ सरकार एवं उत्तरदायी सरकार की मांग की थी। भारतीय विधान परिषद ने भारतको यूनियन का रूप दिया है, पर अभी इस विषय पर वादानुवाद होता रहा है। तथापि सघ की भलाइयों को उपेक्षित नहीं समझा जा सकता। इससे भारत को राजनीतिक एकता प्राप्त होगी।

एक बद्ध एवं संघ सरकारों की तुलना—एक बद्ध सरकार अपेक्षाकृत सरलता पूर्वक चलायी जा सकती है। इसके कारण प्रबल राष्ट्रीय जागरण एवं समस्त देशमें शान्ति एवं सुव्यवस्था कायम हो सकती है। पर बड़े राष्ट्र के लिए यह संभव नहीं हो सकता क्योंकि एक ही केन्द्र से शासन संभव नहीं। उस देशमें भी यह असंभव है जहां राष्ट्रीयता के साथ स्थानीय देशभक्ति का भी जोर हो। जिस देशमें अच्छे राज्य हों जो यूनियन होना चाहते हों पर सम्मिलित नहीं, इससे स्थानीय स्वराज्य और स्वायत्त सरकार की रक्षा होती है। भारतीय संघ सम्बन्धी प्रश्न के वादानुवाद में सघी सरकार की व्यावहारिकता पर प्रकाश डाला गया है। केवल संघीय सरकार के तत्वावधान में ही बहुत बड़े क्षेत्र का शासन हो सकता है, स्वायत्त सरकार को रक्षा की जा सकती है। सघ सरकार बहुत बड़ी सहानुभूति एवं नागरिकता के ज्ञानकी तकाजा करती है। ब्राइस ने यूनिटरी सरकार की तुलना में सघ सरकार के निम्नांकित दोष बताये हैं:—(१) पर राष्ट्रीय कार्यों के सम्पादन में कमजोरी, (२) गृह सरकारी कार्यों में कमजोरी, (३) अपेक्षाकृत कुशासन क्योंकि राज्यों की बगावत एवं निकल जाने की दूर वक्त संभावना होती है, (४) वैधानिक एवं शासन सम्बन्धी कठिनाइयां, (५) द्वैध सरकार के कारण आपत्ति, अपव्यय एव देर होती है।

प्रश्न—

(१) 'प्रजातंत्रवाद को वास्तव में विभाजित करते हैं' प्रत्यक्ष और प्रतिनिधि 'मूलक' इसकी व्याख्या करो। (कल० १९३५)

(२) स्पष्ट तौरपर संघ एवं एक बद्ध विधानों में अन्तर बतलाओ। केबिनेट एवं अध्यक्ष मूलक सरकारों में क्या अन्तर है।

(३) किस हद तक यह कहना ठीक है कि प्रतिनिधि मूलक सरकार सर्वोत्तम सरकार है (कल० १९३४)

(४) विभिन्न सरकारी तरीकों का संक्षिप्त वर्णन करो तथा उनके गुण एवं दोषोंपर भी प्रकाश डालो (कल० १९३६)

(५) संघ सरकार के विभिन्न रूप कौन-कौन से हैं। इसके गुण और दोषों को भी बतलाओ (कल० १९३९)

(६) कौन-कौन से प्रधान सरकारी रूप हैं प्रजातंत्री सरकार का आमतौर पर दोष होते हुए भी क्यों पसन्द किया जाता है। (यू० पी० बोर्ड १९३०)

(७) केबिनेट सरकार एवं अध्यक्ष मूलक सरकार में अन्तर बतलाओ उनके गुणों पर प्रकाश डालो (कल० १९४०)

(८) इस महायुद्ध का सबसे बड़ा अनुभव यही है कि लघु राष्ट्रों की रक्षा के लिए संघ सरकार ही सर्वोत्तम है। यह भारत के लिए तो और भी जरूरी है। इसकी व्याख्या करो और संघ सरकार के गुणों को बतलाओ। (कल० १९४२)

(९) सरकारों का उपयोगी और संतोषप्रद वर्गीकरण करो। (ढाका १९४३)

———

अध्याय १५

प्रजातन्त्री या लोकप्रिय सरकार

सरकारी रूपोंमें हमलोगों ने प्रजातंत्रवादपर पहले ही प्रकाश डाला है। इसकी प्रकृति पर पर्यालोचनात्मक दृष्टिपात अपेक्षित होगा क्योंकि आजकल हर प्रकार के सरकारी रूपोंमें प्रजातन्त्रवाद सर्वोत्तम है। हमलोगों को यह अच्छी तरह ज्ञात है कि प्रजातन्त्री सरकार के अन्दर जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौरपर अधिकार प्राप्त है। छोटे-छोटे राज्योंमें ही प्रत्यक्ष अधिकार सम्भव हो सकता है पर आजकल यह कारगर नहीं हो सकता। अतः प्रतिनिधि मूलक प्रजातन्त्रवाद ही कारगर है। प्रतिनिधि मूलक प्रजातंत्रवाद वास्तविक प्रजातंत्रवाद नहीं है। प्रजातंत्रवाद का आधार समानता है। वास्तव में आजतक विश्वमें वास्तविक प्रजातंत्रवाद की स्थापना नहीं हो सकी है, पर विश्वकी लाख-लाख जनता का यह अंतिम लक्ष्य है जिसकी प्राप्ति के लिए अपार श्रम किया जा रहा है।

प्रजातन्त्री सरकार

प्रजातंत्री सरकार को उत्तरदायी सरकार कहते हैं। क्योंकि इस रूप में सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी होती है जो जनता के प्रतिनिधियों के सहयोग से चलती है।

आधारभूत सिद्धान्त—लोकप्रिय सरकार इस सिद्धान्त पर आधारित है कि सरकार जनता की स्वीकृति पर ही निर्भर रहे। प्रत्येक अनुभवी नागरिक को सरकारी कार्यों में भाग लेने का पूर्ण अधिकार हो। यह जनता के विश्वास एवं सहयोग पर टिकी हुई है। योग्य नागरिक शासकों का चुनाव करता है जो समाज के स्वार्थों की रक्षा करते हैं। अब्राहमलिंकन ने साधारण मनुष्यों के साधारण ज्ञान की प्रशंसा करते हुए कहा था "कुछ लोगों को सब दिन और सब लोगों को कुछ दिन

धोखा दिया जा सकता है, पर सब लोगों को सब दिन धोखा नहीं दिया जा सकता। उन्होंने लोकप्रिय सरकार को "जनता की, जनता द्वारा एवं जनता के लिए" सरकार के नाम से अभिहित किया था।

लोकप्रिय सरकार के गुण

(क) लोकप्रिय या प्रजातंत्री सरकार सर्वोत्तम सरकार है, क्योंकि इसमें किसी भी वर्गको विशेष सुविधा नहीं मिलती तथा सभी को समान राजनीतिक आधार प्राप्त होते हैं।

(ख) लोकप्रिय सरकार ही ऐसी सरकार है जिसमें शासितों के प्रति उत्तरदायित्व का पालन हो सकता है।

ग) लोकप्रिय सरकार कौमकी हित रक्षा का सबसे अच्छा तरीका है, क्योंकि मिल्के कथनानुसार, '(१) व्यक्ति के अधिकार और स्वार्थों की रक्षा तभी हो सकती है जब वह स्वयं अपने पैरोंपर खड़ा होने की क्षमता रखता है। (२ सर्वसाधारण की उन्नति की काफी सम्भावना होती है क्योंकि अधिकाधिक जनता सरकारी कार्यों में भाग लेती है।

(घ) लोकप्रिय सरकार प्रगतिवादी एवं शिक्षाप्रद ताकत है वास्तविक प्रजातंत्री सरकार हर प्रकार से जनता की उन्नति करती है तथा राजनीतिक चेतना बढ़ाती है। उक्त सरकार मानवता की सेवा के आदर्शों से प्रेरित होकर काम करती है तथा परिवर्तित आवश्यकता एवं स्थिति के अनुकूल अपने को बनाती है।

लार्ड ब्राइसका कथन है कि 'व्यक्ति के व्यक्तित्व का परिचय उसकी राजनीतिक मुक्ति से ही मिलती है, उत्तरदायित्व के महत्वपूर्ण ज्ञान के द्वारा ही व्यक्ति को उच्च पद प्राप्त करने का सुअवसर मिलता है।' लोकप्रिय सरकार इस चेतना को सदैव जाग्रत करती है।

(च) प्रजातन्त्रवाद शासितों के इच्छानुसार चलता तथा सबको समान रूप से मान कर चलता है। अतः लोकप्रिय सरकार के प्रति शासितों को कोई शिकायत

नहीं रह जाती है। अगर उन्हें किसी प्रकार की शिकायत भी हो तो उसे वह आसानी पूर्वक सुलझा सकता है। वह समाधानपूर्ण वैज्ञानिक होता है। इस प्रकार क्रान्तिकारी भावनाओं से भी मुक्ति मिलती है। उस प्रकार की सरकार को जिसमें जनता का हाथ नहीं होता, क्रान्ति को सदैव आशंका रहा करती है।

(छ) प्रजातन्त्रवाद स्वस्थ, जागरूक एवं तीव्र नागरिकता का प्रमुख स्थान है। इसमें जनता को सरकारी कार्यों के सम्बन्ध में जानने का पूरा मौका मिलता है। जनता को सरकारी कार्यों का व्यावहारिक ज्ञान होता है। हर प्रकार की गल्ती करके तथा उनसे अनुभव प्राप्त कर जनता काफी फायदा उठाती है।

लोकप्रिय सरकार की आलोचना

(क) प्रजातंत्री सरकार में बहुसंख्यकों का शासन होता है, अतः गुण की अपेक्षा संख्या का अधिक ध्यान दिया जाता है। ' लेकीने लोकप्रिय सरकार की आलोचना करते हुए इसे दरिद्र, मूर्खों एवं अयोग्यों की सरकार बतलाया है। औसतन नागरिकों के पास सरकारी विषयों पर विचारने के लिए समय, अनुभव एवं योग्यता नहीं होती। वे अपनी ओर से इस पर विचार करने का भार दूसरों पर छोड़ देते हैं। इनमें समाचार पत्र एव पत्रिका, सम्पादक तथा सिनेमा एवं रेडियो इत्यादि हैं।

(ख) सरकारी कार्यों में भाग लेने के लिये जितनी योग्यता की आवश्यकता होती है उसका ख्याल कर यह भ्रामक विचार फैल गया है कि प्रत्येक मनुष्य बराबर है। इससे सरकारी कार्यों में सुव्यवस्था का अन्त होता है।

(ग) प्रजातंत्री सरकार चूंकि समस्त जनता की प्रतिनिधि सरकार है अतः यह किसी के प्रति उत्तरदायी नहीं।

(घ) प्रजातंत्री सरकार अपव्ययी होती है, क्योंकि कोष अनुभव रहित जनता के हाथ में है अतः इसका उपयोग उचित रूप से नहीं होता।

(च) लार्ड ब्राम के कथनानुसार प्रजातंत्री सरकार एक ही नीति लगातार

चालू नहीं रख सकती। और न यह आन्तरिक और वैदेशिक नीति ही स्थिर रख सकती है।

(छ) मेन और लेकी सदृश लेखकों का ध्यान है कि प्रजातंत्री सरकार न तो अच्छी सरकार और न काफी स्वाधीनता ही देती है।

लार्ड ब्राइस के कथनानुसार आधुनिक लोकप्रिय सरकार के प्रधान दुर्गुण ये हैं।

(१) जनता के जीवन पर अर्थ का अभिशाप प्रभाव, (२) राजनीति को पेशे का रूप देने की प्रवृत्ति, (३) अपव्ययी शासन, (४) शासन सम्बन्धी बुद्धि को समझने में असफलता (५) दलगत भावनाओं एवं सिद्धान्तों का ध्यान, (६) मत प्राप्त करने योग्य विधान एवं शासन आदि।

परिणाम

चाहे लोकप्रिय सरकार की आलोचना कोई कितना भी क्यों न करे पर आजकल के दिनों में प्रजातन्त्र की धारा को रोकना असम्भव है। विश्व के प्रत्येक सभ्य देशों में इसका न्यूनाधिक मात्रा में प्रचलन है। लेकी के सदृश कटु आलोचक का भी कथन है कि यह एक नाजुक औजार है जिसको सुचारु रूप से चलाने के लिए जनता को महान् उत्तरदायित्व समझने की आवश्यकता है। वुड्रो विल्सन के कथनानुसार स्वायत्त शासन एक गुण है जो काफी अनुशासन के आधार पर टिका हुआ है। मैजिनी ने प्रजातंत्रवाद को महान नेतृत्व के अन्दर सबके द्वारा सबकी भलाई का साधन बतलाया है।

प्रजातंत्रवाद में स्वाधीनता और उत्तरदायित्व—लोकप्रिय सरकार की शर्त्त विलोबाई एवं रोगर्स ने लोकप्रिय सरकार की सफलता की आवश्यक शर्त्त निम्नलिखित बतलायी हैं :-(१) विश्वसनीय जनमत का अस्तित्व (२) यह जनमत तीव्र और सुव्यवस्थित हो (३) इसकी अभिव्यंजना के उचित एवं पर्याप्त साधन हों (४) अधिकारी व्यक्तियों पर नियंत्रण रखने के लिए वैधानिक तरीका मौजूद रहे (५) एक योग्य शासन यन्त्र का गठन भी अत्यावश्यक है।

मिलने सफलता को निम्नांकित शर्तें पेश की हैं :—(१) उसे प्राप्त करने की इच्छा एवं योग्यता जनता को होनी चाहिए (२) इसकी रक्षा के लिए वह लड़ने को सदैव प्रस्तुत हो (३) आवश्यकता पड़ने पर नागरिक कर्तव्य और उसकी रक्षा की इच्छा और योग्यता जनता में हो जिससे निरंकुश, राज्यतंत्र एवं प्रतिक्रियावादी सरकार प्रतिनिधि सरकार का स्थान ग्रहण न कर सके।

प्रजातंत्र नवीन खतरं—तानाशाही का उत्थान

तानाशाही वह सरकारी रूप है जिसमें एक ही व्यक्ति के हाथमें समस्त अधिकार चला जाता है या एक ही दल देश का शासक बन जाता है। मुसोलिनी और हिटलर इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। यह सैनिक सरकार का एक रूप है जिसका विकाश रोमन प्रजातन्त्रवाद से हुआ है। वहां संकटकाल में ७ वर्षों के लिए एक ही व्यक्ति के हाथमें अधिकार दिया जाता था। १९३४ को लड़ाई के बाद यूरोप में आधुनिक तानाशाही का विकास हुआ। विजेता राष्ट्रब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका ने विश्व के बहुत बड़े भागपर अधिकार कर लिये। इटली यद्यपि एक सहायक राष्ट्र मात्र था पर वह नीचे ढकेल दिया गया। जर्मनी को लज्जाजनक शान्तिशर्तें कबूल करनी पड़ीं। हिटलर और मुसोलिनी ने विचार किया कि जबतक फ्रांस, ब्रिटेन और अमेरिका पर सैनिक सफलता प्राप्त नहीं होती विश्व विजय की कामना व्यर्थ होगी। अतः कमजोर प्रजातंत्री सरकारों पर वे चटपट हावी हो गये। उन देशों में एक दल का राज्य हुआ। इस प्रकार तानाशाही ने पुनः सिर उठाया। यह राष्ट्रीय साम्राज्यवादी और सैनिक सरकारें भी।

जब राज्य हर प्रकार के सामाजिक और वैयक्तिक कार्यों पर नियन्त्रण रखता है तो वह पूर्णतावादी राज्य कहा जाता है। अतः आजकल रूस पूर्णतावादी राज्य कहा जायगा। सार्वभौम, सर्वशक्तिमान, निरकुश अधिकारी के रूप में जब राज्य सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक एवं वैयक्तिक कार्यों को हस्तगत कर लेता है तो उसे पूर्णतावादी राज्य कहते हैं जो सामाजिक और आर्थिक योजना एवं सैनिक

शासन की वृद्धि के साथ राष्ट्रीय सुरक्षा का ही ख्याल रखता है। रूस की सोवियत सरकार तानाशाही कही जाती है। इसमें सर्वहारावर्ग की तानाशाही है जिसका तात्पर्य ९९ प्रतिशत जनता का प्रजातन्त्र है। ब्रिटेन और अमेरिका में पूंजीपतियों का प्रजातन्त्र है जिसका तात्पर्य बहुसंख्यकों की आर्थिक गुलामी है।

प्रजातन्त्रवाद बनाम तानाशाही-उनके लक्ष्य और आदर्श—तानाशाही के गुण—प्रजातन्त्रवाद की अपेक्षा तानाशाही में निम्न विशेषतायें हैं। (१) इससे पूर्ण राष्ट्रीय एकता कायम रहती है (२) यह जल्दबाजी और तीव्रता से कार्य करती हैं तथा शीघ्र निर्णय कर सकती हैं ३) परराष्ट्रीय कार्य को युद्धकाल में यह अधिक सफलता पूर्वक करती है (४) पूंजीवादी पद्धति को अधिकृत करने के लिए इसमें विशेष क्षमता है (५) नागरिकों में आत्म त्याग, मित्रता एवं देशभक्ति की भावना जाग्रत होती है।

तानाशाही के दोष-तानाशाही के कुछ महान दोष हैं (१) यह सैन्यबल पर निर्भर करती है। इसमें जनताके अधिकारोंकी स्वीकृति नहीं है। अतः लड़ाई अधिक सम्भव है (२) समानता के आधार पर सभी राष्ट्रों को शान्ति पूर्ण जीवन व्यतीत करने की सुविधा नहीं रहती (३, स्वतन्त्र भाषण, स्वतन्त्र विचार आदि की स्वाधीनता छीन ली जाती है (४) व्यक्ति को बलपूर्वक अधीन किया जाता है (५ धनका अधिकार समाप्त होता है जिससे राज्य गरीब होता जाता है।

तानाशाहीकी अपेक्षा प्रजातन्त्रवाद अच्छा तो है, पर अनेक दोषों ने तानाशाही ने इसका स्थान ग्रहण कर लिया है। प्रजातन्त्रवाद की असफलता पूंजीवादी प्रजातन्त्रवाद की असफलता है। प्रजातन्त्रवाद की असफलता के कारण पूंजीपतियों ने तानाशाही की शरण ले ली है। प्रजातन्त्रवाद का आधार स्वाधीनता, समानता एवं भ्रातृभावना है। तानाशाही गुलामी और सैनिक-शक्ति पर निर्भर करती है।

प्रजातन्त्री या लोकप्रिय सरकार

प्रश्न

(१) उत्तरदायी सरकार से तुम क्या समझते हो ? (कल० १९२६)

(२) प्रजातन्त्रवाद की व्याख्या करो। प्रजातन्त्रवाद में विधान निर्माण की पद्धति पर प्रकाश डालो। (कल० १९२७)

(३) प्रतिनिधि प्रजातन्त्री सरकार के गुण दोष की चर्चा करो। (कल० १९२८)

(४) लोकप्रिय सरकार के गुण-दोषों पर संक्षिप्त प्रकाश डालो। (कल० १९२९)

(५) उत्तरदायी सरकार से तुम क्या समझते हो ? क्या बङ्गाल और भारत की सरकार उत्तरदायी सरकार के उदाहरण हैं ? (कल० १९३१)

(६) लोकप्रिय सरकार क्या है ? इस प्रकार की सरकार के लिए आवश्यक वस्तुओं पर प्रकाश डालो। (कल० १९३२)

(७) प्रजातन्त्री सरकार के गुण दोषों पर प्रकाश डालो। (कल० १९३९-४१) क्या प्रजातन्त्रवाद जीवित रह सकता है ? (कल० १९४१)

(८) प्रजातन्त्री सरकार और तानाशाही में तुम किसको पसन्द करते हो ? अपने उत्तर का कारण बतलाओ। (ढाका १९४२)

(९) पूर्णतावादी राज्य के लक्ष्य क्या हैं ? प्रजातन्त्री के उद्देश्य से वे कैसे भिन्न हैं ? (कल० १९४२)

(१०) सरकारों के सन्तोषप्रद और लाभदायक वर्गीकरण करो। (ढाका १९४३)

अध्याय १६

जनमत

'हर प्रकार की सरकारें चाहे कितनी भी बुरी क्यों न हों अपने अधिकार के लिए जनमत पर ही निर्भर करती हैं। (ह्यूम)

जनमत क्या है ?

वह राय कभी भी जनता की नहीं होगी, जबतक कौम की बहुसंख्या इसे कबूल न कर ले। इससे यह तात्पर्य नहीं कि समस्त मनुष्य एक ही प्रकार सोचते हों बल्कि मौलिक बातों के सम्बन्ध में सबकी राय एक ही हो। यद्यपि गैर जरूरी बातों पर उनके मतभेद हैं पर जरूरी बातों के सम्बन्ध में वे सहयोग के लिए पूर्ण प्रस्तुत हैं।

"हर प्रकार की दलगत भावनाओं के बावजूद में सरकार की कीमत को सभी कबूल करते हैं जिसका रहना अनिवार्य समझा जाता है। इसमें राष्ट्रीय विचारों का भी ख्याल रखना पड़ता है। एक राय जितना ही अधिक समर्थन प्राप्त कर सके उसे उतना ही अधिक लोकप्रिय कहा जाता है। किसी भी मानव समाज में वही जनमत मान्य हो सकता है जो सभी के द्वारा स्वीकृत भले ही न हो पर जनता द्वारा मनोनीत कुछ अधिक अनुभवी व्यक्तियों को मान्य हो जिन्हें अपना निर्णय देनेका पूरा अधिकार प्राप्त हो।"—विल्बाई और रोगरस।

लोवेल के कथनानुसार 'किसी राय को जनमत प्राप्त करने के लिए बहुमत ही पर्याप्त नहीं है और न तो सर्व सम्मति की ही आवश्यकता है'।

लोकप्रिय सरकार और जनमत

हमने देखा है कि लोकप्रिय सरकार का यह तात्पर्य कदापि नहीं कि जनता प्रत्यक्ष रूपेण शासन करे। इसके विपरीत प्रत्येक प्रजातंत्री सरकारों का सचालन प्रतिनिधियों द्वारा ही होता है। जनमत के द्वारा ही प्रतिनिधि जनता से निकट सम्पर्क रखते हैं। उदाहरण स्वरूप जब जनमत सामाजिक सुधार चाहता है तो सरकार या व्यवस्थापिका चुपचाप नहीं बैठ सकती। उन्हें जनमत को मानना नहीं पड़ेगा। कानून बनते हैं और उन्हींके अनुसार देश का शासन होता है। इस प्रकार प्रजातंत्री देश में कानून और जनमत में तादात्म्य सम्बन्ध सदैव रहता है। इस प्रकार लोकप्रिय सरकार उसे कहते हैं जो जनमत द्वारा प्रभावित हो। लावेल के कथनानुसार जनमत किसी प्रकार की फक नहीं बल्कि मेधावी राय होनी चाहिए।

जनमत द्वारा सरकार का निर्माण—जनमत द्वारा सरकार का निर्माण यह समझ कर उचित नहीं ठहराना चाहिए कि जनमत ठीक ही है बल्कि यह समझ कर उचित ठहराना चाहिए कि एक दल या एक व्यक्ति की राय की अपेक्षा यह अधिक ठीक है। जब यह ज्ञात हो जाता है कि सरकार का संचालन जनमत के ही आधार पर है तो देश में अधिक शान्ति और सतोष का मान होता है तथा इससे कानून के लोकप्रिय होने एवं राष्ट्र की रक्षा में अधिक संभावना रहती है।

लोकप्रिय नियन्त्रण का अर्थ

लोकप्रिय सरकार का निर्णय दो प्रकार से हो सकता है [१] सरकारी कार्यों में जनता का किस हद तक सहयोग है, [२] सरकारी प्रतिनिधियों के लिए दिये गये मत की कीमत कितनी है। इस प्रकार लोकप्रिय सरकार के रूप की अपेक्षा गुण अधिक विवेचन की वस्तु है। सबसे बड़ी जांच यह है कि सरकार जनमत की कहाँ तक परवाह करती है।

लोकप्रिय सरकार के तत्व-जनमत द्वारा नियंत्रण—ब्रिटेन के सदृश अनियमित राज्यतन्त्र के अन्दर भी लोकप्रिय सरकार बन सकती है। सरकार के तत्व रूप में नहीं बल्कि जनमत सरकार के प्रति अन्यमनस्क या अयोग्य हो तो लोकप्रिय नियन्त्रण कदापि सम्भव नहीं हो सकता। शक्ति और नियंत्रण उन थोड़े लोगों के हाथ में चला जाता है जो भले होने के साथ ही साथ स्वार्थी भी होते हैं। इसका परिणाम शासन की कुव्यवस्था है। इस प्रकार के राष्ट्र में जीवन दूभर हो जाता है। अन्याय और संकट का खतरा सदैव विद्यमान रहता है और सदैव जनता के जागरण पर ही तानाशाही से मुक्ति की सम्भावना हो सकती है। अतः नागरिकशास्त्र का अध्ययन उतना ही जरूरी है जितना यह बड़ा है। जनता को खूब समझ लेना चाहिए कि उनके ही प्रयत्नसे जनता की भलाई हो सकती है।

जनमत के विकास और प्रकटीकरण के साधन

आधुनिक प्रजातन्त्री राष्ट्रों का सफल शासन जनमत प्राप्तिके साधन पर ही निर्भर करता है। जनमत के द्वारा ही प्रतिनिधि सरकार के प्रतिनिधि हर समय जनता के निकट सम्पर्क में रहते हैं। इस प्रकार जागरूक विश्वस्त एवं ताकतवर जनमत शासन की कुव्यवस्था को ठीक करता है। अतः सफल एवं सुव्यवस्थित शासन के लिए जनमत प्राप्ति के साधन को मुस्त करना सरकार का कर्तव्य है। जिन साधनों से जनमत प्राप्त किया जा सकता है वे मुख्यतया (१) शैक्षणिक संस्थायें (२) समाचारपत्र (३) ··ंच (४) दल (५) सिनेमा एवं रेडियो हैं।

(१) शैक्षणिक संस्थायें—घर पर चूंकि बच्चों की शिक्षा-दीक्षा सम्भव नहीं है अतः इसका उत्तरदायित्व विद्यालयों को उठाना पड़ता है। स्कूल, कालेज एवं विश्वविद्यालयों में ही भावी नागरिकों को तैयार किया जाता है। यहीं से उनका मानस परिपुष्ट होता है और मत निर्धारित करने के योग्य बनता है। अपने

विद्यार्थी जीवन की समाप्ति के पूर्व राजनीति में सक्रिय भाग लेने की आशा एक विद्यार्थी से भले ही न की जाय पर कालेज की वाद-विवाद समिति में उपस्थित प्रस्ताव से भावी राजनीतिज्ञ की कल्पना होने लगती है।

विद्यार्थी जीवन में छात्रों के मस्तिष्क में जो विचार घर कर लेता है वह विद्यार्थी जीवन के बाद भी बहुत दिन तक बना रहता है। रूस, जर्मनी एवं युद्धोत्तर चीन की हालत के अध्ययन के पश्चात हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि शैक्षणिक संस्थाओंका कहाँ तक प्रभाव पड़ता है। प्रजातन्त्रवाद के लिए शिक्षा निहायत जरुरी चीज है। प्रत्येक शासनतंत्र और निरंकुश सरकार यह अच्छी तरह जानती है कि उल्लू सीधा करने के लिए जनता को मूर्ख रखना जरूरी है। शिक्षा से प्रजातन्त्रवाद पुष्ट होता है अतः अनिवार्य शिक्षा की बहुत आवश्यकता है।

(२) समाचार पत्र—समाचार पत्र जनस्वार्थ सम्बधी समाचार और मत व्यक्त करता है। ताजी खबरों पर टिप्पणी देना तथा उनके सम्बन्ध में जनमत व्यक्त करना ही इसका काम है। समाचार पत्र हमलोगों को शिक्षा देता है चाहे वह समाचार पत्र की अच्छाई और बुराई के अनुसार अच्छा हो या बुरा। जनता की शिक्षा की वृद्धि के साथ समाचार पत्रों का महत्व बढ़ गया है। अतः आज राष्ट्र के जीवन में समाचार पत्रों का महत्व पूर्ण स्थान हो गया है। जब समाचार पत्र एक दल या व्यक्ति के स्वार्थों की रक्षा करने लगता है तो उसका महत्व घट जाता है। देशके समाचारपत्रों पर सरकार का अधिकार नहीं होना चाहिए। क्योंकि सरकारी समाचार पत्र स्वाधीनता को रोक भी सकती है। कुछ स्वार्थी पूंजीपतियों का भी पत्रों पर अधिकार अनुचित है जैसा कि ब्रिटेन और अमेरिका में देखा जाता है। समाचार पत्र बुराई और भलाई दोनों कर सकता है। अतः यह खूब अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए जिससे जनता को खराबी न पहुँच सके। बड़े-बड़े देशों में समाचार पत्रों द्वारा ही प्रजातन्त्र संभव हो सका है अब इसकी आवाज बहुत

बड़ी संख्या तक पहुंचने लगी है। स्वतन्त्र समाचार पत्र के बिना अन्यायी सरकार का अन्त नहीं हो सकता। अतः जन-स्वार्थ के लिए सत्यासत्य के विवेचनार्थ समाचार पत्रों को स्वतन्त्र होना चाहिए। समाचार पत्र शासकों के अन्याय को प्रकट करता है। शासन परिषद की बुराइयों एवं स्वार्थों को प्रकट करता तथा जनता की स्वाधीनता की रक्षा करता है। पर जब समाचार पत्र जनमत को छोड़कर व्यावसायिक रूप धारण करता है तो वह बहुत बड़ा खतरा भी हो जाता है।

(३) मंच—जिस प्रकार समाचार पत्र जनता को जाग्रत करता है उसी प्रकार मंच जनता के अग्रगण्य नेताओं के भाषण द्वारा राजनीतिक प्रश्नों में जनता की रुचि पैदा करता है। गृह और परराष्ट्रीय राजनीति सम्बन्धी प्रमुख प्रश्नों पर प्रकाश डालकर भाषणकर्ता जनता को अभिज्ञ बनाता है।

(४) दल—राजनीतिक दलों द्वारा बहुत बड़े पैमानेपर जनता की राजनीतिक जागृति होती है। दलगत प्रचार द्वारा ही साधारण नागरिक भी प्रमुख राजनीतिक बातों का ज्ञान हासिल करता है। अगर साधारण नागरिक की रुचि इस तरफ पैदा न की जाय तो वह अपने देश के काम के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता है। दल जनता में रुचि पैदा करते हैं जिसके बिना जनमत सर्वथा असम्भव है।

(५) रेडियो और सिनेमा—शिक्षा और जनमत की रूपरेखा रेडियो और सिनेमा द्वारा ही प्रस्तुत होती है रेडियो और सिनेमा का महत्व भारत सरीखे मुल्क में समाचार पत्रों से भी अधिक है जहाँ की जनता अनपढ़ होने के कारण देखी और सुनी हुई बातों को अधिक समझ सकती है। अगर प्रतिवादी और वास्तविक प्रतिनिधि संस्था हो तो व्यवस्थापिका जनमत को प्रभावित करती है और जनता के जीवन को एक ओर मोड़ती है। लेकिन मौजूदा परिस्थिती में यह न तो काफी अधिकृत ही है और न जनमत को ही प्रभावित कर सकती है।

कटु आलोचना के खतरे और उनकी सीमा

विद्यालय, समाचारपत्र, राजनीतिक दल, रंगमंच एवं सिनेमा ने जनमत को प्रभावित करने में जितनी शक्ति प्राप्त की है उनकी आलोचना भी की जा सकती है। वास्तव में वर्ग और दलगत स्वार्थ को आगे बढ़ाने में इसकी कटु आलोचना आज की भी जा रही है। जनमत के शक्तिशाली साधन पर एकदल या समूह नियंत्रण कर सकता है। इससे सबसे बड़ी बुराई यह है कि एक दल की बातें तो जनता के समक्ष उपस्थित होती है पर उत्तर में दूसरा दल क्या कहता है इसपर बिल्कुल प्रकाश नहीं डाला जाता। चूंकि एक पक्षीय दृष्टि से मामला उपस्थित पाया जाता है, अतः निर्णय भी एक पक्षीय ही होगा। जबतक दोनों पक्षों की बात सामने न आये तबतक लोग जनता सम्बन्धी विषयोंपर निर्णय नहीं दे सकते। निर्णय या वास्तविक जनमत के अभाव से राष्ट्र में राजनीतिक और आर्थिक बुराई फैलती है।

प्रश्न—

(१) जनमत से क्या समझते हो? लोकप्रिय सरकार को जनमत कैसे प्रभावित करता है। (कल० १९२९)

(२) जनमत की प्रकृति पर प्रकाश डालो। जनमत का कानूनपर क्या प्रभाव पड़ता है। (कल० १९३०)

(३) जनमत निर्माण में समाचार पत्रों और दलों के कार्यों का जिक्र करो।

(४) आजकल जनमत निर्माण में कौन कौन से साधन हैं, इनकी ताकत और सीमापर प्रकाश डालो। (कल० १९३४)

(५) 'प्रजातंत्रवाद के लिए जागरुक और तीव्र जनमत जरूरी है'। (कल० १९३६)

(६) 'आधुनिक राष्ट्रों के सफलशासन जनमत निर्माण और प्रकाश के साधनों पर निर्भर करता है। (कल० १९३८)

अध्याय १७

दल, दलगत सरकार और दलगत पद्धति

दल क्या हैं

दल उन शक्तियों का समूह है जिनके समय विशेष की राजनीतिक विचारधारा एक हो तथा जो उन विचारधाराओं के अनुसार कामकर सरकार संचालन की शक्ति प्राप्त करने को सन्नद्ध एवं एक-बद्ध हों। प्रजातंत्रवाद में राजनीतिक दलोंका विशेष महत्व बढ़ गया है।

दल कैसे बनाये जाते हैं?—'हरएक कौम में जनकार्य सम्बन्धी विभिन्न विचारधारायें होती हैं। अग्रगण्य व्यक्ति विरोधी भावनाओं के विरोध के लिए तत्पर होते हैं। दूसरे लोग उनके समर्थन में उनके अनुयायी हो जाते हैं। अपनेमन के प्रचारार्थ वे एक बद्ध एवं संघ बद्ध हो जाते हैं' (ब्राइस) इसी प्रकार दल बनते हैं। दलके नेता के चरित्र, निर्णय, योग्यता, उत्साह, व्यक्ति एवं ज्ञानपर बहुत बातें निर्भर करती हैं। अपने उदाहरण एवं शिक्षा से वह योग्य व्यक्तियों को चुनता एवं आदर्शोंका निर्माण करता है तथा अपने देशको सभी वस्तुओं से ऊपर समझता है। हर एक देशमें जहां लोकप्रिय सरकार चल रही है दलकी स्थापना होती है।

दल बनाम विरोधीपक्ष—'दल व्यक्तियों का वह समूह है जो संयुक्त प्रयत्न से निश्चित उद्देश्य द्वारा प्रेरित होकर राष्ट्रीय स्वार्थ को आगे बढ़ाता है। समस्त व्यक्ति एक ही विचारधारा के मानने वाले होते हैं' (ब्राइस) अतः दल मतदाताओं की स्वतंत्र एवं स्वेच्छित संस्था है जिसके द्वारा अपने उद्देश्यकी प्रगति की जाती है। इसके विपरीत विरोधीपक्ष उन सिद्धान्त विहीन मनुष्यों का समूह है

जो न उच्चादर्श और न राष्ट्रीय विचारधारा बल्कि अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए एक बद्ध होकर काम करते हैं।

राजनीतिकदलों के कार्य—दल का प्रमुखकार्य जनमत को सुशिक्षित करना एवं अपने अनुकूल बनाना है। दल जनकार्यों में रुचि पैदा करते हैं तथा प्रजातन्त्रवाद को मजबूत बनाने में सहायक होते हैं। इससे अन्यायी सरकार की वृद्धि रुकती है। पर राजनैतिक दलोंका प्रमुख उद्देश्य राजनैतिक सत्ता एवं सरकारी पद प्राप्त करना होता है। इसके लिये संस्थाकी आवश्यकता होती है। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये दलगत संस्था को निश्चित कार्य करने पड़ते हैं। जो निम्न हैं।

(१) जिन नीतियों से प्रभावित होकर दल खड़ा होता है उनका जोरों से प्रचार किया जाता है।

(२) चुनाव के पहले राजनैतिक प्रचार सालभर तक खूब किया जाता है। यह कार्य वक्तव्य एवं समाचार पत्रों के द्वारा सम्पन्नकर जनमत प्राप्त किया जाता है।

(३) सरकारी दफ्तरों के लिए दलगत उम्मेदवार चुने जाते हैं तथा दलके सदस्य एवं दूसरे लोग भी मत प्रदान के लिए उत्साहित किये जाते हैं।

(४) अधिकार और शक्ति प्राप्त करने के लिए चुनाव लड़ा जाता है। चुनाव में अपने दलके पक्ष में मतदेने के लिए जनता को बहकाया जाता है और अपने दलके उम्मेदवार को विरोधी उम्मेदवार की अपेक्षा योग्य एवं अच्छा बतलाया जाता है।

(५) मतदाताओं के प्रति की गयी प्रतिज्ञा के पालन की घोषणा की जाती है और बतलाया जाता है कि चुनाव के बाद अमुक सुविधायें अमुक दल जनता को देगा। ऐसा भी कभी होता है कि चुनाव में बहुमत प्राप्तकर दल अपनी प्रतिज्ञा भूल जाता है।

दलगत सरकार—व्यवस्थापिका में बहुमत प्राप्त करने के लिए प्रत्येक दल प्रयत्नशील होता है क्योंकि बहुमतवाले दल को ही सरकारी कार्यों में हाथ बटाने का मौका मिलता है। इस प्रकार अल्पसंख्यक दलको बहुसंख्यक का विरोधी दल बनाना पड़ता है। जब ताजी ताकत प्राप्तकर अल्पसंख्यक दल बहुसंख्यक बन जाता है तो नवीन बहुसंख्यक दल ही सरकार बनाता है और पुराना बहुसंख्यक अल्प संख्यक होने के कारण विरोधी दल बन जाता है। इस प्रकार की सरकार को दल गत-सरकार कहते हैं। दलगत सरकार का आधार एक प्रजातंत्रवादी देश में यह है कि बहुसंख्यक अल्पसंख्यक दल पर हावी हो सकता है। हम कह सकते हैं कि अल्पसंख्यकों पर यह बड़ा अत्याचार है पर उचित रुपेण कार्य करने के लिये इससे अच्छा तरीका अब तक प्राप्त नहीं किया जा सका है।

अपवर्त्यदल और द्विदलीय पद्धति—अगर फ्रांस एवं जर्मनी सदृश देशमें तीन या चार राजनीतिक दल हों तो इसे अपवर्त्य दल कहते हैं। अत्यधिकदलों का तात्पर्य अन्तरिक संघर्ष की वृद्धि है जिससे राष्ट्रोन्नति को गहरा आघात पहुंचता है। ऐसे देशों की सरकारें दूसरे दलों के सहयोग से बनती हैं जिन्हें भग होने की आशंका सदैव बनी रहती है। इस प्रकार की सरकार कभी स्थायी और ताकतवर नहीं हो सकती। सत्ता प्राप्त करने वाले दलको अपने समर्थन के लिए दूसरे दलवालों को घूस भी देना पड़ता है। इस प्रक र की दलीय पद्धति अनेक बुराइयों का कारण है जिससे घूसखोरी अस्थिरता एव अन्यान्य राजनीतिक बुराइयां फैलने लगती हैं। इस लोगोंके विचारानुसार सर्वोत्तम राजनीतिक पद्धति यह है कि देशमें दो ही काफी ताकतवर एवं सुव्यवस्थित दल हों। अभी हाल तक ब्रिटेन में यही पद्धति थी। इस प्रकार की पद्धति के अनुसार बहुसंख्यकदल सरकार बनाता एव अल्पसंख्यक उसका विरोधी बनता है। एक दल दूसरे पर लगाम लगाता है। एक दल की सरकार काफी ताकतवर होती है जो संयुक्त सरकारकी अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित तंग एव सुचारु रूपसे काम करती है। इस प्रकार की सरकार बड़ी सावधानी

पूर्वक काम इसलिए करती है जिससे कहीं उसकी गलतियोंके कारण विरोधी दलको लाभ उठाने एवं मत-दाताओं को अपने पक्षमें करने का मौका न मिल जाय।

विरोधी दल वाले भी अनुत्तरदायी आलोचना नहीं करते, क्योंकि वह सख्या एवं सत्ता प्राप्त करने के बाद अपने विचारानुसार उन्हें काम करना पड़ता है। इस प्रकार उत्तरदायित्व का पालन किया जाता है। इस प्रकार द्वि-दलीय पद्धति की सरकार काफी मजबूत होती है।

दलीय पद्धति के गुण

(१) बहुत बड़ी कौम के लिए दलकी आवश्यकता है। अगर दलगत व्यवस्था न हो तो राजनीतिक समस्या से बहुत से नागरिक अनभिज्ञ ही रह जाते हैं। दल के सहज संस्था के हो द्वारा नागरिक राजनीतिक समस्या एवं उसके समाधान से परिचित होते हैं। वास्तव में चुनाव की लड़ाई शिक्षा की लड़ाई है। जिस मतदाता को एक उम्मेदवार के विरुद्ध दूसरे उम्मेदवार को मत देने के लिए कहा जाता है उसे इस बात से पूर्ण परिचित कराया जाता है कि दल विशेष की नीति विरोधी की अपेक्षा अच्छी है। लास्की के कथनानुसार दलों को विषय निर्धारित करना होता है, जिसपर जनता मत देती है।

(२) दल मत-दाताओं को मत-दान की प्रेरणा देकर जन-कार्य में उनकी रुचि पैदा करता है।

(३) प्रजातंत्रवाद के अन्दर सरकार को सुगठित करने के लिए दलकी आवश्यकता है। जबतक व्यवस्थापिका के बहुमत की संभावना न हो तबतक कोई सरकार कारगर नहीं हो सकती। अगर व्यवस्थापिका में कोई मजबूत दल समर्थन के लिए न हो तो सरकार कमजोर हो जाती है क्योंकि व्यवस्थापिका में मत प्राप्ति में सन्देह बना रहता है। अगर नागरिक अपने छोटे-छोटे मतभेदों को भुलाकर महत्वपूर्ण विषय पर एक मत नहीं हो जावे तो प्रजातंत्रवाद झगड़ा, बखेड़ा का साधन बन जायगा।

(४) दल निरंकुशता को रोकता है। विरोधी दल की आलोचना के भय से सत्ता-प्राप्त दल संभल कर काम करता है।

दोष

(१) दलगत पद्धति से दलगत भावना पैदा होती है, जो कभी-कभी बुराइयों का कारण बन जाती है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिस आधार पर दल का गठन होता है वह भूल जाया जाता है। ऐसी स्थिति में दल साधन के स्थानपर लक्ष्य बन जाता है। इसके अनुयायी आदर्शों के लिए, पार्टी के लिए विजय कामना करते हैं। कभी-कभी तो अनुयायी राष्ट्र के प्रति वफादारी के स्थान पर दल के प्रति वफादारी प्रकट करते हैं।

(२) दलगत पद्धति व्यक्तित्व को दो भागों में बांटती है। प्रथम, इससे व्यक्ति पार्टी पर अधिक निर्भर करता है। व्यक्तित्व की योग्यता की अपेक्षा व्यक्ति के साधन पर अधिक विचार किया जाता है।" द्वितीय, दल के सदस्य को दलगत अनुशासनानुसार दल के सिद्धान्त के विपरीत मत प्रकाशन की अनुमति नहीं मिलती।

(३) अमेरिका के सदृश दल के कारण अनेक बुराइयाँ फैलती हैं, जहाँ दलपर कुछ व्यक्तियों का अधिकार हो जाता है जो व्यक्तिगत स्वार्थ से प्रेरित होकर ही अपने इच्छानुसार काम करते हैं।

(४) दलगत-पद्धति के कारण प्रमुख एवं योग्य व्यक्ति सरकारी दफ्तर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। ये पद उन्हीं व्यक्तियों के लिए सुरक्षित हैं जो दल के अनुशासन को मानते हैं। कभी-कभी दल के योग्य व्यक्ति भी आर्थिक गुलामी के विरुद्ध बगावत कर देते हैं। विरोधी दल के योग्य व्यक्ति सरकारी पदोंपर इसलिए नहीं बैठाये जाते क्योंकि सत्ता प्राप्त दलके सदस्य पदों को भर देते हैं।

(५) दलगत पद्धति के अनुसार जनता की व्यर्थ चापलूसी की जाती है क्योंकि

मत प्राप्त करने के लिए ऐसा जरूरी समझा जाता है। कभी-कभी मत प्राप्ति के लिए ही कानून बनता है जो कौमके स्वार्थ के लिए घातक सिद्ध होता है।

नागरिक और दल

आधुनिक प्रजातंत्रवाद के संचालन में दलगत सरकार की बुराइयाँ रोड़ा उपस्थित करती हैं। अगर सभी नागरिक काफी सावधानी से काम लें और जनकार्यों में हार्दिक सहयोग करें तो इन बुराइयों का अन्त हो सकता है। दलगत सरकार की बुराइयों का पता लगाना चाहिए तथा जनता के अन्दर पूर्ण उत्तरदायित्व की भावना पैदा कर उनका अन्त करना चाहिए। अगर प्रजातंत्रवाद की रक्षा करनी है तो साधारण नागरिकों की निःस्वार्थ सेवा करनी होगी तथा उनके उत्तरदायित्व एवं ज्ञान की वृद्धि करनी होगी।

प्रश्न

(१) एक प्रजातंत्री देश के राजनीतिक दलों के कार्यों की व्याख्या करो। (कल० १९३५)

(२) दलगत पद्धति के लाभ और हानिपर प्रकाश डालो। (कल० १९४२)

(३) राजनीतिक दल और विरोधी पक्ष में अन्तर बतलाओ। दलगत पद्धति के गुण और दोष बतलाओ। (कल० १९३२)

(४) राज्य के कार्य और नागरिकों की शिक्षा में राजनीतिक दल क्या कार्य करते हैं? (यू० पी० बोर्ड १९३०)

अध्याय १८

मतदाता

हमने पहले ही देखा है कि आधुनिक नागरिकों का सर्व प्रथम अधिकार मतदान है। आधुनिक प्रतिनिधि सरकार के कारण इसका महत्व और अधिकार हो गया है, कारण, आज नागरिकों को प्रतिद्वन्द्वी विषयों का ही मनोनयन नहीं करना पड़ता, बल्कि प्रतिद्वन्द्वी उम्मेदवारों में से एक को चुनना पड़ता है। ज्योंही राज्य जनसंख्या और सीमा क्षेत्र में विस्तृत हो जाता है त्योंही जनता का सरकारी कार्यों में प्रत्यक्ष भाग ले सकना असम्भव हो जाता है। तब प्रत्यक्ष प्रजातन्त्रवाद अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्रवाद का रूप धारण करता है। ऐसी स्थिति में नागरिकों को प्रतिनिधियों का चुनाव करना पड़ता है जो उनकी ओर से सरकार का संचालन करते हैं।

मतदान का तात्पर्य, इसकी प्रकृति और इसके कार्य

नागरिक जब सामूहिक रूप से इस कार्य का सम्पादन करते हैं तो उसे चुनाव कहते हैं, एक को चुनना मतदान, चुनने वाला मतदाता एवं सामूहिक रूप से वे मतदाता बनाते हैं। मतदान का उद्देश्य_(क) उस व्यक्ति को चुनना है जो सरकारी पदों पर विराजमान होंगे (ख) जो उन कार्यों के प्रति स्वीकृति या अस्वीकृति देंगे। आधुनिक प्रजातन्त्रवाद या प्रतिनिधि सरकार की नींव या तत्व उपयुक्त निर्वाचन पर ही निर्भर करता है।

आधुनिक राज्य और मतदाता

आधुनिक राज्य अपनी ताकत एवं स्थायित्व प्रजातन्त्रवादी रूप से ही प्राप्त करते हैं। प्रजातन्त्री सरकार (१) नागरिक स्वाधीनता जिसका तात्पर्य यह है

कि कानून के समक्ष सभी बराबर हैं। (२) राजनीतिक स्वाधीनता जिसका तात्पर्य यह है कि सरकारी कार्यों में सबको समान अधिकार मिलेगा ; के यही दो रूप हैं।

पूर्ण प्रजातन्त्रवाद में सभी कानून के समक्ष समान हैं तथा सरकारी कार्यों में सबको समान अधिकार है। इस प्रकार का प्रजातन्त्रवाद अभी तक किसी देश में नहीं है तथापि प्रायः सभी आधुनिक देशों की सरकारें किसी न किसी रूप में जनता द्वारा नियन्त्रित हैं फिर वह नियंत्रण कितना भी अधूरा क्यों न हो।

लोकप्रिय नियन्त्रण एवं मतदाता

किसी सरकार पर लोकप्रिय नियन्त्रण का विचार मतदाता के आकार के द्वारा नहीं, अपितु सरकार पर नियन्त्रण की प्रणाली के द्वारा किया जाता है।

मतदाता के आकार

जितनी ही अधिक जनता को मत देने का अधिकार होगा उतनी ही लोकप्रिय नियन्त्रण की स्थापना होगी। मतदाता का आकार विभिन्न बातों पर निर्भर करता है यथा उम्र, जाति, नागरिकता, निवासस्थान, सम्पत्ति, शिक्षा एवं नैतिक शिक्षा आदि। किसी भी राज्य में हर एक व्यक्ति को मतदान का अधिकार प्राप्त नहीं है। उदाहरण स्वरूप अल्प वयस्क, पागल और दोषी मताधिकार से सर्वथा वंचित हैं। क्योंकि ये उसका उचित प्रयोग नहीं कर सकते। किन्तु बहुत से ऐसे व्यक्ति भी हैं जो इसका उचित प्रयोग कर सकते हैं अधिकार से वंचित कर दिये गये हैं। सरकार को अत्यधिक लोकप्रिय बनाने के लिये मतदाताओं की संख्या बढ़ायी जा रही है। हमारी सरकार भी अब वयस्क मताधिकारानुसार चुनाव करके अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त करेगी।

मतदान के मूलाधार—*प्रजातन्त्रवाद की कठिनतम समस्या मतदान का* मूलाधार प्राप्त करना है। रूसो एवं अन्य फ्रेंच राजनीतिक विचारकों ने १८ वीं शताब्दी में बतलाया कि चूँकि सार्वभौम अधिकार जनता को ही प्राप्त है, अतः प्रत्येक नागरिक को मताधिकार प्राप्त होना चाहिये।

जॉन स्टुअर्टमिल, लेकी, मेन एवं ब्ल्यून्टस्ली के कथनानुसार मताधिकार नागरिकों को नहीं मिलना चाहिये। पर यह वह अधिकार है जिसे कौम के हितार्थ योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को ही मिलना चाहिये। ऐसा देखा जाता है कि वयस्क मताधिकार के समर्थकों ने भी कुछ नियन्त्रण आवश्यक समझा है। उदाहरण स्वरूप अलवयस्क, पागल एवं विदेशियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है। अपराधी को भी मताधिकार प्राप्त नहीं होता। कुछ ऐसे नियन्त्रण हैं जिन्हें वयस्क मताधिकार के पूर्व योग्यता का प्रमाण मिलना चाहिये। शैक्षणिक, सम्पति, करदान का प्रमाणपत्र मताधिकार की योग्यता के प्रमाण हैं। [मिल के कथनानुसार 'निरक्षर व्यक्तियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं होना चाहिये। सरकारी अपव्यय को बचाने के लिये करदान सर्वोत्तम गुण है। जो कर नहीं चुकाते उनको फजूलखर्ची हो जाने की पूरी सम्भावना रहती है]

स्त्री या पुरुषों के पूर्ण विकास के बिना मतदान की कोई कीमत नहीं है। जब स्त्री या पुरुष मत देने के योग्य हों, तभी इसका उचित प्रयोग हो सकता है। स्त्री या पुरुषों को अपनी भलाई स्वयं सोचनी चाहिये। लेकी एवं मेन का कथन है कि वयस्कमताधिकार की वृद्धि से खतरा सम्भव है। उनके अनुसार अनुभवशून्य जनता के हाथ में अधिकार चला जाता है। वे प्रजातन्त्रवाद की बुराइयों पर ही विचार करते हैं। यूरोप और अमेरिका में वयस्क मताधिकार की वृद्धि के बावजूद भी उनकी भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित नहीं हुई। पूर्ण वयस्क मताधिकार यूरोप और अमेरिका में लागू किया गया है जहां पर शैक्षणिक और साम्पत्तिक परीक्षा की भी आवश्यकता नहीं समझी जाती है। आज सभी पूर्ण वयस्क मताधिकार की ओर आकृष्ट हो रहे हैं।

यह समझने की आवश्यकता नहीं कि जनता की राजनीतिक सत्ता उसके उचित प्रयोग के साथ ही रहनी चाहिए। बात यह है कि समस्त प्रगतिशील देशों में शिक्षा आवश्यक है। ऐसा समझा जाता है कि समस्त नागरिकों को शिक्षित

बनाना राज्य का प्रथम गुण है। मिल का कथन है कि जहाँ कर्तव्य मताधिकार की योग्यता का आधार शिक्षा हो वहाँ की सरकार समस्त नागरिकों को शिक्षित बनाये, क्योंकि व्यापक शिक्षा से ही व्यापक मत प्राप्त होगा।

साम्पत्तिक परीक्षा के सम्बन्ध में करदान का दृष्टिकोण राजनीतिक अधिकार में हस्तक्षेप करता है जो सर्वथा अनुचित है। ऐसा विदित होता है कि मतदान का मूलाधार स्त्री या पुरुषों का पूर्ण विकास है यद्यपि इसमें भी कुछ नियंत्रण आवश्यक है। याद रखना चाहिए कि वयस्क मताधिकार अन्तिम लक्ष्य है, अतः स्त्री और पुरुषों को अपने अधिकार के उचित प्रयोग की ओर अग्रसर होना चाहिए। इससे केवल मताधिकार की ही वृद्धि नहीं बल्कि मानवता का विकास होगा, जिसपर प्रजातंत्रवाद की सफलता निर्भर करती है।

वयस्क मताधिकार

आज समस्त प्रजातंत्री देशों का झुकाव वयस्क मताधिकारानुसार प्रजातंत्री सरकार के निर्माण की ओर है। वयस्क मताधिकार प्रजातंत्री सरकार के निर्माण का आधार है।

गुण—वयस्क मताधिकार ही केवल एकमात्र तरीका है जिसके द्वारा राजनीतिक अधिकार की समान प्राप्ति हो सकती है। सम्पूर्ण देश के योग्य प्रतिनिधियों को चुनने का यह सर्वोत्तम तरीका है। वयस्क मताधिकारानुसार प्रतिनिधित्व निष्पक्ष होता है क्योंकि इससे विशेष प्रतिनिधित्व का अन्त होता है। दलों की ताकत बढ़ाकर वयस्क मताधिकार गम्भीर राजनीतिक जीवन की नीव डालता है जो राजनीतिक एवं आर्थिक आधार को मानकर एक हैं तथा जहां साम्प्रदायिकता का नाम भी नहीं।

विरोध—लेकी एवं मेनने इस विचार का स्पष्टरूपेण विरोध किया है। वयस्क मताधिकार को उन्होंने घातक बतलाया है। लेकी के कथनानुसार, 'क्या विश्व का शासन मूर्खों द्वारा होना है, या मेधावियों द्वारा? वयस्क मताधिकार को उदार

और प्रगतिवादी समझना विश्व की बेवकूफी है क्योंकि इसके परिणामस्वरूप सरकारें अनुभवरहित एवं अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में चली जाती हैं।

परिणाम—लाख विरोध के होते हुए भी बीसवीं शताब्दी में वयस्क मताधिकार की विजय हुई है। इसके बावजूद भी अगर मतदाता बेवकूफ या अज्ञानी हुए तो अन्यायी सरकार की सम्भावना रहती है। अतः हमें सदैव सचेत रहना चाहिए तथा जॉन स्टुअर्ट मिल के शब्दों में वयस्क मताधिकार के पूर्व व्यापक-शिक्षा की योजना बनानी चाहिए। याद रखना चाहिए कि व्यापक-शिक्षा सरकार और राज्य का प्रथम कर्तव्य है।

भारत में वयस्क मताधिकार एवं पुरुष मताधिकार—पुरुष मताधिकार का तात्पर्य यह है कि वयस्क पुरुषों को तो मताधिकार मिले पर नारी इससे वंचित रहें। पुरुष मताधिकार सीमित वस्तु है। आधुनिक मताधिकार वयस्क होना चाहिए जिसमें स्त्री-पुरुष सभी सम्मिलित हों। भारत के समस्त प्रगतिवादी व्यक्तियों ने वयस्क मताधिकार को पसन्द किया है। कारण इसके अनेक गुण हैं। किन्तु मताधिकार समिति ने परदा पद्धति के कारण इस अधिकार को अमान्य घोषित किया। इसका एक कारण यह भी बतलाया गया कि बहुसंख्यक जनता निरक्षर और मूर्ख है। उन्होंने राजनीतिक और शासन सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ बतलायीं। आज भारत की १२ प्रतिशत जनता पढ़ी लिखी है।

आम जनता पुस्तक और समाचार पत्रों को भी नहीं पढ़ सकती। बातचीत करने के लिए उन्हें मूर्ख ही समाज मिलता है जिसकी अनुभव शून्यता के कारण फायदा कुछ भी नहीं होता। अतः भारत के ग्रामीण और रैयतों को मताधिकार देना बुद्धिमानी का कार्य नहीं समझा गया। पर वयस्क मताधिकार को इस आधार पर रोकना अन्याय था। परदा का अब अन्त हो रहा है तथा शासन सम्बन्धी कठिनाइयों का भी अन्त हो रहा है। भारत की जनता निरी बेवकूफ नहीं है तथा बुद्धिमानी की कसौटी साक्षरता ही नहीं हो सकती। सिनेमा और

रेडियो के दिनों में ऐसी बात मूर्खतापूर्ण है। अगर निरक्षरता के ही आधारपर वयस्क मताधिकार रोका जा रहा है। भारत सरकार को इधर ध्यान देना चाहिए। जबतक पूर्ण निरक्षरता निवारण नहीं हो जाता तबतकके लिए रेडियो द्वारा या ध्वनि-विस्तारक-यंत्र द्वारा जनता को शिक्षित बनाना चाहिए। हर एक गाँव में ध्वनिविस्तारक यंत्र (लाउड-स्पीकर) का प्रबन्ध होना चाहिए। राजनीतिक दलोंके पूर्ण विकास के साथ समाचार पत्र, मिटिंग आदि द्वारा भी जनता के जागरण का कार्य हो सकता है।

नारी मताधिकार-विरोधियोंका कथन है कि राजनीति में भाग लेने से महिलाओं के नारीत्व की क्षति होगी तथा ऐसा करने से गृह की शान्ति खतरे में पड़ जायगी। यह भी कहा जाता है कि समाज को अशान्त गृह के कारण महान आपत्तियों का सामना करना पड़ेगा। महिलाओं का जगत पुरुषों से सर्वथा भिन्न है। पर महिला मताधिकार का विरोध सर्वथा गायब हो गया है। महिलाओं की नागरिक अयोग्यता का नतीजा यह होगा कि वे राजनीतिक अयोग्यता के कारण तकलीफ उठायेंगी। महिला होने के कारण उन्हें इस अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता।

नारी मताधिकार के पक्ष में कहते हैं कि (१) नैतिक और आध्यात्मिक योग्यता के कारण हो मताधिकार प्राप्त होना चाहिए, जातिगत प्रतिबन्ध कोई प्रतिबन्ध नहीं, (२) आत्मरक्षा के लिए महिलाओं को मताधिकार प्राप्त होना चाहिए, (३, महिला मतदात्री को राजनीति में प्रभावकारी क्षेत्र बनाना चाहिए। मिलके कथनानुसार, 'सबसे बुरी बात यह होगी कि वे अपने घरके मालिक के आज्ञानुसार ही मत देंगी। अगर ऐसा हो तो भी कोई खराब नहीं। अगर वे अपने को समझती हैं तो अच्छा होगा, अगर नहीं तो भी कोई नुकसान नहीं।

चुनाव के तरीके

चुनाव के तरीके पर भी बहुत कुछ बातें निर्भर करती हैं-मतदान प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष, मतदान गुप्तरीति से हो या आम जनता के सामने।

स्थानमें सुरक्षित बक्से में मत देना पड़ता है। उसके बाद रिटर्निङ्ग अफसर मतदान की गिनती के नतीजा की घोषणा करता है। अगर मतदान में अनावश्यक प्रभाव, गन्दे तरीके एवं अन्य एतादृश कार्य हुए हों जिसके पर्याप्त प्रमाण विरोधी उम्मेदवार द्वारा उपस्थित किये गये हों तो पुनः चुनाव हो सकता है जिसमें सभी काम नये सिरे से होते हैं।

मतदाताओं की समस्या

मतदाताओं की समस्या में दो प्रमुख हैं (१) जन कार्यों में मतदाताओं के प्रभावकारी नियंत्रण की समस्या, (२) प्रतिनिधित्व की समस्या।

(१) मतदाताओं का नियंत्रण—मतदाताओं का आकार प्रजातंत्रवाद का नकली रूप है। अगर मतदाताओं को सीमित अधिकार प्राप्त हों और वह भी अनियमित अधिकार हों तो वास्तविक सत्ता जनता और लोकप्रिय सरकार के हाथ में नहीं होगी, इस प्रकार मतदाता एक खिलौना हो जायगा। जहाँपर मतदाता सरकारी कार्यों में लगतार नियंत्रण रखता है वहाँ पर प्रजातन्त्री सरकार वास्तविक होगी। मतदाताओं का नियत्रण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष दोनों हो सकता है। अप्रत्यक्ष नियंत्रण सावधान और सतर्क जनमत द्वारा होगा जो जनसभा, समाचार पत्र, प्रदर्शनों एवं राजनीतिक सभाओं द्वारा नियंत्रण रखता है। सरकार पर अप्रत्यक्ष नियंत्रण की विफलता से असन्तुष्ट होकर कुछ प्रजातंत्री देशों की जनता ने प्रत्यक्ष रूपसे नियंत्रण के लिए हल्ला मचाया। मतदाताओं का प्रत्यक्ष नियंत्रण अक्सर (१) बारम्बार चुनाव (२) वापस बुलाना (३) जनमत गणना एवं (४) स्वतः उद्योग पर निर्भर करता है।

(१) बारम्बार चुनाव—जिस देशमें प्रायः चुनाव कार्य होता है वहाँ के व्यवस्थापिका को निरंकुश होने की संभावना नहीं रहा करती।

(२) वापस बुलाना—कुछ देशों में वापस बुलाने की प्रथा है। जिस क्षेत्र का प्रतिनिधि जनमत के विरुद्ध जाता है उसे वापस बुला लिया जाता है। इस प्रकार से

वापस बुला लेना जनता का हथियार है जिसका प्रयोग किसी भी स्वेच्छाचारी प्रतिनिधि के विरुद्ध किया जा सकता है।

(३) जनमत गणना—प्रमुख समस्या उत्पन्न हो जाने पर जनमत गणना की व्यवस्था होती है। समस्त जनता पर बहुमत प्राप्त होने पर कोई समस्या का समाधान निकाला जाता है या किसी कानून विशेष को उचित समझा जाता है।

(४) स्वतः उद्योग—मतदाताओं में से कुछ के स्वतः उद्योग पर व्यवस्थापिका को जनहित कार्य को जनता के समक्ष उपस्थित कर उसकी स्वीकृति लेनी होती है।

प्रतिनिधित्व की समस्या

मतदाताओं की समस्या में प्रतिनिधित्व की समस्या प्रमुख है— अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व और विशेष स्वार्थों का प्रतिनिधित्व।

अल्प संख्यकों का प्रतिनिधित्व

मिल ने समस्त जनता की सरकार की बहुसंख्यकों द्वारा नियंत्रित होने की कटु आलोचना की है और इसे अन्याय और अप्रजातांत्रिक बतलाया है। उसने आगे घोषणा की है कि प्रजातंत्री सरकार में औसत के अनुसार अल्पसंख्यकों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। उसने यह स्वीकार किया है कि एक प्रजातंत्रवाद के अन्दर बहुसंख्यकों को शासन और अल्पसंख्यकों को आज्ञा पालन करना चाहिए। उसने यह भी बतलाया है कि अल्पसंख्यकों को औसत के अनुसार प्रतिनिधि प्रेषण का अधिकार मिलना चाहिए। उसने औसत के अनुसार प्रतिनिधि प्रेषण को स्वीकार किया है जो अल्पसंख्यकों के संकटों को दूर करने का एक मात्र साधन है। पर फ्रांस एवं अन्य यूरोपियन देशों में प्राप्त अनुभव के आधार पर यह व्यर्थ सिद्ध हुआ है। औसत के आधार पर प्रतिनिधि प्रेषण असंभव एवं व्यर्थ बतलाया गया है। बहुसंख्यकों के अत्याचार से अल्पसंख्यकों की रक्षा में संघ शासन और स्वायत्त शासन को पर्याप्त सफलता मिली है।

अल्पसंख्यकों की रक्षा के लिये लीग आव नेशन्स के प्रस्ताव—मध्य यूरोपियन राज्यों की साम्प्रदायिक समस्या से सम्बन्धित समाधान लीग आव नेशन्स ने प्राप्त किया था। इस सम्बन्ध में कानून के समक्ष समानता, भाषा, धर्म और सभ्यता की रक्षा के अधिकार तथा शैक्षणिक, धार्मिक आदि मामलों में समान भाग प्राप्त करने की स्वाधीनता सम्मिलित हुई।

भारत की साम्प्रदायिक समस्या—भारत की साम्प्रदायिक समस्या हिन्दू-मुस्लिम समस्या थी। दूसरे सम्प्रदायके लोगोंने भी विशेष अधिकार की मांग की थी। पंजाब के अल्पसंख्यकों सिखों को भी भुलाया नहीं जा सकता था। मुसल्मान, प्रतिनिधि प्रेषण, सिन्ध के पृथक्करण, सीमा प्रान्त में सुधार, तथा सरकारी नौकरियों में उचित हिस्से के लिए लड़ते थे।

साम्प्रदायिक प्रतिनिधि प्रेषण—प्रतिनिधि प्रेषण सम्बन्धी प्रश्न को स्पष्ट करते हुए स्वीकार किया गया था कि अल्पसंख्यकों को भी उचित प्रतिनिधि प्रेषण का अधिकार होना चाहिए। पर झगड़ा चुनाव पद्धति पर था कि उनका चुनाव पृथक या संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र द्वारा होगा। भारत के समस्त सम्प्रदायोंने सुरक्षित सीटके अतिरिक्त संयुक्त निर्वाचन की मांग की पर लीग अपनी जिद पर अड़ी रही। साम्प्रदायिक प्रतिनिधि प्रेषण अराष्ट्रीय, अप्रजातांत्रिक एवं प्रतिक्रिया वादी था। इससे राष्ट्रीय भावना के प्रतिकूल साम्प्रदायिक भावना को प्रोत्साहन मिलता था। भारत की समस्या साम्प्रदायिक नहीं सामाजिक और आर्थिक है। भारत में एक जाति गरीबोंकी है जिन में हिन्दू, मुसल्मान, सिख एवं क्रिश्चियन सभी आ सकते हैं।

इस आर्थिक गरीबी को दूर करने के लिए समस्त सम्प्रदायों के लोगों को एक साथ मिल कर काम करना चाहिए। उन्हें अलग अलग कोई काम नहीं करना चाहिए क्योंकि भारतीय विधान परिषद ने पृथक निर्वाचन को अस्वीकार कर साम्प्रदा-यिकता को दूर करने का क्षेत्र तैयार कर दिया है। अब नौकरशाही की 'फूट

डालो और राज्य करो' की नीति नहीं चल सकती। इस विभाजन से आम जनता की उन्नति नहीं हो सकती है। पृथक निर्वाचन के ही कारण भारत का विभाजन हुआ। इससे राष्ट्रीयता को काफी क्षति पहुँची है अतः हमें समस्त भारत को ही अब देखना और संभालना चाहिए।

संयुक्त बनाम पृथक निर्वाचन

भारत में संयुक्त और पृथक निर्वाचन को लेकर बहुत वादविवाद हुआ है। पृथक निर्वाचन के ही कारण प्रतिक्रियावादी पाकिस्तान का जन्म हुआ। अगर भारत में संयुक्त निर्वाचन नहीं किया गया तो आज भी वह देश राष्ट्र का रूप धारण नहीं कर सकेगा। मि० ब्रेल्ड फोर्ड ने कहा था कि भारत संयुक्त निर्वाचन के द्वारा ही *अपनी सामाजिक और आर्थिक स्थिति को ठीक कर सकता है।* अतः संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में निर्णय देकर विधान परिषद ने बहुत बड़ा काम किया है।

पृथक निर्वाचन—साम्प्रदायिक प्रतिनिधि प्रेषण बुरा है पर पृथक निर्वाचन तो और भी बुरा है। अधिकांश लोगों ने स्वीकार किया है कि १९०९ के पृथक निर्वाचन विधानका अन्त होना चाहिए। साम्प्रदायिक प्रतिनिधि प्रेषण में प्रत्येक कौम अपने प्रतिनिधि के लिए मत देती है। उदाहरण स्वरूप एक मुस्लिम पृथक निर्वाचन क्षेत्र में मुस्लिम के अतिरिक्त न तो कोई खड़ा हो सकता है और न मत ही दे सकता है। पृथक निर्वाचन अपने राष्ट्र के लिए ही बुरा नहीं है बल्कि उस जाति के लिए भी बुरा है जो इसकी मांग करती है।

अल्पसंख्यक ऐसी ही चीजों की मांग करते हैं। जो अल्पसंख्यकों के लिये और और बहुसंख्यकों के विरुद्ध हैं, इस प्रकार उत्तेजना फैलाने में सहायता मिलती है। पृथक निर्वाचन में उम्मेदवार सफाई, स्वास्थ्य एवं एतादृश जनोपयोगी बातों पर विचार न कर 'हिन्दुस्तान हिन्दुओं का' तथा 'इस्लाम खतरे में है' आदि बातों पर विचार करते हैं। साम्प्रदायिक हित के रक्षार्थ उम्मेदवार सोचते हैं कि उन्हें इनको

विचारधारा की रक्षा करती है तथा दूसरे कार्यों की परवाह नहीं करती है। इस प्रकार पृथक निर्वाचन अद्भुत नुकसान पहुँचाता है। यह नुकसान न केवल राष्ट्र बल्कि उस जाति को भी है जो इसकी मांग करती है।

विशेष स्वार्थों का प्रतिनिधित्व—कभी कभी सौदागरों, विश्वविद्यालयों, जमीनदारों एवं कलाकारों को प्रतिनिधि प्रेषण का विशेष अधिकार दिया जाता है। यह व्यवस्था भारत में है। प्रजातन्त्री समाज में इसका विरोध होता है क्योंकि ये अप्रजातान्त्रिक कार्य हैं। इससे एक मतदाता को एकाधिक मतदान की सुविधा मिलती है तथा तदनुकूल फायदा होता है। जो दल या पार्टी राष्ट्रीय स्वार्थों के विपरीत काम करती है उसको इससे काफी फायदा पहुँचता है।

प्रश्न

(१) मताधिकार के मूलाधार से तुम क्या समझते हो? (कल० १९३६)

(२) क्या नागरिकता के लिये शिक्षा ही प्रमाण पत्र है या अन्य गुण भी जरूरी हैं। अगर ऐसी बात है तो वे कौन कौन हैं? (कल० १९३०)

(३) पुरुषमताधिकार पर एक संक्षिप्त नोट लिखो जिसका सम्बन्ध भारत से हो। (कल० १९३३)

(४) पृथक निर्वाचन न केवल राष्ट्र बल्कि चाहने वाली जाति के लिए भी घातक है। इसकी व्याख्या करो। (कल० १९३१)

(५) व्यापक मताधिकार को पहले व्यापक शिक्षा की आवश्यकता है।' इसकी व्याख्या करो। (कल० १९३६)

(६) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष चुनाव के गुण और दोष पर प्रकाश डालो। (कल० १९३६)

(७) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष चुनाव के भेद बतलाओ तथा इनके गुण और दोष कौन कौन से हैं। (कल० १९३९)

(८) तुम्हारे मत्यनुसार मताधिकार के लिये कौन-कौन से गुण होने चाहिये ? क्या व्यापक मताधिकार की तुम्हारी इच्छा है। (कल० १९३६)

(९) व्यवस्थापिका में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि प्रेषण के तरीकों पर प्रकाश डालो। (कल० १९३९)

(१०) भारत में वयस्क मताधिकार की समस्या पर प्रकाश डालो। (नागपुर १९३९)

(११) गुप्त मतदान से तुम क्या समझते हो। इसके पक्ष और विरुद्ध में प्रस्तावित मत उपस्थित करो। (नागपुर १९३८)

(१२) महिला मताधिकार के पक्ष और विरुद्ध में प्रमाण उपस्थित करो। (यू० पी० बोर्ड १९३०)

(१३) 'मतदान' शब्द, इसकी प्रकृति, सीमा और कार्य पर मत व्यक्त करो। क्या तुम मतदाता हो ? अगर नहीं हो तो क्यों ?

——

अध्याय १९

स्थानीय सरकार

हर प्रकार के प्रत्येक आधुनिक राज्य में सम्पूर्ण देश छोटे-छोटे भागों में बँटा हुआ है। इन लघु भागों के गृहकार्य स्थानीय जनता द्वारा व्यवस्थित होते हैं। इसे भारत में स्वायत्त शासन और पश्चिम में स्थानीय सरकार कहते हैं। इस प्रकार भारत के नगरों के लिये म्युनिसपेल्टिी एवं जिला, सबडिविजन और ग्रामों के लिये क्रमशः जिला बोर्ड, लोकल बोर्ड एवं पंचायत होते हैं। इसी प्रकार फ्रांस एवं अन्य पश्चिमी देश भी छोटे-छोटे भागों में विभाजित हैं। स्वायत्त शासन के सम्बन्ध में आम विचार यह है कि स्थानीय कार्यों की देखभाल स्थानीय जनता अच्छी तरह कर सकती है। इस प्रकार स्थानीय संस्थाओं द्वारा जनता अत्यधिक स्वाधीनता का उपयोग कर सकती है। स्वायत्त शासन के तीन कार्य हैं।

(१) गुरुतर भार से केन्द्रीय सरकार को सुविधा देना।

(२) अत्यधिक सुव्यवस्थित और अच्छा प्रबन्ध करना, क्योंकि स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये स्थानीय जनता के पास सुविधा और साधन दोनों हैं।

(३) अपनी सरकार के संचालन कार्य में प्रत्यक्ष भाग लेने के लिये जनता को योग्य बनाना, स्वायत्त शासन के द्वारा जनता को स्वाधीनता का उत्साह अधिक प्राप्त होता है। स्वायत्त शासन का एक यह भी उद्देश्य है।

इंगलैण्ड और महादेश में स्वायत्त शासन

महादेश में स्वायत्त शासन—इंगलैण्ड अमेरिका की अपेक्षा अत्यधिक उदार है, क्योंकि पहला बहुत ही अधिक जागरूक है। तथापि फ्रांस एवं जर्मनी

की अपेक्षा इंगलैण्ड और अमेरिका का स्वायत्त शासन अधिक उदार है। क्योंकि इस पर उच्चाधिकारियों का अल्पतम नियंत्रण है। इसके विपरीत फ्रांस, जर्मनी एवं इटली की स्वायत्त सरकारें केन्द्रीय सरकार के एजेन्ट हैं, जो इनपर काफी नियन्त्रण रखती हैं।

स्वायत्त शासन में हस्तक्षेप कब उचित है—बदतर प्रबन्ध या अल्पसंख्यकों के साथ अन्याय होने पर राज्य स्वायत्त सरकार के कार्यों में हस्तक्षेप करता है तथा उसके शासन कार्य को भी स्वतः सम्भाल लेता है।

स्वायत्त शासन के कार्य

स्वायत्त सरकार के प्रधान कार्य जन-सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं सफाई है। इसके अतिरिक्त यातायात, जल कल व्यवस्था एवं प्रारम्भिक शिक्षा का भी प्रबन्ध इसे करना पड़ता है। चूंकि नागरिक क्षेत्रों की आवश्यकतायें ग्रामीण क्षेत्रों की आवश्यकताओं से भिन्न हैं, अतः नागरिक स्थानीय सरकारों के कार्य ग्रामीण सरकारों के कार्य से भिन्न हैं। नागरिक क्षेत्रीय सरकारों को बिजली, कूड़ा साफ करना, कलाकौशल, म्युजियम, पुस्तकालय, पार्क एवं खेल के मैदानों की व्यवस्था करनी पड़ती है। भारत में अभी तक स्थानीय सरकारों को पुलिस का प्रबन्ध नहीं करना पड़ता है और न म्युनिसिपल व्यापार ही करना होता है। यही कारण है कि भारत में नागरिक जीवन उच्च कोटि का नहीं हो सका है।

स्वायत्त शासन के लिये प्रधान शिक्षण केन्द्र

स्थानीय संस्थाओं की कीमत--स्थानीय शासन की सर्वोत्तम उपयोगिता यह है कि इसके द्वारा जनता स्वायत्त-शासन-कला की शिक्षा प्राप्त करती है।

स्थानीय शासन एवं स्थानीय नियन्त्रण का प्रसार न केवल इसलिये आवश्यक है कि *सुदूरवर्ती केन्द्रीय सरकार की अपेक्षा स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये* यह अधिक उपयुक्त है बल्कि यह बहुत बड़ी शैक्षणिक संस्था है। 'स्थानीय सरकार'

जैसी शैक्षणिक संस्था सरकारका अन्य कोई अंग नहीं हो सकती। (लास्की) इससे स्वावलम्बन और सहकारिता का भाव पैदा होता है। इसके अतिरिक्त जनता में कर्तव्य का ज्ञान पैदा होता है जिससे जनता को स्वावलम्बन का ज्ञान होता है। यह जनता को दूसरों के लिये काम करने की शिक्षा देती है तथा दूसरों के साथ मिलकर काम करने की भी भावना जाग्रत करती है। इससे लोगों के अन्दर का स्वार्थ विनष्ट होता है। जिस चीज का असर हम लोगों पर प्रत्यक्षतः नहीं पड़ता उससे हम लोगों को यह उदासीन बनाता है। जो व्यक्ति ग्राम की उन्नति में सक्रिय भाग लेता है वह राज्य की उन्नति में भी वैसा ही कर सकता है।

स्थानीय एसेम्बलियों के नागरिक राष्ट्र की ताकत बढ़ाते हैं। प्रारम्भिक विद्यालय का स्थान विज्ञान के लिये जो है वही स्थान स्वाधीनता के लिये नगर-सभा का है। वे इसे जनता के समक्ष लाते और इसके उपयोग का तरीका बतलाते हैं। राष्ट्र स्वाधीन सरकार की पद्धति का निर्माण कर सकता है, पर नगर विधान के बिना स्वाधीनता प्राप्त नहीं की जा सकती। लघु भागों की स्वायत्त सरकारों के कारण गुणों और आदतों का विकास होता है। जो प्रजातन्त्रवादी देश के नागरिकों के लिये आवश्यक है। यह प्रजातन्त्रवाद के लिये न केवल सर्वोत्तम विद्यालय है बल्कि सर्वोत्तम विश्रम्भ स्थान भी है।

स्थानीय स्वायत्त शासन प्रजातन्त्र का सर्वोत्तम विद्यालय है और है इसकी सफलता का सर्वोत्तम विश्रम्भ स्थान। (ब्राइस)

प्रश्न

(१) स्वायत्त सरकार से तुम क्या समझते हो? स्वायत्त शासन के कर्तव्यों के विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालो।

(२) शैक्षणिक रूप पर प्रकाश डालते हुये स्वायत्त शासन के लाभ की चर्चा करो।

(३) स्वायत्त शासन की कला सम्बन्धी जनता के विशेष ज्ञान के लिये स्थानीय संस्थाओं की कीमत बतलाओ। बंगाल में उन संस्थाओं की कार्य-पद्धति पर प्रकाश डालो। (कल० १९३४)

(४) स्वायत्त शासन का प्राथमिक ज्ञान स्थानीय सरकारों द्वारा प्राप्त होता है।' इस यथार्थता पर प्रकाश डालो जिसमें बंगाल का विशेष जिक्र रहे। (कल० १९३६)

(५) स्वायत्त शासन की कला में जनता के शिक्षण के लिये स्वायत्त सरकार एक एजेन्सी है इस पर संक्षिप्त लेख लिखो। (ढाका १९४८)

अध्याय २०
राज्यका विधान

किसी देश का विधान वहाँ के लिखित या अलिखित नियमों का समूह है, जो राज्य के उद्देश्यों को प्रकट करता है, अधिकारियों का निर्देश करता है तथा राज्य-शक्ति के प्रयोग की प्रणाली निश्चित करता है।

सभी आधुनिक राज्यों का एक अपना विधान है, जिसके अनुसार वहां की सरकारें आचरण करती हैं। अतः योग्य नागरिकता के लिये राज्य के विधान का ज्ञान अत्यावश्यक है।

लिखित और अलिखित विधान

विधानों को उपरोक्त दो प्रकारों में वर्गीकरण करने की पुरानी प्रणाली है। (१) लिखित विधान में राज्य के मूलभूत नियमों और सिद्धान्तों का एक नियमित प्रलेख के रूप में संग्रह होता है। जर्मनी, फ्रांस, संयुक्त-राष्ट्र तथा दूसरे नवीन संघटित राज्यों के लिखित विधान हैं। (२) अलिखित विधान में राज्य के नियमों, उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों का कोई निश्चित प्रलेख नहीं होता। विधान का संग्रह वहाँ के आचार-व्यवहार, संप्रतिज्ञाओं, परिनियमों, न्यायविभाग के निर्णयों आदि विविध साधनों द्वारा किया जाता है। ब्रिटेन का ऐसा ही विधान है।

यद्यपि विधानों के उपरोक्त दो वर्ग हैं तथापि कोई भी विधान पूरा लिखित या पूरा अलिखित नहीं होता। लिखित विधानों के भी अलिखित अंश होते हैं जैसे कि अलिखित विधानों के लिखित अंश। बृटिश-विधान के कई मुख्य अंश लिखित हैं।

रूढ़ और परिवर्तनशील विधान

आजकल विधानों के दो दूसरे तरह के वर्ग किये जाते हैं; रूढ़ और परिवर्तनशील।

१—रूढ़ विधान—रूढ़ विधान मण्डल (लेजिस्लेटिव) द्वारा उस प्रकार परिवर्तन या संशोधन नहीं किया जा सकता जैसा कि सामान्य विधियों (लॉज) का किया जाता है। अमेरिका का विधान रूढ़ है। वहां विधान को संशोधन करने के लिये विशेष प्रक्रिया का अनुसरण करना पड़ता है जिसका उल्लेख वहां के विधान में है। इस प्रकार रूढ़ विधान को परिवर्तन करने के पूर्व कई कठिनाइयों को हल करना पड़ता है।

विशद और निश्चित होने के कारण रूढ़ विधान स्थायी, दृढ़ तथा जनता के क्षणिक भावावेशों के आक्रमणों को झेल सकने में सक्षम होता है। किन्तु श्री मेकाले के कथनानुसार ऐसे विधान में विद्रोह का सबसे बड़ा कारण यह रहता है कि जहां एक ओर राष्ट्र उन्नति पथ पर बढ़ता जाता है वहां 'विधान एक कदम हिलने का नाम नहीं लेता।' ऐसे विधानों की दृढ़ता कभी-कभी दुर्गुण हो जाती है तथा अपने अधिकार क्षेत्र की जनता के विकास में अटकाव उपस्थित करने के कारण अनाहत हो सकती है।

२—परिवर्तनशील विधान—परिवर्तनशील विधान विधान मण्डल की साधारण पद्धति से दूसरे सामान्य विधियों के समान ही संशोधित या परिवर्तित हो सकता है। ब्रिटेन का विधान बड़ा ही लचीला है। टेनिसन के मतानुसार यह पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होता गया है। विधान मण्डल इसे विवाह सम्बन्धी किसी भी कानून की तरह ही बदल सकता है। इसके लिये कोई खास प्रक्रिया अपेक्षित नहीं है। इसी कारण बृटिश विधान वहां की जनता के राजनैतिक विकास में बड़ा सहायक हुआ है। ऐसे विधानों के लाभ ये हैं:—
(क) इनमें बड़ी प्रसरणशीलता (एलस्टिसिटी) तथा ग्रहणशीलता होती है।
(ख) उपरोक्त गुणों के कारण ये हिंसक विद्रोहों को आसानी से दबा सकते हैं। किन्तु इनमें दोष यह है कि इन्हें जनता के भावावेश के कारण बदलते रहना पड़ता है तथा

मौके-बेमौके राज्य की नीति में परिवर्तन होते रहने के कारण जनता के अधिकारों के संकुचित हो जाने का भय बना रहता है।

वर्गीकरण की तीसरी रीति के अनुसार विधानों के [क] १-क्रांति जात विधान, (फ्रांस अमरीका, जर्मनी तथा रूस के विधान) २-विकसित विधान, (बृटेन तथा भारतीय विधान) [ख]१-ऐकिक विधान (यूनीटरी) (ब्रिटेन, फ्रांस, इटली, जापान के विधान) तथा २-संघान (फेडरल) विधान (संयुक्त-राष्ट्र, कनाडा तथा भारतीय विधान) ये दो विभाग एवं चार उप-विभाग हैं।

भारतीय और बृटिश विधानों का संशोधन—ब्रिटेन में साधारण और वैधानिक विधियों में अन्तर नहीं किया जाता है। राज्य की नीति स्थिर करने या सम्राट आठवें जार्ज को राजपद से हटाने तथा पुस्तक का प्रकाशनाधिकार सम्बन्धी विधि बनने की रीति एक सी ही है। वहां कोई भी विधेयक (बिल) दोनों हाउसों की स्वीकृति तथा राजा की स्वीकृति (जो एक शिष्टाचार मात्र है) मिल जाने पर विधि (लॉव) बन जाता है। और इनमें से कोई भी एक विधि से अधिक महत्व के नहीं माने जाते। इन्हें जिस तरह पास किया गया उसी तरह रद्द भी किया जा सकता है।

१५ अगस्त १९४७ के पहले तक भारतीय विधियों (लॉज) का निर्माण ब्रिटिश शासन करता था पार्लियामेंट नहीं। परन्तु विधि प्रयोग करने के पहले इसकी सूचना पार्लियामेंट को देना होती थी। ऐसी विधियां सदैव पार्लियामेंट के सतर्क निरीक्षण के अन्दर बनती थीं। इस प्रकार ब्रिटिश पार्लियामेंट भारतीय विधान के संशोधन में अपना पूर्ण नियंत्रण रखती थी।

प्रश्न

१—'विधान' शब्द से आप क्या समझते हैं ? रूढ़ और परिवर्तनशील विधानों के गुण-दोष बताइये। (कल० २६, ४५)

२—राज्य के विधान से आप क्या समझते हैं? लिखित और अलिखित विधानों एवं रूढ़ और परिवर्तनशील विधानों की तुलना कीजिये। (कल०१९२९)

३—रूढ़ और परिवर्तनशील विधानों का अन्तर बताइये तथा भारत और ब्रिटेन के विधानों के संशोधन की प्रणाली बताइये। (कल० १९३९)

४—विधान के विविध स्वरूपों का परिचय दीजिये। इनके वर्गीकरण की विधियों का उल्लेख कीजिये।

५—किसी देश के विधान से आप क्या समझते हैं? रूढ़ और परिवर्तनशील विधानों की तुलना कीजिये तथा उदाहरण दीजिये।

६—प्रधान शासित (प्रेसिडेंसियल) तथा मण्डल (केबिनेट) शासित शासनों की तुलना कीजिये तथा इनके गुण-दोषों की चर्चा कीजिये। (कलकत्ता १९४४, १९४६)

— —

अध्याय २१

नागरिक आदर्श

नागरिक आदर्शों की प्रकृति और उनका महत्व

आदर्श, व्यक्ति अथवा राष्ट्र की प्रेरणा की नैतिक सीमा है। उच्च आदर्शों के बिना व्यक्ति और राष्ट्र (नेशन) ऊँचे नहीं उठ सकते। इतिहास साक्षी है कि सभी पुराने महान् राष्ट्र महान् आदर्शों से प्रेरित होते थे। प्राचीन भारत, ग्रीस, रोम, मिश्र आदि देश उच्च आदर्शों का अनुसरण करते थे। अतः सभी आधुनिक राज्यों को अपने आदर्श स्थिर करना तथा अपने नागरिकों में उनका प्रचार करना चाहिये। हर जानपद (नागरिक) का कर्त्तव्य है कि वह अपने राष्ट्रीय आदर्शों को सीखे तथा अपनी कामनाओं और कार्यों में उनका वर्त्तन करे।

सभी आदर्श नागरिक आदर्श नहीं हैं। व्यक्ति का ऐसा भी आदर्श हो सकता है जिससे समाज का कुछ संबंध न हो। वे आदर्श, जिन्हें व्यक्ति किसी राजनीतिक समुदाय (कम्युनिटी) का सदस्य होने के नाते अनुसरण करते हैं, नागरिक आदर्श हैं। ये सभी नागरिकों के लिये समान हैं। इनमें से कुछ तो अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श हैं। कुछ दूसरे समुदायों के आदर्श से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ देशभक्ति, स्वाधीनता और समता अन्तर्राष्ट्रीय आदर्श हैं तथा हाराकिरी विशुद्ध जापानी।

सच्चा नागरिक आदर्श वह है जो सुन्दर सामाजिक जीवन प्रदान करे। मनुष्य अपनी भिन्नताओं का धनी है। विभिन्न कार्यों द्वारा हमारी सुख-सुविधा की वृद्धि हो सकती है। चित्र बनानेवाले चित्रकार, पत्थर तराशनेवाले शिल्पी, मनोहर गीतों के रचयिता कवि, उच्च आदर्शों के प्रचारक शिक्षक, सत्य और मानवतासेवी सन्त, कारखानों के श्रमिक, खेतों में हल चलानेवाले कृषकों और वे सब जो समाज

सेवा के दूसरे विविध प्रयत्नों में उद्यम और ईमानदारी से कार्य करते हैं ; नागरिक आदर्शों की प्राप्ति में योगदान करते हैं। यद्यपि इनके कार्यों में बहुत अन्तर है परन्तु इनका उद्देश्य एक है—'समाज की उन्नति'। अतएव इनमें से प्रत्येक उतना ही अच्छा नागरिक है जितना अन्य कोई।

प्रत्येक राष्ट्र को अपने किशोरों को ऐसी शिक्षा देनी होती है जिससे व अपने आदर्शों पर चलकर लक्ष्य तक पहुंच सकें। यहां हम कुछ प्राचीन और अर्वाचीन राष्ट्रों के आदर्शों पर विचार करें।

एथेंस और स्पार्टा नगर के शिक्षण का लक्ष्य सर्वोत्तम नागरिक प्रस्तुत करना था। *किन्तु आदर्शों के भेद के कारण उनका शिक्षण भिन्न भिन्न प्रकार का था। स्पार्टा* वाले वीरता को सर्वोत्तम गुण मानते थे जिससे व्यक्ति युद्ध, कठिनाइयों और दुखों का बहादुरी से सामना कर सके, जब कि एथेंस वाले सर्वोत्तम नागरिक से शारीरिक, बौद्धिक और रुचि सम्बन्धी पूर्णता की आशा रखते थे। रोम का आदर्श प्रायः एथेंस के समान ही था। प्राचीन भारतीय आदर्श वर्णाश्रम धर्मपर आश्रित था। इसमें बहुत से उत्कृष्ट गुण थे। परन्तु इसमें भयानक दुर्गुण भी थे। यह देश के कर्मकरों, शूद्रों तथा स्त्रियों को नागरिकता से वंचित रखता था। वर्णाश्रम आदर्श ने हमारे देश में नागरिक चेतना तथा स्वस्थ्य-राष्ट्रीयता के विकास में बड़ी बाधायें उपस्थित की हैं ; इसे हम अस्वीकार नहीं कर सकते।

नागरिक आदर्श और उनकी सिद्धि

निम्न लिखित आदर्श सभी आधुनिक राष्ट्रों को अपने नागरिकों में प्रचारित करना चाहिये—

१—*नागरिकों को स्वस्थ्य एवं सुयोग्य अवश्य होना चाहिये। नागरिक अधिकारों* और कर्त्तव्यों की प्राप्ति एवं पूर्ति के लिये स्वस्थ्य शरीर अत्यावश्यक है। नागरिकों को अभिग्रहणशील होना चाहिये, जिससे वे विपरीत स्थिति के अनुकूल अपने को बना सकें।

२—हर नागरिक को देशभक्त होना चाहिये। उसे देशकी रक्षा के लिये लड़ने को सदैव प्रस्तुत रहना चाहिये। किन्तु ऐसी देशभक्ति, जिसके द्वारा एक देश दूसरे देश के शोषण, उत्पीड़न तथा स्वाधीनता-हरण करके समृद्ध हो, निन्दनीय एवं अनैतिक है। यदि अपना देश अन्याय पूर्वक दूसरे देश की स्वाधीनता विदलित करता हो तो ऐसे युद्ध में योगदान न करना ही सच्ची राष्ट्रीयता है। विश्व-हित को राष्ट्रीय स्वार्थ से ऊँचा स्थान अवश्य मिलना चाहिये।

३—नागरिकों को सामाजिक (सोशियल) होना आवश्यक है। जन-सेवा के लिये उन्हें शासन कार्य में योगदान करना चाहिये, पंचायतों में भाग लेना चाहिये, ईमानदार गवाह बनना चाहिये और सार्वजनिक संस्थाओं, सभाओं और समितियों में प्रतिनिधित्व करने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। अधिशासी (एग्जीक्यूटिव) के कार्यों के प्रति सतर्कता रखना, सामाजिक समस्याओंपर बहस करना और जनता की असुविधाओं के विरुद्ध आवाज उठाना भी सामाजिकता के अंग हैं। सर्वसाधारण के हितों की प्राप्ति का प्रयत्न ही सामाजिकता का लक्ष्य है।

४—नागरिक को अपने देश के साहित्य, कला, संगीत और विज्ञान द्वारा अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना का सम्मान करने की योग्यता होनी चाहिये। इन क्षेत्रों में उसका अपना प्रयत्न राष्ट्रीय-संस्कृति के अनुकूल होना चाहिये। उस राष्ट्रीय संस्कृति के सभी सुन्दर अंगों का सम्यक् विकास करना चाहिये।

५—बिना सौन्दर्य बोध के कोई व्यक्ति सुयोग्य नागरिक नहीं कहा सकता। व्यक्तिगत घर, वस्त्र, आभूषणादि की सुन्दरता रखने से गाँवों तथा नगरों की, गांव तथा नगरों की सौन्दर्य-वृद्धि से देशकी तथा देश की सौन्दर्य-वृद्धि द्वारा योग्य नागरिक विश्व को सुखद बनाने के प्रयत्न में हाथ बंटा सकता है।

६—समुदाय का अन्तिम लक्ष्य उन्नति होना चाहिये।। अंधविश्वास तथा विवेकहीन पक्षपात को हटाना चाहिये। आधुनिकतम दृष्टिकोण को पोषण देना चाहिये। सामाजिक रीतियों तथा संस्थाओं में नवयुग के अनुकूल सुधार करना

चाहिये। उद्योग और कृषि के उत्थान में विज्ञान का प्रयोग करना चाहिये। समुदाय के हितार्थ खोजों तथा आविष्कारों को प्रोत्साहित करना नागरिक आदर्श का प्रमुख अंग है।

नागरिक आदर्शों की प्राप्ति की शर्तें—नागरिक आदर्शों की प्राप्ति के लिये निम्नांकित आवश्यक शर्तें हैं :—

(१) प्रजातंत्र—प्रजातंत्र के बिना नागरिक-चेतनता का विकास असंभव है। उपरोक्त स्थिति में नागरिकता की सुविधायें थोड़े से व्यक्तियों को प्राप्त होती हैं। सच्चे प्रजातंत्र का अर्थ केवल प्रौढ़ मताधिकार नहीं है किन्तु औद्योगिक आर्थिक और सामाजिक समानाधिकार भी है। उन्नति की समान सुविधा मिले बिना जनता राज्य के प्रति विश्वास और श्रद्धा नहीं रख सकती।

(२) अनिवार्य नागरिक-शिक्षा—व्यापक और अनिवार्य शिक्षा नागरिकता की प्रथम आवश्यकता है। ग्रीसवालों ने इस तथ्य को दो सहस्र वर्ष पहले पहचाना था। नागरिक आदर्शों की प्राप्ति के लिये नागरिक शिक्षा एक आवश्यक शर्त है।

(३) नागरिक हित और सतर्कता—नागरिकों को शासन के कार्यों पर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये। इसके बिना शासन का उछृङ्खल और नागरिक आदर्शों का विनाश हो जाना निश्चित है।

(४) प्रगतिशीलता—प्रगतिशील दृष्टिकोण के अभाव में नागरिक आदर्शों का क्रमिक ह्रास निश्चित है। भारत में प्राचीन गौरव का बड़ा बोलबाला है। फलस्वरूप यहाँ प्रगतिशील दृष्टिकोण की बड़ी कमी है। नागरिकों को उन्नति के लिये *सर्वोत्तम प्रयत्न करना चाहिये। उनका दृष्टिकोण वर्तमान से भविष्य की ओर* तथा राष्ट्रहित से विश्वहित की ओर केन्द्रित होना चाहिये।

प्रश्न—

१—नागरिक आदर्श क्या-क्या हैं?

२—वे नागरिक आदर्श, जिन्हें किसी आधुनिक राज्य के नागरिकों को ध्यान में रखना चाहिये, क्या हैं। उनकी सिद्धि की शर्तें क्या-क्या हैं?

अध्याय २२

राष्ट्रीयता

परिभाषा—गुलाम देशों में राष्ट्रीयता का अर्थ होता है स्वाधीनता प्राप्ति तथा राष्ट्र निर्माण का सतत् प्रयत्न, किन्तु स्वाधीन देशों में इसका अर्थ राष्ट्र की गौरव तथा शक्ति वृद्धि की इच्छा रखना और इसके लिये संघर्ष करना है।

वह राष्ट्रीय मनोवृत्ति जो स्वाधीनता प्राप्ति के लिये होनेवाले सक्रिय प्रयत्नों द्वारा अभिव्यक्त होती है, राष्ट्रीयता कहलाती है।

१९१९ की वर्साई की सन्धि योरोप के कई राष्ट्रों की कामनाओं को पूर्ण करने में असफल रही। उनकी कामनायें थीं; 'अपना राष्ट्र, अपना राज्य', 'अपने राष्ट्र के लिये आत्मनिर्णय का अधिकार'। फलस्वरूप पुनः युद्ध की तैयारी हुई और राष्ट्रीयता की ज्वाला में विश्व को फिर एक बार जलना पड़ा।

राष्ट्रीयता और अन्ताराष्ट्रीयता

जिस प्रकार व्यक्तिगत स्वाधीनता के बिना व्यक्ति की उन्नति नहीं हो सकती उसी प्रकार राष्ट्रीय स्वाधीनता के बिना राष्ट्र समुन्नत नहीं हो सकता।

मानवता के विकास और सभ्यता की अभिवृद्धि के लिये सभी राष्ट्रों को राजनीतिक स्वाधीनता एवं जातीय विशेषताओं, पैतृक गुणों, तथा संस्कृतियों के संरक्षण की स्वाधीनता आवश्यक है। कोरिया और भारत की स्वाधीनता इनके अपने सुखों के साथ-साथ मानव-सुख की वृद्धि में सहायक होगी। हॉब्सन के मतानुसार राष्ट्रीयता अन्ताराष्ट्रीयता तक पहुँचने की उत्तम सड़क है।

राष्ट्रीयता के दुर्गुण—राष्ट्रीय स्वाधीनता को स्वीकार और समर्थन करते हुए भी हम राष्ट्रीयता के दुर्गुणों को अस्वीकार नहीं कर सकते। दूषित राष्ट्रीयता

अत्यन्त संकुचित, अत्यन्त स्वार्थी और अत्यन्त हिंसक हो सकती है। इसके अन्दर अपने राष्ट्र का प्यार दूसरे राष्ट्रों के प्रति घृणा का रूप धारण कर लेता है। राष्ट्रीय गौरव और हित की चिंता दुर्बल राष्ट्रों के शोषण एवं गुलामी का कारण बन जाती है। ऐसी राष्ट्रीयता का आदर्शवाक्य होता है "मेरा देश, मेरा राष्ट्र, मेरी जाति प्रथम, मानो या न मानो।" पर वास्तव में यह नीति गलत है, क्योंकि इसमें दूसरे के हित को कोई स्थान नहीं है।

पिछले दो महायुद्धों में करोड़ों प्राण एवं अनन्त सम्पत्ति का विनाश दूषित राष्ट्रीयता का परिणाम है। उन समरों के घाव अभी भरने भी नहीं पाये हैं कि तृतीय विश्वयुद्ध की तैयारी शुरु हो गई है। यदि विश्व को युद्ध की विभीषिका से मुक्त होना है तो ऐसी हिंसक एवं आक्रामक राष्ट्रीयता का अन्त आवश्यक है। एतदर्थ स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और सद्भावना पहली जरूरत है। बिना उसके सभ्यता का मूलोच्छेद होकर ही रहेगा।

अन्ताराष्ट्रीयता—आज दुनियां के पेषित और शोषित लोगों के प्रति सद्भावना और सहानुभूति बढ़ रही है। मनुष्यता की सच्ची सेवा के लिये सभी राष्ट्रों में एक साथ मिलकर काम करने की प्रवृत्ति जग रही है। अन्ताराष्ट्रीय हित को राष्ट्रीय हित से बढ़कर मानने की प्रवृत्ति अन्ताराष्ट्रीयता कही जाती है।

अन्ताराष्ट्रीयता का आदर्श—किसी वर्ग या समुदाय के हित से मानवीय हित को प्रमुखता प्रदान करने के कारण अन्ताराष्ट्रीयता राष्ट्रीयता से अवश्य ही ऊँची है। वैज्ञानिक आवागमन की सुविधाओं ने विश्व को छोटा और राष्ट्रों की दूरी कम कर दी है। एक देश दूसरे देश के साथ इस प्रकार जुड़ गये हैं कि उनमें पारिवारिकता या पड़ोसीपन का भाव सा हो गया है। उनके आर्थिक तथा दूसरे स्वार्थ भी इस प्रकार सम्बद्ध हैं कि उनकी रक्षा के लिये सम्मिलित प्रयत्न अपेक्षित है। यदि युद्ध-जर्जर जर्मनी भारतीय जूट नहीं खरीद सकता है तो भारतीय किसानों और जूट उद्योगपतियों में गरीबी आती है। उनकी गरीबी के कारण

ब्रिटिश वस्त्र-व्यवसाय में धक्का लगता है जिसके कारण वहाँ के मजदूरों की दशा बिगड़ जाती है। अतएव पारस्परिक सहयोग द्वारा युद्ध को रोकना, दूषित राष्ट्रीयता को दबाना तथा अन्तर्राष्ट्रीयता को बढ़ाना आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीयता थोड़े से विचारशील व्यक्तियों का आदर्श है, स्वप्न है। परन्तु आज का युग राष्ट्रीयता का है। सच्ची राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता की विरोधिनी नहीं होती, वह तो उस ओर ही बढ़ाती है। जब विश्व के सभी गुलाम देश स्वतंत्र हो जायँगे तथा सबको उन्नति की समान सुविधा मिलेगी तभी विश्व-बन्धुत्व के आदर्श का कुछ अर्थ होगा।

अन्तर्राष्ट्रीयता और राष्ट्र-संघ—अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना से ही राष्ट्र-संघ (लीग आँव नेशन्स) की स्थापना हुई थी जिसका उद्देश्य विश्व भरमें भ्रातृत्व और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग स्थापन करना था। पर उक्त संस्था निर्बल राष्ट्रों की रक्षा करने और महान् राष्ट्रों के लोभ को रोकने में असफल रही। जिससे अन्तर्राष्ट्रीयता के विचारों को बड़ी हानि हुई।

लीग का विधान—अस्तमित लीग के तीन प्रमुख विभाग थे, जिनमें परिषद् (कौंसिल) प्रधान अधिशासी (एक्जिक्यूटिव) थी। एक त्रिविध अंगों से युक्त सभा (एसेम्बली) थी और एक स्थायी मंत्री-भवन जेनेवा में था।

किन्तु सर्वोत्तम कार्य जो लीग ने किया वह था अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की स्थापना। यह लीग की एक उपसमिति था। इस उपसमिति का उद्देश्य था विश्व के श्रमिकों की अवस्था में सुधार करना, इसके लिये संबन्धित राष्ट्रों के शासन से प्रशासी और वैधानिक विषयों में परामर्श करना तथा विश्व के श्रमिकों का निम्नतम जीवन-स्तर के उत्थान के लिये अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न करना। राष्ट्र संघ के तत्त्वावधान में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संघ का वार्षिक अधिवेशन होता था जिसमें लीग परिषद् तथा विभिन्न शासनों के श्रमिक-प्रतिनिधि, उद्योगपतियों के प्रतिनिधि तथा

संघ के स्थायी कार्यकर्त्ता भाग लेते थे। जेनेवा स्थित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के कार्यालय को अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक-कार्यालय कहा जाता है।

विश्व की नवीन व्यवस्था:—यह सब कोई अनुभव करते हैं कि युद्ध को बन्द करने के लिये एक नई व्यवस्था की आवश्यकता है। हिटलर ने अपने ढग की व्यवस्था की बात कही थी। रूजवेल्ट और चर्चिल ने एटलांटिक शासन पत्र (एटलांटिक चार्टर) की घोषणा की थी, जिसमें एक नई विश्व-व्यवस्था-संबन्धी उनका दृष्टिकोण था परन्तु एक आदर्श से अधिक इसका कुछ महत्त्व नहीं है।

एटलांटिक चार्टर की चार स्वाधीनतायें:—चार स्वाधीनताओं के सम्बन्ध में रूजवेल्ट का एक प्रसिद्ध भाषण हुआ था जिसमें उन्होंने विश्व के सभी व्यक्तियों के लिये (क) अभिव्यक्ति की स्वाधीनता, (ख) धर्म की स्वाधीनता, (ग) जरूरत से मुक्ति तथा (घ) भय से मुक्ति का सिद्धान्त स्वीकार किया था। चर्चिल और रूजवेल्ट ने उन राष्ट्रों के नागरिकों को जो युद्ध में उनके साथ थे, अथवा युद्धोत्तर व्यवस्था में उनके साथ रहते, उपरोक्त स्वाधीनतायें दिलाने योग्य व्यवस्था की रूपरेखा प्रस्तुत की थी किन्तु इसमें अफ्रिका तथा एशिया के लोगों के लिये (जो गोरी जातियों की प्रजा हैं।) एक भी शब्द नहीं था। पर्ल बक ने ठीक ही कहा था कि यह मानवीय स्वाधीनता का युद्ध नहीं, केवल योरोपीय सभ्यता की रक्षा का युद्ध है। केवल योरोप ही मानवता का देश नहीं है, किन्तु विश्व में और भी देश हैं जहां की जनता को स्वाधीनता दिलाना अभी बाकी है। बिना उनकी स्वाधीनता के विश्व की नई व्यवस्था सफल नहीं हो सकती।

डम्बरटन ओक्स प्रस्ताव (अक्टूबर ७, १६४४)—डम्बरटन ओक्स नामक स्थान में संयुक्त राज्य अमरीका, बृटेन, रूस तथा चीन के प्रतिनिधियों की बैठक हुई जिसमें वे विश्व की शान्ति तथा उन्नति के लिये संयुक्त-राष्ट्र-संघ की स्थापना के प्रस्ताव पर एकमत हुए। प्रस्तावित संयुक्त राष्ट्र के निम्न लिखित उद्देश्य माने गये :—

(१) अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा कायम रखना और इनके बाधक कारणों को रोकने की व्यवस्था करना तथा अन्तार्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्ण ढङ्ग से निपटाना।

(२) विश्व-बन्धुत्व का प्रचार करना, राष्ट्र के पारस्परिक सहयोग को बढ़ावा देना तथा विश्व-शान्ति को दृढ़ करना।

(३) विश्व की आर्थिक, सामाजिक तथा मानवीय समस्याओं के समाधान के लिये अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना।

(४) पारस्परिक भलाई और उन्नति के कार्यों में सहयोग प्राप्त करने के लिये विश्व के राष्ट्रों को एक केन्द्रस्थल प्रदान करना।

संयुक्त राष्ट्र संघ का संघटन

संयुक्त राष्ट्र संघ के कई प्रमुख अंग हैं—

(क) **साधारण सभा** में संघके ५२ राष्ट्रों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं तथा पूर्वोक्त उद्देश्यों की सिद्धि के लिये विचार करते हैं। यह एक खुली संस्था है इसके हर सदस्यों को एक मत देने का अधिकार है।

(ख) **सुरक्षा परिषद्** का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों को शान्तिपूर्वक निपटाने का प्रयत्न करना है। यदि वह ऐसा करने में असफल रहो तो इसे विरोधी राष्ट्र के विरुद्ध बल-प्रयोग का अधिकार है। इस परिषद् के पांच सदस्य, ब्रिटेन, चीन, फ्रांस, रूस और संयुक्त-राज्य-अमरीका हैं। प्रत्येक सदस्य को परिषद् के निर्णय को व्यर्थ कर देने का विशेषाधिकार प्राप्त है।

(ग) **अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय**—इस न्यायालय में सभा द्वारा निर्वाचित विभिन्न राष्ट्रों के १५ न्यायाधीश रहते हैं। इसमें संघबद्ध राष्ट्रों के आपसी झगड़ों पर विचार किया जाता है।

(घ) **आर्थिक और सामाजिक परिषद्**—इस परिषद् के १८ सदस्य-राष्ट्रों के प्रतिनिधि साधारण सभा द्वारा निर्वाचित होते हैं। इसका कार्य-क्षेत्र आर्थिक, सामाजिक तथा दार्शनिक है।

(छ) **सैन्याधिकारी समिति**—यह अन्तर्राष्ट्रीय रक्षी दलों (पुलिस फोर्स) के नायकोंकी समिति [कमिटी] है।

(च) **सचिवालय** (सक्रेटेरियट) उपरोक्त अंगों के सिवा सयुक्त राष्ट्र संघ का एक विस्तृत सचिवालय है जिसमें विभिन्न विभागों के सचिवों (सेक्रेटरीज) और दूसरे कर्मियों के कार्यालय हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायक संस्थायें

सं० रा० सं० के कई सहायक अंग हैं। आर्थिक और सामाजिक परिषद् का एक आर्थिक-आयोग (एकनामिक-कमीशन) और एक सामाजिक-आयोग हैं। इनके सिवा यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ, संयुक्त-राष्ट्र खाद्य और कृषि सघ, अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संघ तथा दूसरी सांस्कृतिक, सामाजिक तथा मानवीय संस्थाओं का संचालन करती है। जिनमें संयुक्त-राष्ट्र सहाय्य एवं पुनर्वास विभाग, सयुक्त-राष्ट्र शिक्षा, समाज और संस्कृति संघ, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक-प्रणोवि (मोनेटरी फंड), अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा विकास अधिकोष (बैंक) तथा कई और व्यापारिक युद्धोत्तर पुनर्निर्माण संस्थायें हैं।

एटलांटिक शासन-पत्र (चार्टर) द्वारा कल्पित सं० रा० सं० का उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र सघ सामूहिक प्रयत्नों द्वारा विश्वशान्ति तथा सुरक्षा को स्थिर रखने तथा विश्व की उन्नति के लिये कार्य करनेवाली संस्थाओं को सहायता देने के लिये है। इसका काम अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों की जाँच करना तथा शान्ति-पूर्वक सममौता कराना भी है। शान्ति स्थापन में असफल होने पर आर्थिक तथा राज-नीतिक दबाव डालना तथा लाचारी की स्थिति में सैन्य प्रयोग करना भी इसके अधिकार में है।

सं० रा० सं० को सदस्यता—इसकी सदस्यता सभी शान्तिकामी राज्यों के लिये खुली है। जर्मनी और जापान के विरुद्ध युद्ध घोषित करने वाले राज्य इसके प्रारम्भिक सदस्य थे। संघ किसी सदस्य को शासन-पत्र (चार्टर) की अवहेला के कारण निकाल बाहर कर सकता है।

राष्ट्र संघ के शान्ति-सम्मेलनों के परिणाम ही इसकी सफलतायें बता सकेंगे। यदि यह लीग आव नेशन्स की तरह प्रबल-राष्ट्रों द्वारा नियंत्रित संघटन मात्र रहा तो इससे युद्ध-जर्जर, शान्ति-पिपासित विश्व का कुछ भी उपकार नहीं हो सकेगा; यह निश्चित है।

प्रश्न

१—राष्ट्रीयता की परिभाषा लिखिये। राष्ट्रीयता के सिद्धान्तगत विचार क्या हैं?

२—राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता तक पहुँचने की उत्तम सड़क है' की विवेचना कीजिये। (नाग० १९३७)

३—राष्ट्रसंघ के विधान और कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिये। (कल०१९३६)

४—राष्ट्रसंघ के क्या-क्या उद्देश्य थे? (कल० १९४४)

५—क्या राष्ट्रसंघ को अपने उद्देश्यों की सिद्धि में सफलता मिली? (कलकत्ता १९३९,१९४४)

६—'एक राष्ट्र का एक राज्य' तथा 'आधुनिक राज्य राष्ट्रीय राज्य हैं' की विवेचना कीजिये। राष्ट्रीयता के विकास तथा राष्ट्रीय-राज्य के विचारों ने राज्यों के प्रमुख सिद्धान्तों में मौलिक परिवर्तन उपस्थित किया है' समझाइये। (कल० १९४०)

———

भारतीय शासन पद्धति

विषयानुक्रमणिका

भूमिका

भारत आज सम्पूर्ण सत्ताधारी देश है। दीर्घकालीन पराधीनता के कारण आज भारत को विभिन्न राष्ट्रों और जातियों के साथ नये रूप से संपर्क-स्थापना करनी पड़ रही है। परन्तु भारत के इतिहास में अत्यन्त प्राचीन काल से अनेक विदेशी राष्ट्रों के साथ घनिष्ट संपर्क का उल्लेख है। भारतीय संस्कृति और सभ्यता अफगानिस्तान, ईरान, अरब, मिश्र, फिलस्तीन, यूनान, ब्रह्मदेश, मलय जापान, सुमात्रा, श्याम, हिन्दचीन, चीन आदि देशों में फैली थी। इन सभी देशों के साथ भारत ने अनेक शताब्दियों तक मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध की रक्षा की थी।

भारत और ईरान

इतिहास के प्रारंभिक काल में भारत और ईरान के निवासियों में एकसा ही आर्य-रक्त प्रवाहित था। इसके बाद भी इनमें घना सांस्कृतिक सम्बन्ध था। वैदिक-धर्म एवं जोरोष्ट्रियनवाद में बड़ी समता है। वैदिक संस्कृत तथा 'अवस्ता' की पहलवी भाषा मिलती-जुलती-सी है। भारत में पठान और मुगल शासन कालमें फारसी भारत की राजभाषा रही। इस कारण ईरानी और भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध और दृढ़ गया। इन दोनों देशों की नाम-मुद्राओं की समता इनके निकट सम्पर्क की पुष्टि करती है।

जब ईरान (पारस) में मुस्लिम-धर्म का प्रचार हुआ तो हजारों 'पारसीक भारत चले आये और यहीं बस गये। भारत की प्रसिद्ध व्यापारी 'पारसी' जाति उन्हीं की सन्तान हैं।

पारस की खाड़ी के जल मार्ग से तथा स्थल मार्ग के द्वारा इन देशों में उच्चकोटि का व्यापार चलता था। यह सम्बन्ध तब तक चलता रहा जब तक अंग्रेजी शासन ने भारत से दूसरे देशों का सम्बन्ध छिन्न-भिन्न न कर दिया।

भारत और यूनान

एक और भौगोलिक-स्थिति का अन्तर रहने पर भी सामाजिकता और सौंदर्यबोध की समुन्नति के लिये हम यूनानियों के सांस्कृतिक सम्बन्ध में आये। यूनान का प्रसिद्ध दार्शनिक पैथागोरस भारतीय दर्शन से बहुत प्रभावित था। इस्वी सन् के प्रारंभिक दिनों में एपोलोनियस भारत के तक्षशिला विश्वविद्यालय में आया था। आश्चर्य की बात है भारत की मूर्तिपूजा यूनान की देन है। वैदिक तथा बौद्ध-धर्म मूर्ति-पूजा के विरोधी रहे हैं।

यूनानी धर्म, दर्शन तथा गणित पर भारतीयता की अमिट छाप है।

भारत और यूनान के लोगों में वैवाहिक सम्बन्ध भी होते थे। भारत के प्रसिद्ध पत्तन (बन्दरगाह) भरौंच में बहुतेरी यवन सुन्दरियाँ आया करती थीं। इस प्रकार हमारा सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ता जाता था।

भारत और चीन

भारत और चीन का व्यापारिक सम्पर्क बौद्ध-यात्रियों, विद्यार्थियों और भिक्षुओं के कारण और भी बढ़ता गया। इनके गमनागमन से प्रायः एक सहस्र वर्षों तक हमारा सांस्कृतिक और धार्मिक सम्बन्ध अत्यन्त दृढ़ बना रहा। ईसा की छठी सदी में चीन के केवल एक प्रांत में तीन सहस्र से अधिक बौद्ध भिक्षु तथा दस सहस्र भारतीय परिवार बसे। प० नेहरू का कहना है कि चीनी यात्री हुवेनसांग की भारत-यात्रा दोनों देशों में राजनीतिक मार्ग की स्थापनार्थ हुई थी। पन्द्रहवीं सदी में चीन का राजदूत स्वतंत्र बंगाल की राजसभा में आया था।

स्थल और समुद्री जलमार्ग से चीन और भारत का व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ रहा था। इन दोनों देशों पर विदेशी प्रभाव और प्रभुत्व स्थापित होने तक हमारा घना सम्बन्ध बना रहा।

भारत और अरब

वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों के आदान-प्रदान के क्षेत्र में हमारा अरब वालों के साथ घनिष्ठ संपर्क था। अरब देश के अनेकों छात्र भारत आये थे। व यहां से ज्योतिष, गणित और वैद्यक सीखकर बगदाद गये। बगदाद उस समय बहुत बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र था वहां के गणित, ज्योतिष और हकीमी पर भारतीयता की अमिट छाप है। विदेशी राज्यों के प्रभुत्व हो जाने पर भारत और दूसरे देशों का सम्बन्ध टूट गया।

भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया

ईसा की पहली सदी में दक्षिण-पूर्व में भारत की उपनिवेश-स्थापना शुरू हुई। धीरे-धीरे सिंहल, बर्मा, मलाया, जापान, सुमात्रा, बोर्नियो, स्याम, कम्बोडिया और चीन पर भारतीय-प्रभुत्व हो गया। इन सभी साहसिक व्यापारिक कार्यों के पीछे राज्य की शक्ति थी। इन देशों के साथ हमारा समृद्ध सामुद्रिक व्यापार होता था। देश की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने के लिये नये-नये बाजारों के लिये ही उपनिवेशों की स्थापना की गई थी। भारतीय आधिपत्य और वाणिज्य वस्तुओं के साथ यहां के धर्म और कला का प्रसार भी इन देशों में खूब हुआ, जिसका चिन्ह अभी भी इन देशों में पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है। इन देशों में अभी भी संस्कृत नाम रखे जाते हैं। (सुकर्ण के बदले सुकर्णो, इन्डोनेशिया, विपुल संग्राम पिबुल संग्राम, थाइलैंड)।

शैलेन्द्र और माजापहित साम्राज्यों के संघर्ष के कारण मलय और सुमात्रा तथा मलक्का भिड़ गये। इनकी आपसी लड़ाई ने अरबों को तथा पोर्तुगीजों को शक्ति प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया।

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में भारत के ऐश्वर्य से आकर्षित होकर पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, डच और अंग्रेज आदि जातियां भारत में व्यापार करने आयीं। देश

भारत और अरब

वैज्ञानिक और दार्शनिक विचारों के आदान-प्रदान के क्षेत्र में हमारा अरब वालों के साथ घनिष्ठ संपर्क था। अरब देश के अनेकों छात्र भारत आये थे। वे यहाँ से ज्योतिष, गणित और वैद्यक सीखकर बगदाद गये। बगदाद उस समय बहुत बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र था वहाँ के गणित, ज्योतिष और हकीमी पर भारतीयता की अमिट छाप है। विदेशी राज्यों के प्रमुख हो जाने पर भारत और दूसरे देशों का सम्बन्ध टूट गया।

भारत और दक्षिण-पूर्वी एशिया

ईसा की पहली सदी में दक्षिण-पूर्व में भारत की उपनिवेश-स्थापना शुरू हुई। धीरे-धीरे सिंहल, बर्मा, मलाया, जावान, सुमात्रा, बोर्नियो, स्याम, कम्बोडिया और चीन पर भारतीय-प्रभुत्व हो गया। इन सभी साहसिक व्यापारिक कार्यों के पीछे राज्य की शक्ति थी। इन देशों के साथ हमारा समृद्ध सामुद्रिक व्यापार होता था। देश की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने के लिये नये-नये बाजारों के लिये ही उपनिवेशों की स्थापना की गई थी। भारतीय आधिपत्य और वाणिज्य वस्तुओं के साथ यहाँ के धर्म और कला का प्रसार भी इन देशों में खूब हुआ, जिसका चिह्न अभी भी इन देशों में पर्याप्त रूप से प्राप्त होता है। इन देशों में अभी भी संस्कृत नाम रखे जाते हैं। (सुवर्ण के बदले सुकर्णो, इन्डोनेशिया, विपुल संग्राम पिबुल संग्राम, थाइलैंड)।

शैलेन्द्र और माजापहित साम्राज्यों के संघर्ष के कारण मलय और सुमात्रा तथा मलक्का भिड़ गये। इनकी आपसी लड़ाई ने अरबों को तथा पोर्तुगीजों को शक्ति प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया।

ईसा की सोलहवीं शताब्दी में भारत के ऐश्वर्य से आकर्षित होकर पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, डच और अंग्रेज आदि जातियाँ भारत में व्यापार करने आयीं। देश

की तत्कालीन विश्रृङ्खल स्थिति से लाभ उठा कर ये सभी योरोपीय देश यहाँ राजनीतिक उत्कर्ष के लिये प्रतिस्पर्द्धा करने लगे। अन्त में अंग्रेज व्यापारियों ने अपने सभी प्रतिद्वन्दियों को परास्त कर यहाँ अपना शासन स्थापित किया।

इसके पहले तक इटली के वेनिस और जनेवा के हाथ में भारतीय व्यापार की कुञ्जी थी। उनने पश्चिमीय और उत्तरी योरोपके देशों को भारत से सीधा व्यापार की सुविधा प्राप्त नहीं थी। क्योंकि पूर्व के स्थलमार्गों पर उनका अधिकार नहीं था। भारत का समुद्र-मार्ग ढूढ़ने का यही प्रमुख कारण था।

भारत और पोर्तुगीज

केब्राल नामक व्यापारी के नेतृत्वमें पोर्तुगीज लोगों ने हिन्दू राजा जामोरिन की राजधानी कालीकट में एक कारखाना खोला। तीन वर्ष बाद वहाँ उन्होंने कप्तान अलबुकर्क के अधीन एक किला बनाया। १५०६ ई० में अलबुकर्क ने गोआ जीत लिया और १५१० में अपने आश्रय-दाता हिन्दू-राजा के राजमहल को जला दिया तथा उसकी राजधानी कालीकट दखल कर लिया। भारतीय राजा के पास बन्दूकें तथा दूसरे आग्नेयास्त्र नहीं थे यही कारण था कि वे पोर्तुगीजों को नहीं रोक सके। इनका साम्राज्य जापान तक के देशों में फैल गया। जब पोर्तुगीज अकूत-धन लेकर अपने देश लौटे तब इनके ऐश्वर्य को देखकर दूसरे योरोपीय राष्ट्र जल उठे तथा उन्होंने पूर्व से व्यापार करने की ठानी।

भारत में डचों का आगमन

स्पेन की गुलामी को तोड़कर सोलहवीं सदी में डच लोग स्वाधीन हुए। तब उन्होंने पूर्व के साथ व्यापार आरंभ किया। भारत-स्थित चिनसुरा उनका प्रधान केन्द्र था। आगरा, पटना, अहमदाबाद तथा सूरत में भी इनकी कोठियाँ थीं।

भारत में इनका बड़ा समृद्ध व्यापार होता था। किन्तु कर्नेल क्लाइव के समय में अंग्रेजों को देखादेखी जब इन्होंने भारतीय राजनीति में हाथ डालना चाहा

तथा मीर-ज़ाफर की सहायता के लिये एवं अंग्रेजों को भगाने के लिये सेना भेजी तो कर्नल फोर्ड की सेना ने डच बेड़ेपर आक्रमण कर उन्हें भारत से उखाड़ दिया।

१८०५ ईस्वी में अंग्रेजों ने सुमात्रा डचों को दे दिया और उसके बदले चिमुरा और मलक्का इन्हें प्राप्त हुआ।

डच और भारत का पुराना सम्बन्ध आज एक विस्मृत घटना मात्र है। भारत में इनके अस्तित्व का निशान भी नहीं रहा।

फ्रांस और भारत

ईसा के सत्रहवीं सदी में योरोप का महान् राष्ट्र फ्रांस समुद्री मार्ग द्वारा भारत के व्यापार-क्षेत्र में उतरा। एम० कोलबर्ट के प्रयत्न से फ्रेंच-ईष्ट-इंडिया कंपनी की स्थापना १६६४ ई० में हुई। १६६८ ई० में इन्होंने सूरत में अपना कारखाना स्थापित किया। मछलीपट्टम (१६६९) और पाण्डुचेरी (१६७४) में भी कारखाने खुले। शीघ्र ही फ्रेंच कंपनी भारतीय राजनीतिक स्थिति से लाभ उठा कर एक प्रधान शक्ति बन गई, परन्तु इनकी प्रतिस्पर्धी अंग्रेजी ईष्ट-इण्डिया कंपनी ने इन्हें पराजित किया तथा एलाशापेल सन्धि के अनुसार फ्रेंच गवर्नर डुप्ले को मद्रास और वहां की किले-बन्दी अंग्रेजों को समर्पित करनी पड़ी। डुप्ले ने फिर शक्ति प्राप्त करने की चेष्टा तो की, परन्तु फ्रेंच शासन ने उसकी नीति से असहमति प्रकट की और उसे वापस बुला लिया। स्वदेश लौटने के बाद ही इस भग्न-हृदय राजनीतिज्ञ की मृत्यु हो गई।

१७ जून सन् १९४९ ई० को चन्दननगर ने नागरिक मतदान के द्वारा भारत शासन में सम्मिलित होने का निश्चय किया। गत १५ अगस्त १९४९ को आंशिक रूप से इसका शासन-भार भारत शासन को मिल गया। भारत का एक मात्र फ्रांसीसी राज्य पाण्डुचेरी का भाग्य-निर्णय अभी तक नहीं हुआ है।

अंग्रेज और भारत

पूर्वी देशों के व्यापार से प्राप्त पोर्तुगीजों की समृद्धि अंग्रेजों की ईर्षा का

विजय थी। परन्तु मार्ग की जानकारी के बिना वे कुछ करने में असमर्थ थे। जब अंग्रेज कप्तान ड्रेक ने भारत से लौटते हुए प्रधान पोर्तुगीज बेड़ेपर विजय प्राप्त की, तो उसकी लूटमें उन्हें भारत के जल मार्ग का गुप्त मानचित्र भी प्राप्त हुआ। भारत समुद्र तट पर उतरनेवाला सर्व प्रथम अंग्रेज कप्तान हाकिन था, जिसके जहाजों ने सूरत में लंगर डाला था। वह आगरा में सम्राट् जहांगीर के दरबार में राजा जेम्स प्रथम का पत्र लेकर हाजिर हुआ और व्यापार की आज्ञा मांगी। परन्तु दरबार में पोर्तुगीज व्यापारियों के रहने के कारण उसकी दाल न गली। १६१२ ई० में अंग्रेजी जलसेना ने पोर्तुगीजों के बेड़े पर आक्रमण कर विजय प्राप्त की। सूरत पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। १६१३ ई० में सम्राट् जहांगीर ने अपने दरबार में एक अंग्रेज राजदूत के रहने की स्वीकृति दी और १६४०ई०में अंग्रेजों को कलकत्ते में कारखाना खोलने की आज्ञा मिली। तब से बंगाल का व्यापार पोर्तुगीजों से छिन कर अंग्रेजों के हाथ में आ गया। १६८८ ई० में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का बंबई पर अधिकार हुआ। किन्तु अंग्रेजों को राजनीतिक प्रभुसत्ता १७५७ के पलासी-युद्ध से प्राप्त हुई।

अध्याय १

भारत में अंग्रेजी राज्य का प्रारंभ और विकास

भारत के वर्तमान विधान के अध्ययन से पहले भारत में अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ और विकास का ऐतिहासिक सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक होगा।

भारत में अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ और विकास को हम पांच काल-विभागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) सन् १६००-१७६५ ई०—इस अवधि में अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कंपनी की स्थापना हुई। उसे भारत और पूर्वी देशों में व्यापार की आज्ञा मिली। व्यापार के साथ ही उसे भारत में राजनीतिक प्रभुसत्ता प्राप्त करने में सफलता मिली और सन् १७६५ ई० में जब क्लाइव ने बंगाल की दिवानी प्राप्त कर ली तो कंपनी एक राजनीतिक संस्था बन गई।

(२) सन् १७६५-१८५८ ई०—व्यापारिक कंपनी को जब राजनीतिक शक्ति मिली तो वह अपनी शक्ति बढ़ाने लगी। इसकी बढ़ती हुई राज्य शक्ति को देख, १७७३ ई० से ब्रिटिश पार्लियामेंट इसपर नजर रखने लगी। पार्लियामेंटका नियंत्रण १८५८ ई० तक उत्तरोत्तर बढ़ता गया। १८५८ ई० के सिपाही विद्रोह के फलस्वरूप कंपनी के आधिपत्य का अन्त हो गया और भारत का शासन ब्रिटिश पार्लियामेंट (संसद) ने अपने हाथमें ले लिया। तब से शासन सुधार और उन्नतिके नाम पर ब्रिटिश राजा पार्लियामेंट (संसद) के द्वारा भारत का शासन करने लगा।

(३) सन् १८५८-१९१७ ई०—यद्यपि कंपनी के राज्य का अन्त हो गया तथा भारत का शासन अंग्रेजी राज-शक्ति के हाथ में चला गया, किन्तु इससे

शासन की पद्धति में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। भारत-शासन पूर्ववत् निरंकुश बना रहा।

(४) सन् १९१७–१९४७ ई०—भारत के ब्रिटिश-शासन-नीति में परिवर्तन-विषयक मॉन्टेग्यू-घोषणा सन् १९१७ ई० में हुई। उसमें कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन का लक्ष्य ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत उन्नतिशील उत्तरदायी-शासन की स्थापना है। इस घोषणा के आधार पर पार्लियामेंट (संसद) ने १९१९ में भारत-शासन अधिनियम (गवर्नमेंट आव इन्डिया एक्ट) पास (पारित) किया। उक्त अधिनियम (एक्ट) का स्थान सन् १९३५ ई० के भारत-शासन अधिनियम ने ग्रहण किया तथा भारत-स्वराधीनता अधिनियम सन् १९४७ ई० के द्वारा भारत से अंग्रेजी राज्य की समाप्ति हुई।

(५) सन् १९४७ ई०—भारतीय विधान सभा ने घोषित किया है कि इसका उद्देश्य सम्पूर्ण सत्ताधारी भारत के स्वाधीन–गणराज्य की स्थापना है। सन् १९४७ ई० से भारत में नवीन युग का प्रारम्भ होता है। "भारत-छोड़ो" की राष्ट्रीय माँग ने युद्ध-जर्जर ब्रिटेन को विवश किया। आज भारत का आशापूर्ण भविष्य हमारे सामने है।

ब्रिटिश राज्य का उत्थान और पतन

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विकास और उसकी दृढ़ता के दो प्रमुख कारण थे। प्रथम, अंग्रेजी अन्यायों की उत्तमता और द्वितीय, भारतीय राजन्य वर्ग का आपसी संघर्ष।

एक ओर अंग्रेज वीरों को यहाँ कई भयानक और प्रचण्ड युद्ध-क्षेत्रों में लड़कर विजयी बनना पड़ा और दूसरी ओर, बिना युद्ध के, केवल कूटनीतिज्ञता और विश्वासघात के बल पर भारतीय शक्तियों को लड़ा-भिड़ा कर इन्होंने सफलता प्राप्त की। विजय के इस लम्बे अर्से के बीच इन्हें कई विद्रोहों का सामना भी करना

पड़ा। सन् १७६६ ई० में बंगालीसैन्यदल तथा उसके २४ विद्रोही नेताओं को गोली से उड़ा दिया गया। वेल्लोर में घटित १८०६ ई० का विद्रोह बड़ा आशंकाजनक था। यह विद्रोह १८५७ ई० के विद्रोह से मिलता जुलता था....। प्रथम बर्मा युद्ध के समय समुद्र-यात्रा की बाध्यता के कारण उच्च-जातीय हिन्दू सैनिकों में विद्रोह फैल गया। फलतः खूनी कत्लेआम के बाद वह दस्ता तोड़ दिया गया। अफगान युद्ध के अवसर पर भी सैनिक अनुशासन में गड़बड़ी पैदा हुई थी। जिसमें चार बंगाली सैन्य दलों ने सिन्ध अभियान से इन्कार कर दिया और सन् १८४४ ई० में दो सैन्य-दलों ने सिख सीमापर विद्रोह कर दिया।

१८५७ का सैनिक विद्रोह

"विद्रोही देशी सेनाओं का भयानक विश्वासघात अवर्णनीय था।"

"१८५७ की गर्मियों के चार महीनों तक ऐसा लगता था कि यह विद्रोह कहीं स्वाधीनता संग्राम का रूप न धारण कर ले और अंग्रेजों की पुनर्विजय को असंभव न कर दे, किन्तु सितम्बर तक यह स्पष्ट हो गया कि विद्रोह में भाग लेनेवाले भारतीयों में एक निश्चित कार्य प्रणाली में काम करने की योग्यता तथा किसी एक *राष्ट्रीय नेता के नेतृत्व में चलने की भावना का अभाव है।"*

विद्रोह का प्रारंभ बड़ा ही उत्साह प्रद एवं आशाजनक था। यहाँतक कि अंग्रेजों की स्थिति चिन्ताजनक हो गई थी, परन्तु भारतीय राजनीतिज्ञ सफल प्रारंभ को सफल अन्त का रूप देने में असमर्थ रहे। प्रान्तीयता और धार्मिक विरोध के कारण अवरोध-शक्ति नष्ट हो गई और राष्ट्रीय ऐक्य और सहयोग असंभव हो गया।

विद्रोही, जो पकड़े गये वे या तो गोली से उड़ा दिये गये या फांसियों पर लटका दिये गये। भूत पूर्व सम्राट् बहादुर शाहको हडसन ने हिमायूँ के मकबरे में गिरफ्तार किया। उसने उनके तीन पुत्रों को भी गोली का निशाना बनाया। •दिल्ली पर पुनराधिकार प्राप्त करने पर वहाँ कत्ले आम की आज्ञा दी गई, यही अवस्था

बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ और विद्रोह-ग्रस्त बिहार और संयुक्त-प्रान्त के जिलों की थी। "हमारी संसद (पार्लियामेंट) के कागजातों में भारत के गवर्नर जेनरल का वह पत्र वर्तमान है जिसमें कहा गया है कि विद्रोह दमन के समय के कत्लेआम में अपराधी विद्रोहियों तथा निरपराध वृद्धों, स्त्रियों एवं बच्चों में कोई अन्तर नहीं किया गया।" उन्हें केवल फांसी ही नहीं दी गई अपितु कितने ही जन गांवों में जीवित जला दिये गये और अनेकों का गोलियों से शिकार किया गया।

भारतीयों के लिये सन् १८५७ ई० के विद्रोह की स्मृति बड़ी दुखद और कटु है। विद्रोह के कुछ समय बाद ट्रेवेलियन ने लिखा है कि दिल्ली विजय के बाद गाजी कहे जानेवाले एक धार्मिक सम्प्रदाय के परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को फांसी दी गई। उनका अपराध सिर्फ इतना था कि वे एक विशेष धर्म के अनुयायी थे।

विद्रोह के परिणाम-स्वरूप भारत की अंग्रेजी शासन नीति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

भारत-शासन कंपनी के हाथ से छिनकर ब्रिटिश राजा के हाथ में चला गया। सेना का पुनः संगठन किया गया बंगाली-सैन्यदल भंग कर दिया गया और भारतीय राज्यों के प्रति नया दृष्टिकोण अपनाया गया।

विद्रोह के बाद भारतीय सेना में अंग्रेज और भारतीय सैनिकों का अनुपात २:५ कर दिया गया। भारतीय सैनिक प्रायः पंजाब से लिये जाते थे क्योंकि पंजाबी सैनिकों ने विद्रोह में अंग्रेजों का पूरा साथ दिया था। गोला बारूद और अन्य शस्त्र योरोपीय सैनिकों के अधीन रखे जाने लगे।

विद्रोह का भारत-शासन पर प्रभाव

कंपनी के कुशासन के कारण भारतीय लोगों के एक वर्ग में, तथा भारतीय सैनिकों में विद्रोह की भावना पैदा हुई।

इंगलैंड के अधिकारियों ने देखा कि परिवर्तित परिस्थिति में कंपनी को

हुकूमत चलने देने में खतरे की संभावना है। इसलिये विद्रोह के दमन के बाद भारत-शासन कंपनी से छीन लिया गया और उसे प्रत्यक्षतः सम्राट् के अधीन कर दिया गया। एक घोषणा-पत्र (महारानी का घोषणा-पत्र १८५८) द्वारा महारानी विक्टोरिया ने भारत का शासन अपने हाथ में लेने की इच्छा प्रकट की।

इस प्रकार विद्रोह के कारण प्राचीन भारत में नवीन और परिवर्तन तो हुआ किन्तु १९१९ ई० के सुधार होने के पहले तक भारत का अंग्रेजी-शासन पुरानी लीक पर ही चलता रहा।

सन् १८६१-१८६२

इस अवधि में भारतीय स्थिति में बहुमुखी उन्नति हुई। नये विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई, माध्यमिक शिक्षा में अधिक प्रगति हुई। लार्ड डफरिन और रीपन के उद्योग से प्रमुख प्रान्तों को कुछ अंशों में स्वशासन प्रदान किया गया। इसी बीच भारतीय महासभा (कांग्रेस) की संस्थापना हुई। यह शिक्षितों एवं राजनीतिक विचारवाले भारतीयोंका, जो वैधानिक सुधारों की मांग करते थे, प्रतिनिधित्व करती थी। फलस्वरूप, अङ्गरेजी-शासन ने भी भारतीय विधान-परिषद् के विधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता समझी। ताकि विधान-परिषद् (धारा सभा) अधिक लोक-प्रिय एवं प्रतिनिधिमूलक हो सके।

सन् १९९२ ई० तक घटनायें तेजी से चलती रहीं। शिक्षा में अधिक उन्नति के साथ राष्ट्रीय महासभा की शक्ति और प्रभाव में वृद्धि हुई।

रूस-जापान युद्ध में जापान ऐसे छोटे से एशियाई देशकी सफलता ने भारत के शिक्षित युवकों में महत्वाकांक्षा की हिलोर पैदा कर दी। इससे नवीन राष्ट्रीय-चेतनता जाग्रत हुई। बंग-भग को लेकर भारत में महत्वपूर्ण राजनीतिक षडयंत्र हुए।

भारत के कई भागोंमें और विशेषतः बंगालमें ब्रिटिश-अधिकारियों के विरुद्ध भारतीय आतंकवादियों के आक्रमण हुए। जिससे विदेशी शासन के लिये खतरे की संभावना लक्षित हुई।

इन सब कारणों से अङ्गरेज राजनीतिज्ञ भारत में बढ़ते हुए असंतोष को कम करने तथा भारतीय नेताओं के उत्तरदायी राष्ट्रीय-शासन की मांग को कुछ दूर तक पूरा करने के लिये भारत-शासन के विधान में परिवर्तन करने की आवश्यकता का अनुभव करने लगे।

भारतीय परिषद् अधिनियम १९०९ (कौंसिल एक्ट)

इस अधिनियम द्वारा भारत के एक संप्रदाय को दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर उनके सम्मिलित राष्ट्रीय प्रयत्न को नष्ट किया गया। इस आन्तरिक विभाजन के मूल में भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की सैद्धान्तिक दुर्बलता थी।

भारत और प्रथम विश्व-युद्ध

प्रथम विश्व-युद्ध प्रजातंत्र की स्थापना की मजबूत कुंजी थी। इस समय भारत में जो होम रूल का आन्दोलन हुआ उसके कारण ब्रिटेन को भारत के स्वशासन का अधिकार स्वीकार करना पड़ा।

इस समय भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन चल पड़ा था, जो शीघ्र ही न दबाया जा सका।

प्रसिद्ध माण्टेग्यू घोषणा

२० अगस्त सन् १९१७ ई० को तत्कालीन भारत-सचिव श्री मॉन्टेग्यू ने निम्नलिखित घोषणा की :—

ब्रिटिश शासन की यह नीति है तथा भारत सरकार इससे सहमत है कि वह भारत के शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों को अधिकाधिक भाग लेने का अवसर देगी तथा भारत के स्वशासन में क्रमशः उत्तरोत्तर वृद्धि करेगी। जिससे ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में उत्तरदायी शासन की स्थापना हो सके।

१६१६ के अधिनियम में विषयों का विभाजन

मॉण्टेग्यू घोषणा को कायरूप देने के लिये द्वैध-शासन की नीति काम में लायी गई, जिसके अनुसार अंग्रेजों की साम्राज्य-सुरक्षा तथा भारतीयों के शासन सुधार की परस्पर विरोधी भावनाओं में समझौता करने का प्रयत्न किया गया। इसके अनुसार सिर्फ वे विभाग, जिनके हस्तान्तरण से भारत के ब्रिटिश-शासन को धक्का न लगे, जनता के नियंत्रण में दिये गये। हस्तान्तरित विषय और आरक्षित विषय के नाम से विषयों के दो वर्ग किये गये। केवल हस्तान्तरित विषय जनता के नियंत्रण में दिये गये।

अध्याय २

१९१९ और उसके बाद

भारत-शासन अधिनियम सन् १९१९ ई० और इसके प्रावधान (प्रोवीजन) अन्तर्वर्ती (इण्टीरियम) थे। इनके विधायकों को कोई निश्चित एवं स्थायी विधान बनाने की इच्छा नहीं थी बल्कि वे विधियों में इतना ही परिवर्तन करना चाहते थे जिससे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहते हुए भारत में प्रगतिशील उत्तरदायी-शासन की स्थापना का स्वांग रचा जा सके।

अमृतसर कांग्रेस-अधिवेशन में १९१९ के सुधारों पर भारतीय नेताओं ने बड़ा असन्तोष प्रकट किया। इन्होंने अनुभव किया कि सम्राट् शासन ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। केन्द्र के अनुत्तरदायी-शासन तथा प्रान्तों के दोहरे ढङ्ग के शासन की,जिसे द्वैध-शासन कहते हैं, कड़ी आलोचना हुई।

सन् १९१९ ई० के अधिनियम द्वारा हुई प्रगतियां भारतीय नेताओं के अविराम संघर्ष द्वारा ही संभव हुई।

१९२१ का असहयोग आन्दोलन

सन् १९२१ ई० में महात्मा गांधी ने असहयोग आन्दोलन आरंभ किया। इसके तीन प्रमुख कारण थे। (क) भारत की असन्तुष्ट जनता में ब्रिटिश-शासन की प्रतिज्ञा पूर्ति न करने के कारण फैला हुआ रोष, (ख) पंजाब के मार्शल-ला शासन और जलियानवाला बाग की घटना से उत्पन्न क्षोभ, तथा (ग) तुर्की साम्राज्य का अंग्रेजों द्वारा उच्छेद किये जानेसे भारतीय मुसलमानों का धार्मिक विक्षोभ। महात्माजी ने

राजनैतिक, आर्थिक एवं नैतिक बहिष्कार की नीति काम में लायी। विदेशी शराब विदेशी-वस्त्र और तथा-कथित नये सुधारों से युक्त विधान-मंडल का बहिष्कार किया गया। सरकारी अदालत व स्कूल-कालेजों का भी बहिष्कार किया गया। साम्प्रदायिक ऐक्य, अछूतोद्धार, खादी प्रचार, झगड़ों के निपटाने के लिये पंचायतों की स्थापना तथा राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार तत्कालीन नेताओं के रचनात्मक कार्यक्रम के प्रमुख अङ्ग थे।

यद्यपि यह आन्दोलन चरम-लक्ष्य 'स्वराज' की प्राप्ति में असफल रहा परन्तु इसने भारत की सोई हुई करोड़ों मृतप्राय जनता में राजनीतिक चेतना का संचार किया और उसीका सुफल हमारी आज की स्वतन्त्रता है।

स्वराज्य-दल

आन्दोलन की असफलता के कारण कांग्रेस में दो दल हो गये। स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरंजनदास के नेतृत्व में एक दल कांग्रेस की नीति में परिवर्तन चाहने लगा। यह दल परिषद् बहिष्कार की नीति में परिवर्तन चाहता था। क्योंकि वे परिषद् में रहकर उसे अन्दर से नष्ट करने की बात कहते थे। इस नये दल का नाम स्वराज दल पड़ा। स्वराज दलवाले सन् १९२३ ई० में चुनाव लड़े। बंगाल और मध्यप्रांत में इन्हें बड़ा बहुमत मिला, दूसरे कई प्रान्तों के विधान-मंडल में भी इन्हें बहुमत प्राप्त हुआ।

राष्ट्रीय मांग

सन् १९२४ ई० में भारतीय विधान सभा ने स्वराज-दल के नेता स्वर्गीय मोतीलाल नेहरू द्वारा प्रस्तावित राष्ट्रीय मांग का प्रस्ताव पारित (पास) किया। सन् १९२५ ई० में यह प्रस्ताव पुनः दुहराया गया। इसमें भारत के लिये उपनिवेश के ढंग पर उत्तरदायी-शासन की मांग की गई थी तथा इसका मार्ग ढूंढ निकालने के लिये भारतीय और अंग्रेज प्रतिनिधियों की गोलमेज-परिषद् की मांग की गई थी।

सन् १९२६ में जब लार्ड इर्विन भारत के गवर्नर जनरल बनकर आये तो भारतीय राजनीति में थोड़ा सुधार हुआ ; पर शीघ्र ही परिस्थिति ने पलटा खाया। एक तूफान उठ खड़ा हुआ।

साइमन कमीशन (साइमन आयोग)

भारत-शासन-अधिनियम सन् १९१९ ई० के अनुसार ब्रिटिश-शासनने सुधार-संबन्धी विषयों का अध्ययन करने के लिये श्री जॉन साइमन के सभापतित्व में एक राजकीय आयोग (कमीशन) नियुक्त किया। इस आयोग में कोई भारतीय प्रतिनिधि नहीं था। इसलिये यह भारत का अपमान समझा गया तथा गरम और नरम दोनों दलों के नेताओं ने इसके बहिष्कार का निश्चय किया।

"साइमन आयोग ने भारत की राष्ट्रीय मांग 'उपनिवेश-पद' तथा केन्द्र में उत्तरदायी शासन की उपेक्षा की। परिणाम यह हुआ कि राजनीतिक असन्तोष में उफान आया और लोग उपनिवेश-पद की मांग के बदले पूर्ण-स्वाधीनता की माँग लेकर आगे बढ़े तथा ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद आवश्यक समझने लगे।"

नेहरू-प्रतिवेदन (नेहरू-रिपोर्ट)

इसी समय तत्कालीन भारत सचिव लार्ड बारकनहेड की चुनौती का उत्तर देने के लिये एक सर्वदल सम्मत विधान की रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिये स्व० मोतीलाल नेहरू के सभापतित्व में सर्वदलीय अधिवेशन हुआ। इस समिति द्वारा प्रचारित प्रतिवेदन (रिपोर्ट) को नेहरू प्रतिवेदन कहते हैं। इसके द्वारा भारत के लिये अविलंब उपनिवेश-पद की माँग की गई तथा निश्चित स्थान (सीट) के साथ संयुक्त निर्वाचन का समर्थन किया गया। कांग्रेस के वामपंथियों ने जो पूर्ण स्वाधीनता के समर्थक थे नेहरू-प्रतिवेदन का साथ नहीं दिया।

केन्द्रीय उत्तरदायित्व के प्रश्न पर साइमन-आयोग प्रतिवेदन भारतीय राज-नीतिज्ञों को सन्तुष्ट करने में असफल रहा, पर नेहरू प्रतिवेदन ने भी भारतीय

मुसल्मानों, भारतीय राज्यों तथा योरोपियन पूंजीपतियों के हृदय में शंका और विरोध को जन्म दिया।

१९२८ की कांग्रेस की मांग तथा ३१ अक्टूबर १९२९ की अर्विन-घोषणा

कलकत्ता कांग्रेस-अधिवेशन (१९२८) में महात्मा गांधी के आश्वासन पर, कि यदि १९२९ ई० तक भारत को उपनिवेश-पद (डोमिनियन स्टेटस) न दिया गया तो मैं स्वयं स्वाधीनता संग्राम का संचालन करूंगा, विप्लववादी शान्त रहे।

साइमन-आयोग (साइमन कमीशन) द्वारा किये गये अपमान की भावना को हटाने के लिये लार्ड अर्विनने साइमन आयोग-प्रतिवेदन के प्रकाशन के पूर्व ही एक प्रसिद्ध सरकारी घोषणा (३१ अक्टूबर १९२९) की। उन्होंने घोषित किया कि ब्रिटिश-शासन भारतके लिये उपनिवेश-पद का लक्ष्य स्वीकार करती है। इसके साथ ही लार्ड अर्विन ने भारतीय प्रतिनिधियों को भारतीय विधान के निर्माण में भाग लेने के लिये लन्दन में आयोजित गोलमेज परिषद् के लिये आमंत्रित किया।

इस समय तक कांग्रेस अधिक विप्लववादी हो गई थी। नरम दलवाले भी क्षुब्ध हो उठे थे। अर्विन के लक्ष्य-स्वीकृति की घोषणा किसी को सन्तुष्ट न कर सकी। शनैः शनैः मिलनेवाली तरक्की के लिये ठहरने को कोई प्रस्तुत नहीं था। सभी अविलंब उपनिवेश-पद की प्राप्ति के लिये तुले हुए थे।

उपनिवेश-पद या अधिराज्य-पद (डोमिनियन स्टेटस)

उपनिवेश-पद या अधिराज्य पद उस स्थिति को कहते हैं जिसमें ब्रिटिश राजछत्र के अन्दर रहते हुए भी कनाडा, आस्ट्रेलिया, दक्षिण-अफ्रिका, न्यूजीलैंड तथा आयर्लैण्ड स्व-शासन का पूर्ण उपयोग करते हैं।

साम्राज्य के साथ उनका सम्बन्ध।—"वे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत होनेपर भी पद की दृष्टि से समान तथा स्वायत्तशासी-समुदाय हैं। वे अपने

आन्तरिक तथा वैदेशिक कार्यों में किसी प्रकार ब्रिटिश-शासन के अधीन नहीं हैं। सम्राट् के छत्र की छाया में ये सब देश समान हैं तथा इनमें से प्रत्येक ब्रिटिश राष्ट्र संघ के स्वेच्छा-सदस्य हैं।"

इस प्रकार वे इंगलैण्ड के समान हैं, किसी अंश में उसके अधीन नहीं हैं। ब्रिटेन के साथ उनका सघ स्वेच्छा-प्रेरित है। सन् १९४९ ई० में भारत भी ब्रिटिश-राष्ट्रसंघ में शामिल हुआ है, लेकिन भारत गणतंत्र या साधारणतंत्र हो जायगा।

अधिराज्यों को अपने प्रशासन-कार्य, विधान मंडल, न्याय-विभाग, स्थल, गगन और नौ-सेना-सचालन आदि कार्यों को पूरी स्वतंत्रता प्राप्त होती है। अधिराज्य सबन्धी व्यापारिक प्रश्नों का समाधान ब्रिटिश राज्य संघ का एक अधिराज्य सचिवालय के मतानुसार होता है इनमें ब्रिटिश मंत्रि-परिषद् के परामर्श को प्रधानता नहीं दी जाती।

विधि-अवज्ञा आन्दोलन १९३० —*ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की प्रतिक्रिया-*गामी नीति भारतीय जनता की आकांक्षाओं का दमन नहीं कर सकी। १९२९ के लाहौर कांग्रेस में पुनः भारतीय लक्ष्य "पूर्ण-स्वाधीनता" की घोषणा की गई। लक्ष्य की उपलब्धि के लिये महात्मा गांधी ने १९३० ई० में विधि-अवज्ञा-आन्दोलन शुरु किया।

१२ मार्च सन् १९२० को 'बापू' ने अहमदाबाद से अपनी इतिहास प्रसिद्ध दण्डी-यात्रा नमक-कानून (विधि) भंग करने के लिये की। देश के एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक आन्दोलन की हिलोर फैल गई। इस आन्दोलन में भाग लेनेवाले प्रायः ५० हजार व्यक्ति बन्दीगृह में भेजे गये। परन्तु आन्दोलन में भाग लेनेवालों की वास्तविक संख्या इससे बहुत अधिक थी। स्थिति की गंभीरता को देखकर ब्रिटिश-शासन ने भारतीय समस्या के समाधान के लिये गोलमेज परिषद् (राउन्ड टेबुल कान्फ्रेंस) का निष्फल प्रयत्न किया। सन् १९३१ ई० में गांधी-अर्विन समझौता होने के बाद महात्मा गांधी आन्दोलन स्थगित

कर द्वितीय गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिये लंदन गये। किन्तु वहाँ स्वाधीनता की माँग पूरी न होने पर स्वदेश लौट आये और पुनः विधि-अवज्ञा आन्दोलन का नेतृत्व करने लगे। इसके उत्तर में सरकार ने सभी नेताओं को कारावद्ध कर लिया।

इसी समय ब्रिटिश प्रधान-सचिव मेकडोनल्ड ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या का समाधान करने के लिये साम्प्रदायिक-परिनिर्णयन (कम्यूनिल एवार्ड) की घोषणा की। इसमें अनुसूचित-जातियों के लिये जो व्यवस्था की गई थी उसके विरोध में महात्मा गांधी ने आमरण अनशन आरंभ कर दिया। पूना-समझौता के आधार पर अनशन भंग हुआ जिससे परिनिर्णयन में कुछ परिवर्तन हुआ। सन् १९३२ ई० में तृतीय गोलमेज परिषद् का आयोजन हुआ, इसमें कांग्रेस को आमंत्रित नहीं किया गया। परिषद् के बाद भारतीय शासन संबन्धी एक श्वेत-पत्र (ह्वाइट पेपर) प्रकाशित हुआ। संसद् (पार्लियामेंट) के दोनों परिषदों के कुछ सदस्यों की एक समिति गठित हुई, जिसने श्वेत-पत्र में उल्लिखित विषयों पर विचार कर एक प्रतिवेदन (रिपोर्ट) उपस्थित किया। प्रतिवेदन के आधार पर ब्रिटिश पार्लियामेंट (संसद्) ने भारत-शासन अधिनियम १९३५ ई० पारित (पास) किया।

अधिनियम के संघानीय योजना (युक्त-राष्ट्रीय योजना) विभाग का भारतीय नेताओं ने बड़ा विरोध किया, किन्तु उक्त अधिनियम के अनुसार भारतीय प्रान्तों का शासन १९३७ से ४७ ई० तक चलता रहा। केन्द्र में संघ गठन और प्रान्तोंमें उत्तरदायी शासन की व्यवस्था रहते हुए भी, इस अधिनियम में स्वेच्छाचारी देशी राजाओं के विशेषाधिकार और उनकी स्वाधीन-सत्ता, गवर्नर और गवर्नर जनरल को निर्वाचित विधान-मण्डल तथा मंत्री मंडल को भंग कर शासन अपने हाथ में ले लेने का विशेषाधिकार तथा ब्रिटिश स्वार्थ की रक्षा के लिये सुरक्षित विषयों की व्यवस्था के कारण वह अधिनियम देश के राजनीतिज्ञों को सन्तुष्ट करने में असफल रहा।

१९३५ से १९४२—भारत शासन अधिनियम १९३५ के अनुसार १९३७ ई० के निर्वाचन के फलस्वरूप कांग्रेस ने सात प्रान्तों में बहुमत प्राप्त किया। इन प्रान्तों में तथा कुछ दिन बाद एक और प्रान्त में कांग्रेस मंत्रिमंडल की स्थापना हुई।

१९३९ ई० में द्वितीय महायुद्ध के फूट पड़ने पर ब्रिटेन युद्ध-लिप्त हो गया और तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथगो ने सम्राट-शासन के पक्ष में भारत को युद्ध-लिप्त राष्ट्र घोषित कर दिया। इस निर्णय में उन्होंने प्रान्तीय मन्त्रि-मंडलों एवं भारतीय नेताओं से परामर्श भी नहीं किया। ब्रिटिश अधिकारियों ने इस युद्ध को विश्व में गणतंत्र तथा स्वाधीनता की रक्षा और स्थापना का युद्ध घोषित किया, परन्तु भारतीय स्वाधीनता के प्रश्न पर उनकी नीति पूर्ववत् रही। उनके गणतंत्र विरोधी आचरण पर सारा भारत क्षुब्ध हो उठा। आठ प्रांतों में कांग्रेस मंत्रि-मंडल ने इस्तीफा दे दिया।

तत्कालीन भारत-सचिव लार्ड जेटलैंड और उसके बाद मिस्टर एमरी ने घोषणायें कीं। उसमें भारतीय स्वाधीनता की कोई बात नहीं थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने इन घोषणाओं का विरोध किया। तब ब्रिटिश शासन ने दमन नीति का आश्रय लिया। युद्ध विरोधी सत्याग्रह के कारण हजारों कांग्रेस-कर्मी जेलों में डाल दिये गये। तथा मजदूर नेताओं, सोसलिस्टों और फारवर्ड ब्लाक वालों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया गया। प्रांतों के छः प्रधान मन्त्री और कितने ही अन्य मंत्री भी काराबद्ध हुए।

गवर्नर-जनरल की परिषद् में सरकार-परस्त सदस्यों की वृद्धि से कोई लाभ नहीं हुआ।

क्रिप्स-प्रस्थापना (क्रिप्स-प्रपोजल)—१९४२ ई० में ब्रिटिश-संसद् (पार्लियामेंट) से निर्णय का पूर्ण अधिकार प्राप्त कर सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भारत की राजनीतिक गुत्थी सुलझाने आये। उनकी प्रस्थापना (प्रपोजल) में देश के रक्षा-

विभाग (सेना-विभाग) में भारतीयों को कुछ भी अधिकार नहीं था। अतएव कांग्रेस ने इसे अस्वीकार किया। विचार के सिलसिले के बीच ही में ब्रिटिश सरकार ने *क्रिप्स प्रस्तावना का खंडन किया। भारतीय नेताओं से चलने वाला* विचार विनिमय बन्द हो गया।

कांग्रेस का 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव

९ अगस्त सन् १९४२ ई०के बम्बई के अखिल-भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन में 'भारत छोड़ो' (अंग्रेज भारत छोड़ दें) का प्रस्ताव पास हुआ, समिति की बैठक के अन्य कार्य अभी समाप्त भी नहीं हो पाये थे कि ९ अगस्त की रात में गांधीजी एवं कांग्रेस कार्य-समिति के सब सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। देश में कांग्रेस की सभी शाखाओं को अवैध घोषित कर दिया गया। परिणाम स्वरूप सारे भारत में क्रान्ति की लहरें फैल गई। सिपाही-विद्रोह के बाद भारत में इतना बड़ा विद्रोह कभी नहीं हुआ था। भारतवर्ष के सभी भागों में जनता ने पुलिस और सेना के विरुद्ध युद्ध ठान दिया। बलिया, सतारा, मेदनीपुर, बांका (जिला भागलपुर) आदि कितने ही स्थानों में जनता ने ब्रिटिश-शासन को उखाड़ फेंका। अफसरों और गोरे सैनिकों के अवर्णनीय अत्याचारों के होते हुए भी जनता कई महीनों तक संग्राम चलाती रही। परन्तु नेताओं के अभाव में धीरे-धीरे आन्दोलन शान्त हो गया।

१९४३ ई० के अगस्तके पहले तक कुल ९३७०७ व्यक्ति बन्दी बनाये गये थे। १९४३ ई० के अन्तमें महात्मा गांधी के छूटने पर राजनीतिक समस्या के समाधान का क्षीण आलोक आभासित हुआ, किन्तु ब्रिटिश-शासन की बेरुखी के कारण कुछ नहीं हो सका।

नेताजी सुभाष और आजाद हिन्द फौज—महायुद्ध की समाप्ति पर भारतवासियों को नेताजी के नेतृत्व में गठित आजाद हिन्द फौज की बात ज्ञात हुई।

युद्ध में मित्र राष्ट्रों की विजय होने पर भी सारे देश ने नेताजी और आजाद हिन्द फौज का स्वाधीनता-पुजारी के रूप में सम्मान किया।

आजाद हिन्द फौज के बन्दियों की मुक्ति के लिये देश-व्यापी आन्दोलन हुआ। सरकार सभी बन्दियों को छोड़ने के लिये विवश की गई।

इसी समय प्रान्तीय विधान मंडलों का निर्वाचन हुआ जिसमें सारे देश में (बंगाल और सिंध को छोड़कर) कांग्रेस को आवश्यकताधिक बहुमत मिला।

द्वितीय महायुद्ध की समाप्ति पर पूर्वी एशिया के देशों में साम्राज्यवाद की शक्ति क्षीण हो गई और सर्वत्र गणतंत्री शक्तियों का अभियान प्रखर हो गया।

मुसलिम लीगने पाकिस्तान के दावे को अधिक जोरदार स्वरमें ऊपर उठाया।

ब्रिटेन का निर्वाचन तथा श्रमिक-पक्षको विजय—ब्रिटिश संसद (पार्लियामेंट) के निर्वाचनमें श्रमिक-पक्षकी विजय हुई। नव-निर्वाचित पक्षने भारतमें अपना एक प्रतिनिधि मंडल भेजा।

भारत के सामान्य-निर्वाचन के फल से कांग्रेस की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध होगई थी।

केन्द्रीय विधान मंडलमें देशी-राज्यके ९३ आसन सुरक्षित होते हुए भी समस्त ३८९ आसनोंमें कांग्रेसने २०७ आसन प्राप्त किये। केन्द्रमें विभिन्न पक्षोंकी पक्ष-शक्ति इस प्रकार थी—

कांग्रेस—२०७	स्वतंत्र मुसलमान—३
मुसलिम लीग—७३	सिख—४
स्वतंत्र—९	

समस्त २१५ साधारण आसनोंमें २०७ आसन कांग्रेसने प्राप्त किये तथा ७८ मुसलमान आसनोंमें मुसलिम लीगने ५ छोड़े।

सिक्खों की मांग पूरी न होने के कारण उन्होंने विधान मण्डलमें योगदान नहीं किया। 'यह विधान मण्डल सार्वभौमी नहीं है तथा इसके द्वारा सत्ता हस्तान्तरणकी

संभावना नहीं है' मान कर सोसलिस्ट और दूसरे वामपंथी पक्षों ने इसमें योगदान नहीं किया।

अन्तर्वर्ती (इन्टेरीम) राष्ट्रीय-शासन—लार्ड-वेवेलके नेतृत्वमें गठित अन्तर्वर्ती शासन, कांग्रेस और लीगके वैमनस्यके कारण व्यर्थ सिद्ध हुआ। वह राष्ट्रीय-शासन को मर्यादाका दावा नहीं कर सका।

इन्हीं दिनों लार्ड पेथिक लारेंसके नेतृत्वमें मंत्रिदल (कैबिनेट मिशन) भारत आया। इनकी समस्या-समाधानकी सारी चेष्टायें निष्फल रहीं। इस समय देशकी राजनीतिक अवस्था आतंकपूर्ण थी। स्थान-स्थान पर मजदूरोंकी हड़ताल काश्मीर, हैदराबाद, त्रिवांकुर आदि राज्योंमें प्रजा-आन्दोलन, भारतीय नौ-सैनिकोंका विद्रोह तथा इनके समर्थनमें विभिन्न स्थानोंमें छात्र और श्रमिक अन्दोलन तथा डाक और तार विभाग की देश व्यापी हड़ताल से यह सिद्ध हो गया कि दमन के बलपर भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य की रक्षा असंभव है।

२० फरवरी १९४७ ई० में ब्रिटिश-शासनने घोषणा की कि "ब्रिटिश-शासनने १९४८ ई० के जून तक भारत त्यागका निश्चय कर लिया है।" इसके बाद लार्ड वेवेल की जगह लार्ड माउण्ड बेटन भारतके गवर्नर जनरल बनकर भारत आये।

माउण्ड बेटन-उपक्रमा—भारत-विभाजन

माउण्ट बेटन-उपक्रमा (प्लान) ३ जून सन् १९४७ ई० को माउण्ट बेटन-उपक्रमा प्रकाशित हुई। जिसकी मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं :—

(१) भारत को भारतीय-संघ (भारतीय युक्त राष्ट्र) और पाकिस्तान इन दो भागों में विभाजित किया जायगा। सिन्ध, पश्चिमी पंजाब, पूर्वी बंगाल, आसाम का सिलहट जिला, पश्चिमोत्तर-सीमान्त प्रदेश और बेलुचिस्तान पाकिस्तान के अन्तर्गत रहेंगे तथा भारत के अवशिष्ट भाग को लेकर भारतीय संघ का संगठन किया जायगा।

इस उपक्रमा से मंत्री-दल द्वारा प्रस्तावित समस्त भारत के एक संघ का विचार

परिवर्तित हो गया। भारत की अखण्डता तथा एक राष्ट्रीयता में विश्वास रखने वाले महात्मा गांधी और दूसरे लोगों की इच्छा के विरुद्ध भारत का अभौगोलिक एवं अवैज्ञानिक साम्प्रदायिक-विभाजन किया गया।

माउण्ट बेटन उपक्रमा (प्लान) घोषणा के बाद हमारे देश के सहस्रों व्यक्ति पितृ-पितामहों की पूज्य पैतृक-भूमि से उखड़ गये तथा सहस्रों स्त्रियों के नारीत्व का अपमान हुआ है। आज कितने ही लोगों का मत है कि इस दुःसह अपमान और लाँछना की अपेक्षा युद्ध में आत्म त्याग और आत्माहुति द्वारा अर्जित स्वतंत्रता अधिक प्रिय एवं श्रेयस्कर होती।

(२) पाकिस्तान में सम्मिलित होने या न होने की इच्छा का निश्चय करने के लिये पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत तथा सिलहट में जनमत-गणना की व्यवस्था की गई।

(३) बंगाल और पंजाब में जनमत-गणना की व्यवस्था नहीं की गई। वरन् इन दोनों प्रदेशों की व्यवस्थापिका सभाओं के सदस्यों से अपने प्रान्त के भविष्य सम्बन्धी प्रस्ताव पर मतदान करने को कहा गया।

यदि पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश में उपरोक्त पद्धति (जनमत गणना) की व्यवस्था होती तो वहां पाकिस्तान के विपक्ष में मत प्राप्त हो सकती थी, परन्तु कांग्रेस ने जन-संघर्ष के भय से मतगणना के प्रश्न से हाथ खींच लिया। और सीमान्त प्रदेश पाकिस्तान में सम्मिलित कर दिया गया। बंगाल और पंजाब में अंग्रेज न्यायाधीश रेडक्लीफ की मध्यस्थता में गठित सीमा-आयोग (बाउन्डरी कमीशन) ने बंगाल और पंजाब का जैसा विभाजन किया है, यदि इन प्रान्तों में भी सीमान्त प्रदेश की तरह मत गणना होती तो उसका परिणाम सम्भवतः दूसरा ही होता।

भारत स्वाधीनता अधिनियम, १९४७

भारत विभाजन उपक्रमा को सफल करने के उद्देश्य से ब्रिटिश-संसद् (पालियामेंट) में ४ जुलाई १९४७ ई० में एक भारत स्वाधीनता अधिनियम नामक विधेयक

रखा गया। अधिनियम का समस्त अंश अत्यन्त शीघ्रता से पारण (पास) किया गया।

इस अधिनियम (ऐक्ट) के द्वारा भारतीय संघ और पाकिस्तान नामक दो अधिराज्यों (डोमिनियन) की सृष्टि हुई। १५ अगस्त १९४७ ई० को दोनों अधिराज्यों को स्वशासन-अधिकार मिला तथा इन पर से ब्रिटिश-शासन और संसद् का आधिपत्य सदा के लिये समाप्त हो गया।

इन दोनों अधिराज्यों की लोक सभा को विधान-सभा का पद मिला तथा निश्चित हुआ कि नवीन विधान के निर्माण तक सम्राट् भारतीय मंत्री के परामर्श से गवर्नर जनरल और प्रान्त-शासक (गवर्नर) नियुक्त करेंगे।

लार्ड माउण्ट बेटन और स्व० जिन्ना क्रमशः भारत और पाकिस्तान के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए। लार्ड माउण्ट बेटन के बाद चक्रवर्त्ती श्री राजगोपलाचारी भारत के और श्री जिन्ना की मृत्यु के पश्चात् श्री नजीमुद्दीन पाकिस्तान के गवर्नर जनरल नियुक्त हुए।

इसके पश्चात् तेजी के साथ घटित घटनाओं से ज्ञात होता है कि भारत जिस स्वाधीनता की कामना करता था वह अभी भी हमारे मन्त्रि-मंडल के पहुँच के बाहर है। अभी भी हमारा लक्ष्य अपूर्ण है।

स्वाधीन समस्त-सत्ताधारी भारत-गणराज्य

भारतीय विधान-सभा ने नवीन विधान अंगीकार कर भारत को स्वाधीन, समस्त सत्ताधारी गणराज्य घोषित किया है।

विधान-सभा ने घोषित किया है कि एक स्वाधीन, समस्त सत्ताधारी गणतन्त्र राज्य की स्थापना उनका लक्ष्य है। तथा बालिग (प्रौढ़) मताधिकार के आधार पर सभी प्राप्तवयस्क नागरिकों (नागरिकों) के मतदान द्वारा निर्वाचन किया जायगा।

देश की समस्यायें और हमारा भविष्य—रवीन्द्रनाथ ने एक बार कहा

था कि भाग्य-चक्र के परिवर्तन से अंग्रेजों को एक दिन भारत छोड़कर जाना ही होगा किन्तु वह जिस भारत को छोड़ जायगा वह लक्ष्मीहीन दीनता की मूर्ति होगी।

अंग्रेज भारत छोड़कर चले गये। अपना राष्ट्रीय शासन भी स्थापित हुआ किन्तु आज देश की जनता का अभाव, उनकी दरिद्रता और दीनता की व्यथा तो मूर्त हो रही है।

इस शोचनीय दारिद्र्य-ग्रस्त देश में समाजवादी आन्दोलन की उत्कट सम्भावना हो रही है।

भारत-शासन को शीघ्र ही जनता के जीवन-स्तर की उन्नति का यत्न करना है।

सभी पक्षों (पार्टीज) तथा मतावलम्बियों की सम्मिलित चेष्टा के बिना इस महादेश का पुनर्निर्माण असंभव है।

—*—

अध्याय ३

भारतीय संघ और उसका शासन-विभाग

अब हम भारत की नवीन शासन-पद्धति पर विचार करेंगे।

प्रान्त-शासक (गवर्नर) शासित प्रान्तों, मुख्यायुक्त (चीफ कमिश्नर) शासित प्रान्तों, देशी राज्यों तथा राज्यसंघों को मिलाकर भारतीय संघ (युक्तराष्ट्र) संघटित हुआ है।

"भारतीय संघ (युक्तराष्ट्र) स्वाधीन समस्त सत्ताधारी गण-राज्य होगा।" बहुत वर्षोंके बाद भारत स्वाधीन राष्ट्रके पद को प्राप्त करेगा। अधिराज्य-शासन-पद्धति का अन्त होगा। भारतीयोंका आनुगत्य भारतीय राष्ट्रके प्रति होगा; ब्रिटिश शासन के प्रति नहीं।

संघगत प्रत्येक प्रान्त, राज्य वा राज्यसंघ, संघका सदस्य होगा।

राष्ट्रपति वा प्रधान (प्रेसीडेण्ट)

"संघकी अधिशासी-शक्ति (एग्जीक्यूटिव पावर) राष्ट्रपति वा प्रधानमें निहित होगी, वह इसका प्रयोग विधान तथा विधिके अनुसार करेगा।"

"भारत-शासनकी समस्त अधिशासी कार्यवाही राष्ट्रपति वा प्रधानके नामसे की गई कही जायगी।"

राष्ट्रपति वा प्रधान, देश की रक्षाके लिये भारतीय सैन्यके सभी अंगोंका सर्वोच्च अधिकारी होगा।

राष्ट्रपति वा प्रधानका निर्वाचन—राष्ट्रपति वा प्रधानका निर्वाचन संसद्के दोनों आगारोंके सदस्यों, प्रान्तों के निर्वाचित सदस्यों, राज्योंके निर्वाचित

सदस्यों तथा राज्यसंघों के निर्वाचित सदस्योंके एकल सक्राम्य मत (सिंगल ट्रांसफरेबल वोट) द्वारा, अनुपाती प्रतिनिधान रीति से, होगा। मतदान गुप्तशलाका (बैलेट) द्वारा होगा।

कार्यकाल—राष्ट्रपति या प्रधान अपने पद-प्रवेश-तिथि से पांच वर्षकी अवधि तक पद धारण करेगा।

राष्ट्रपति या प्रधान निर्वाचनकी योग्यतायें—राष्ट्रपति या प्रधान-पदपर निर्वाचित होने के लिये निम्नलिखित योग्यतायें आवश्यक हैं—(१) भारतीय नागरिक (जानपद) होना, (२) ३५ वर्ष की आयुका होना (३) लोक सभाके लिये सदस्य निर्वाचित होने के योग्य होना।

संघ अथवा राज्योंके मंत्री के अतिरिक्त कोई व्यक्ति, जो भारत-शासन (इण्डिया-गवर्मेंट) के, अथवा किसी राज्यके अधीन किसी परिलाभके पदपर (सवैतनिक पदपर) आरूढ़ है, राष्ट्र का राष्ट्रपति निर्वाचित नहीं हो सकेगा।

राष्ट्रपति या प्रधान पद के लिये प्रतिबन्ध—राष्ट्रपति न तो संसद् का, न किसी राज्य की व्यवस्थापिका का सदस्य होगा। वह किसी परिलाभ के पद पर नहीं रह सकेगा। राष्ट्रपति के वेतन और अधिदेय (एलाउंस) उसकी पदावधि में घटाये नहीं जायेंगे।

शपथ ग्रहण—पद ग्रहणके पूर्व, राष्ट्रपतिको भारतके प्रधान न्यायाधीशके समक्ष भारत के विधान और विधिके रक्षण, प्रतिरक्षण और परिरक्षणका तथा देशकी रक्षा की शपथ लेनी होगी।

पदत्याग, निष्कासन और दोषारोपण

राज्य-परिषद् के सभापति और लोक-सभाके अध्यक्ष को स्वहस्त लिखित त्याग-पत्र देकर, राष्ट्रपति पदत्याग कर सकेगा।

निष्कासन—विधान अतिक्रमण का अभियोग प्रमाणित होने पर, संसद्के पारित संकल्प (रिज़ोल्यूशन) द्वारा, राष्ट्रपतिका निष्कासन हो सकेगा।

दोषारोपण—भारतीय संसद्का कोई भी आगार (हाउस) दोषारोपण कर सकेगा। दूसरा आगार अभियोग के सम्बन्धमें अनुसंधान करेगा। राष्ट्रपति वा प्रधान को अनुसंधानमें उपस्थित होने और प्रतिनिधान (रिप्रेज़न्टेशन) कराने का अधिकार होगा। अभियोग प्रमाणित होने पर अनुसंधान करनेवाले आगार के दो तिहाई से अन्यून मत द्वारा पारित संकल्प (रिज़ोल्यूशन) से प्रधान का निष्काशन होगा।

राष्ट्रपति का पदरिक्ति-पूरण—राष्ट्रपति की पदावधि अवसानके पूर्व ही रिक्ति-पूर्तिके लिये निर्वाचन हो जायगा।

मृत्यु, पद त्याग अथवा निष्काशन द्वारा हुई रिक्ति की पूर्ति के लिये, अधिक से अधिक छः मास के भीतर निर्वाचन हो जाना आवश्यक होगा। नव-निर्वाचित व्यक्ति पांच वर्ष तक अपने पदपर रहने का अधिकारी होगा।

उपराष्ट्रपति

कोई व्यक्ति (१) जिसकी आयु ३५ से कम हो, (२) जो भारत-संघका नागरिक (जानपद) न हो और (३) जिसे भारतीय राजसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता न हो, उपराष्ट्रपति निर्वाचित नहीं हो सकेगा।

शासनके किसी विभागमें वेतन वा अधिदेय (अलाउंस) के पदपर नियुक्त व्यक्ति उपराष्ट्रपति (उपप्रधान) निर्वाचित नहीं हो सकेगा।

कार्यावलि—उपराष्ट्रपति वा उपप्रधान अपने पद कारणात् राज्य सभा का सभापति होगा।

अवकाश, मृत्यु, पदत्याग वा निष्काशन के कारण हुई राष्ट्रपति वा प्रधान-पद की रिक्ति के समय उप राष्ट्रपति वा उपप्रधान अस्थायी रूप से राष्ट्रपति वा प्रधान के कर्तव्यों को करेगा। उस समय वह राज-सभा का सभापति नहीं रहेगा। उप-राष्ट्रपति वा उपप्रधान की पदावधि पांच वर्षों की होगी।

उपराष्ट्रपति वा उपप्रधान का पद त्याग—उपराष्ट्रपति वा उपप्रधान स्वहस्त लिखित त्याग-पत्र राष्ट्रपति वा प्रधान को देकर पद-त्याग कर सकेगा।

अयोग्यता के कारण अथवा राज-सभा के विश्वास खोने पर उपराष्ट्रपति वा उपप्रधान, राज-सभा के बहुमत पारित संकल्प (रिज़ोल्यूशन) द्वारा, जिसे लोक सभा की स्वीकृति भी प्राप्त हो, निष्कासित हो सकेगा।

संघ के राष्ट्रपति वा प्रधान की शक्ति

(१) न्यायालय द्वारा किसी अपराध के दण्डित व्यक्ति के दंड-क्षमण, प्रविलंबन (रेप्रीव), प्राश्वगन (रेस्पिट) या परिहरण (रेमिशन) करने की शक्ति राष्ट्रपति वा प्रधान को होगी।

(२) राष्ट्रपति स्थल, विमान और नौ सेना का सर्वोच्च अधिकारी होगा।

(३) भारत-शासन की समस्त अधिशासी कार्यवाही राष्ट्रपति वा प्रधान के नाम से की गई कही जायगी।

(४) संघ के प्रधान मन्त्री का कार्य होगा :—

(क) संघ-कार्यों के शासन सम्बन्धी मंत्रि-मंडल के समस्त निर्णय तथा विधानार्थ प्रस्थापनायें राष्ट्रपति वा प्रधान को पहुँचाना।

(ख) संघ कार्यों की शासन संबन्धी तथा विधानार्थ प्रस्थापनाओं (प्रोपोज़ल्स) सम्बन्धी ऐसी जानकारी जो राष्ट्रपति वा प्रधान मंगावे, प्रस्तुत करना।

(ग) कोई विषय जिस पर मंत्री ने निर्णय दिया हो पर मंत्रि-मंडल ने नहीं दिया हो, राष्ट्रपति वा प्रधान की अपेक्षा करने पर मंत्रि मंडल के सम्मुख रखना।

(५) लोक सभा में जिस पक्ष (दल) का बहुमत होगा राष्ट्रपति वा प्रधान उस पक्ष के नेता की नियुक्ति प्रधान मंत्री के पद पर करेगा तथा प्रधान-मंत्री की मंत्रणा से अन्य मंत्रियों की नियुक्त करेगा।

(६) राष्ट्रपति वा प्रधान प्रांतों के प्रांतशासक (गवर्नर) को नियुक्त करेगा।

वह राज्य संघ के राज प्रमुख के निर्वाचन की स्वीकृति देगा। जहाँ राजा स्वतन्त्र भाव से संघ का सदस्य होगा वहाँ के राजा का अभिषेक राष्ट्रपति वा प्रधान की स्वीकृति के बिना नहीं होगा।

(७) राष्ट्रपति, सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) के प्रधान न्यायाधीश और उच्च न्यायालय के (हाईकोर्ट) मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति करेगा।

(८) राष्ट्रपति वा प्रधान भारत-संघ के राजदूत, महा अंकेक्षक (आडिटर जनरल) महाप्रभिकर्त्ता (अटर्नी जनरल), मुख्य निर्वाचनायुक्त (चीफ एलेक्शन कमिश्नर), आदि सभी उत्तरदायित्व के पदों के अधिकारियों को नियुक्त करेगा।

आपत्कालीन घोषणा और शक्ति (प्रोक्लेमेशन, इमर्जेंसी पावर्स)

(९) बाह्य आक्रमण, अथवा उसकी संभावना या गुरुतर आन्तरिक अशान्ति की अवस्था या उसकी संभावना की स्थिति में राष्ट्रपति वा प्रधान की सयत्कृत्यस्थिति की घोषणा द्वारा राष्ट्र की समस्त शक्ति अपने हाथ में ले लेने का अधिकार होगा।

सयत्कृत्यस्थिति की समाप्ति पर राष्ट्रपति वा प्रधान घोषणा द्वारा अपने तथा-प्राप्त शक्ति को त्याग देगा।

आपत्कालीनस्थिति का घोषणा-पत्र संसद् के दोनों आगारों में प्रस्तावित करना होगा तथा दो मास की अवधि के पश्चात् यह घोषणा स्वतः समाप्त हो जायेगी। किन्तु संसद् संकल्प द्वारा इसकी अवधि में ६ मास की वृद्धि कर सकेगी। तथा पुनः ६ मास को वृद्धि कर सकेगी। इस प्रकार संसद् २ वर्ष तक सयत्कृत्य स्थिति को कायम रख सकती है, अधिक नहीं।

आपत्कालीन अवस्था में राष्ट्रपति नागरिकों के मूल अधिकार की प्रतिष्ठा के लिये न्यायालय में उपस्थित होनेका अधिकार स्थगित कर सकता है।

आपत्कालीन अवस्था में राष्ट्रपति केन्द्र और प्रान्तों के शासन की आर्थिक अवस्था में परिवर्तन कर सकेगा। किन्तु उपरोक्त विषय का अध्यादेश संसद् के आगारों के समक्ष दाखिल किया जायगा।

राष्ट्रपति वा प्रधान और संसद् (पार्लियामेंट)

(१) राष्ट्रपति वा प्रधान वर्ष में कम से कम दो बार संसद् के दोनों आगारों को अलग-अलग या एकत्र अधिवेशन के लिये बुलायेगा तथा उनके सत्र (सेसन) की अन्तिम बैठक तथा आगामी सत्र की पहली बैठक की तिथि नियुक्त करेगा जिनका अन्तर छः मास से अधिक नहीं होगा।

(२) राष्ट्रपति वा प्रधान संसद् के आगारों अथवा किसी आगार को इच्छानुकूल स्थान और समय पर अधिवेशन के लिये बुला सकेगा। वह संसद् का सत्रावसान (प्रोरोग) कर सकेगा तथा लोक सभा का विलयन (डिसोल्यूशन) भी कर सकेगा।

(३) राष्ट्रपति प्रत्येक सत्र के प्रारम्भ में संसद् के आगारों को सम्बोधन (एड्रेस) करेगा तथा अधिवेशन बुलाने का कारण संसद् को बतलायेगा।

(४) राष्ट्रपति वा प्रधान संसद् की बैठक, अथवा आगारों को पृथक बैठकों को, जब चाहे सम्बोधन कर सकेगा।

(५) राष्ट्रपति वा प्रधान संसद् के दोनों या दोमेंसे किसी आगार में, किसी विधेयक (बिल) विषयक अथवा अन्य विषयक सन्देश (मैसेज) भेज सकेगा।

(६) अनुमति— राष्ट्रपति वा प्रधान की अनुमति के बिना कोई भी विधेयक विधि (लाव) नहीं बन सकेगा।

पर राष्ट्रपति, अनुमति के लिये अपने समक्ष उत्थापित विधेयक को अधिक से अधिक छः सप्ताह में, यदि वह विधेयक अर्थ संबन्धी न हो, संदेश के साथ आगारों को, विधेयक पर या उसके किसी उल्लिखित प्रावधान पर पुनर्विचार के लिये लौटा सकेगा। इस प्रकार पुनर्विचारित विधेयक पर अनुमति प्रदान कर राष्ट्रपति विधि बनायेगा।

(७) संसद् के विश्रान्ति काल में अध्यादेश (आर्डिनेंस) के प्रव-

र्तन की राष्ट्रपति या प्रधान की शक्ति—संसद् के दोनों आगारों के सत्र-विश्रान्ति-काल में यदि राष्ट्रपति को निश्चय हो जाय कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिये उसे बाधित करनेवाली परिस्थितियां विद्यमान हैं, तो वह तदनुकूल अध्यादेश प्रवर्तन कर सकेगा।

ऐसे अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा, जो प्रधान द्वारा स्वीकृत संसद् के अधिनियम (एक्ट) का होता है। किन्तु ऐसा प्रत्येक अध्यादेश—

(क) संसद् के दोनों आगारों के समक्ष रखा जायगा, संसद् का पुनरधिवेशन होने के छः सप्ताह के अवसान पर, अथवा, यदि उस कालावधि के अवसान से पूर्व अध्यादेश की प्रतिनिन्दा का संकल्प दोनों आगारों में पारित हो जाता है; तो इनमें दूसरे के पारित होने पर चालू न रहेगा, और—

(ख) राष्ट्रपति या प्रधान द्वारा किसी समय वापस लिया जा सकेगा। (अध्यादेश का प्रवर्तन प्रधान मंत्रिमंडल की सहमति से करेगा।)

आर्थिक विषयों में राष्ट्रपति या प्रधान की शक्ति

(१) प्रत्येक आर्थिक-वर्ष के लिये संसद् के दोनों आगारों के समक्ष राष्ट्रपति या प्रधान, भारत-शासन का उस वर्ष के लिये अनुमानित (इस्टिमेटेड) आय-व्यय का हिसाब (बजट) रखवायेगा, जिसे "वार्षिक आयव्ययक" कहा जायेगा।

(२) राष्ट्रपति या प्रधान के सिफारिश (अभिस्ताव) के बिना किसी भी अनुदान की (ग्रांट) मांग न की जायगी।

(३) यदि किसी आर्थिक-वर्ष में भारत-आगमों (रेवेन्यू) से उस वर्ष के लिये प्राधिकृत व्यय से अधिक व्यय आवश्यक हो जाता है, तो प्रधान, उस व्यय को आगणित (इस्टिमेटेड) राशि को दिखानेवाला अनुपूरक (सप्लिमेन्टरी) मांग आगारों के समक्ष रखवायेगा।

(४) जिस विधेयक के अधिनियम बनाये जाने और प्रवर्तन में लाये जाने

पर भारत के आगमों से व्यय करना पड़ेगा, वह विधेयक संसद् के किसी आगार में पारित न किया जायगा, जब तक इसके लिये प्रधान ने सिफारिश (रिकोमेन्डेशन) न किया हो।

(५) राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना कोई आर्थिक विधेयक संसद् में नहीं रखा जायगा। जब कभी आर्थिक विधेयक राजसभा में रखा जायगा तो राज-सभा उसे १५ दिनों की अवधि में सिफारिश सहित लोक-सभा को वापस करेगी। आर्थिक विधेयकों पर राज-सभा में मत (वोट) नहीं लिया जायगा।

मंत्रि-मंडल (काउन्सिल आव मिनिस्टर्स)

राष्ट्रपति को अपने प्रकार्यों को पालन करने में सहायता देने के लिये एक मंत्रि-मंडल होगा, जिसका प्रमुख प्रधान-मंत्री होगा। राष्ट्रपति के प्रसाद-काल तक प्रधान मन्त्री अपने पद पर आसीन रहेगा, किन्तु व्यवहारतः लोक-सभा में अविश्वास के पारित संकल्प पर मंत्रि-मंडल को पदत्याग करना पड़ेगा। मंत्रि-मंडल लोक-सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा।

राष्ट्रपति या प्रधान, लोक-सभा के सदस्यों को या किसी बाहरी व्यक्ति को, मंत्री नियुक्त कर सकेगा, किन्तु मंत्री नियुक्त बाहरी व्यक्ति यदि छः मास के अन्दर किसी आगार का सदस्य निर्वाचित नहीं होगा तो इसके पश्चात् वह मंत्री नहीं रह सकेगा। प्रत्येक मंत्री, संसद् के किसी भी आगार में उपस्थित हो सकेगा तथा आगार को सम्बोधन कर सकेगा, किन्तु यदि वह उस आगार का सदस्य न हो तो मतदान का अधिकार उसे नहीं होगा।

मंत्रियों का वेतन तथा अधिदेय संसद्, समय-समय पर विधि द्वारा निश्चित करेगी।

प्रधान मंत्री (प्राइम मिनिस्टर, प्रिमियर)

राष्ट्रपति या प्रधान, लोक सभा के बहुमत पक्ष (पार्टी) के नेता को प्रधान-मंत्री नियुक्त करेगा।

राष्ट्रपति प्रधान-मंत्री की मंत्रणा पर दूसरे मंत्रियों को नियुक्त करेगा। प्रधान मंत्री, मन्त्रियों में कार्य विभाग का बँटवारा करेगा। अन्य मंत्रियों के साथ प्रधान मंत्री का व्यवहार प्रमुख सहयोगी के समान होगा।

यद्यपि शासन सम्बन्धी सभी कार्यों में मंत्रि-मंडल लोक-सभा के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी रहेगा, परन्तु राष्ट्रपति पदकारणात् शासन और विधि सम्बन्धी तथ्यों की सम्यक् जानकारी के लिये मन्त्री से सारी बातें पूछ सकेगा। उसे विभिन्न विभागों की कार्यावलि का विवरण राष्ट्रपति या प्रधान को देना होगा, नये उत्थापित विधेयकों की बात भी उसे प्रधान को बतानी पड़ेगी। यदि कोई विभागीय मंत्री, किसी आवश्यक कार्य का गुरुतर उत्तरदायित्व, केवल अपने ऊपर न लेना चाहे, तो वह मंत्रि-मंडल के परामर्श द्वारा उस कार्य का सम्पादन करेगा। प्रधान मंत्री का कार्य राष्ट्रपति को सब तरह से सहायता देना है। आपत्कालीन स्थिति के अभाव में राष्ट्रपति या प्रधान की अपनी शक्ति कुछ नहीं है। वह अपने उत्तरदायित्व पर कुछ नहीं कर सकता। उसे अपने कर्तव्य का निश्चय मंत्रि-मंडल की मंत्रणा एवं विवेचना के आधार पर करना पड़ेगा। वह मंत्रि-मंडल के सिद्धान्त को मान कर चलेगा। किन्तु शासन-कार्य में दोष और त्रुटियां न आने देने के निमित्त वह, पद कारणात् मंत्रियों को सम्मति, प्रोत्साहन और आवश्यकता पड़ने पर चेतावनी भी दे सकेगा।

अध्याय ४

भारत-संघ-संसद् (पार्लियामेंट)

भारत-संघ के लिये एक संसद् होगी, जो राष्ट्रपति वा प्रधान और दो आगारों की बनेगी; जिनके नाम क्रमशः राज सभा और लोक सभा होंगे ।

राज सभा—राज सभा के दो सौ साठ सदस्य होंगे, जिनमें से (क) १२ सदस्य निम्न लिखित विषयों के विज्ञ व्यक्ति राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत होंगे ।

१—साहित्य, कला, विज्ञान और शिक्षा ।

२—कृषि, मत्स्य-पालन एवं तत्संबद्ध विषय ।

३—अभियंत्रणा (इञ्जिनियरी) और वास्तु-शास्त्र ।

४—लोक प्रशासन और सामाजिक सेवाएं ।

(ख) शेष (२६०-१२) सदस्य राज्यों के प्रतिनिधि होंगे । वे, जहां राज्य (स्टेट) के दो आगार हैं, वहां अवरागार (लोअर हाउस) के निर्वाचित सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे । जिस राज्य के विधान मंडल का एक ही आगार है, वहां उसी आगार के सदस्यों द्वारा निर्वाचित होंगे । जिस राज्य के लिये विधान मंडल नहीं है, वहां के राज्य के सदस्य ऐसी रीति से निर्वाचित होंगे, जैसी कि संसद् विधि द्वारा विनिधान करेगी ।

लोक-सभा—लोक-सभा की सदस्य-संख्या पांच सौ से अधिक नहीं होगी । प्रान्तों के ये प्रादेशिक लोक-प्रतिनिधि, मतदाताओं द्वारा अव्यवहित (प्रत्यक्ष) रीति से निर्वाचित होंगे ।

उपरोक्त निर्वाचन के प्रयोजनार्थ भारत के राज्यों का प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजन, वर्गीकरण तथा निर्माण किया जायगा । प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र के

लिये दी जाने वाली प्रतिनिधि संख्या इस प्रकार निश्चित की जायगी कि वहां की जनसंख्या के प्रत्येक ७५,००० के लिये एक से कम, और प्रत्येक ५००००० के लिये १ से अधिक प्रतिनिधि न होगा।

लोक सभा का निर्वाचन बालिग (प्रौढ़) मताधिकार के आधार पर होगा। अर्थात् प्रत्येक बालिग (प्रौढ़ या २१ वर्ष की आयु के) नागरिक को मतदान का अधिकार प्राप्त होगा।

प्रत्येक निर्वाचन के समय प्रतिनिधि संख्या का निश्चय निर्वाचन काल के अव्यवहित-पूर्व की मतगणना से किया जायगा।

भारतीय-संसद् (फेडरल पार्लियामेंट)

पूर्वोक्त राज-सभा (सदस्य संख्या २६०) और लोक-सभा (सदस्य संख्या ५०० से अनधिक) को मिलाकर संसद् कहा जायगा।

राज सभा एक स्थायी सभा होगी। इसका विलयन (डिसोल्यूशन) न किया जायगा, किन्तु प्रति दूसरे वर्ष इसकी एक-तिहाई अथवा उसकी निकटतम संख्या, संसद् से विधि द्वारा निर्णीत प्रावधानों (प्रोवीजन्स) के अनुसार निवृत्त हो जायगी।

राज सभा एक स्थायी संस्था है। (१) सभापति, इसके १२ से अधिक सदस्य मनोनीत नहीं कर सकेगा। (२) प्रत्येक सदस्य-प्रान्त या राज्य के लिये इसकी सदस्य-संख्या इस प्रकार होगी कि प्रत्येक १० लाख से ५० लाख तक की जनसंख्या पर एक सदस्य। इसके ऊपर प्रत्येक २० लाख पर एक सदस्य, किन्तु एक प्रान्त या राज्य के २० से अधिक सदस्य नहीं हो सकेंगे।

भारत का उप-राष्ट्रपति या उप प्रधान, पद कारणात् राज सभा का सभापति होगा।

राज-सभा यथा-संभव शीघ्र, अपने किसी सदस्य को उपसभापति चुनेगी। जब-जब उपसभापति का पद रिक्त होगा, तब-तब वह किसी अन्य सदस्य को उपसभापति चुनेगी।

उपसभापति, सभापति का सहायक होगा। जब कभी उपराष्ट्रपति या उपप्रधान का पद रिक्त होगा तो वह अस्थायी रूप से उसके प्रकार्यों को करेगा। राज-सभा के किसी बैठक में सभापति की अनुपस्थिति में वह सभापतित्व करेगा।

लोक सभा—लोक-सभा की कालावधि पांच वर्षों की होगी। राष्ट्रपति यदि आवश्यक समझे तो वह इससे पहले भी लोक-सभा का विलयन कर सकेगा।

आपत्कालीन स्थिति की घोषणा होने पर राष्ट्रपति या प्रधान, लोक सभा की कार्यविधि में एक वर्ष की वृद्धि कर सकेगा। परन्तु उक्त स्थिति के अन्त होने के अनन्तर लोक सभा के कार्य-काल में छः मास से अधिक वृद्धि नहीं हो सकेगी।

लोक सभा के निर्वाचन क्षेत्र का विभाजन इस प्रकार होगा कि प्रत्येक ७५०००० मतदाता के लिये एक से कम प्रतिनिधि नहीं होगा तथा प्रत्येक ५००००० मतदाता के लिये एक से अधिक प्रतिनिधि नहीं होगा।

संसद् का अधिवेशन—एक वर्ष में भारतीय संसद् के आगारों के कम से कम दो अधिवेशन होंगे। पूर्व अधिवेशन की सत्रान्त और आगामी अधिवेशन के आरम्भ की तिथियों में छः मास से अधिक का अन्तर न होगा।

राष्ट्रपति या प्रधान, आगारों का अधिवेशन बुला सकेगा, अधिवेशन की तारीख और समय निर्दिष्ट कर सकेगा, तथा अवरागार (लोअर हाउस) का विलयन कर सकेगा।

राष्ट्रपति या प्रधान, संसद् के आगारों के पृथक्-पृथक् या एकत्र अधिवेशन में (१) सम्बोधन कर सकेगा, (२) विचारार्थ विधेयक भेज सकेगा। राष्ट्रपति या प्रधान द्वारा प्रेषित विधेयक पर यथासंभव शीघ्र विचार किया जायगा।

राष्ट्रपति या प्रधान संसद् के आगारों के अलग-अलग या एकत्रित अधिवेशन को आरंभ के समय सम्बोधन करेगा। संसद् राष्ट्रपति के भाषण में अधिवेशन बुलाने के कारणों को जान कर उन पर सर्व-प्रथम विचार करेगी।

प्रत्येक मंत्री और महाप्राभिकर्त्ता (अटर्नी जनरल) को भी संसद् के आगारों को सम्बोधन करने का अधिकार होगा, किन्तु यदि वह उस आगार का सदस्य न हो तो मतदान नहीं कर सकेगा।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष (स्पीकर, डिपुटी स्पीकर)

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष—लोक-सभा अपने दो सदस्यों को क्रमशः अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी, जब-जब अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का पद रिक्त हो तब-तब किसी अन्य सदस्य को अध्यक्ष या उपाध्यक्ष, जैसी स्थिति हो, चुनेगी। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसका प्रकार्य उपाध्यक्ष करेगा।

लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का वेतन तथा अधिदेय (पेंशन), संसद् विधि द्वारा निश्चित करेगी।

लोक सभा के संकल्प में बहुमत सिद्धान्त का पालन किया जायगा, यदि किसी विधेयक के पक्ष अथवा विपक्ष में समान मत प्राप्त हो तब अध्यक्ष एक निर्णायक मत (कास्टिंग वोट) दे सकेगा।

लोक-सभा का प्रत्येक सदस्य सदस्यता का स्थान (आसन) ग्रहण करने के पूर्व देश-भक्ति की घोषणा, राष्ट्रपति वा प्रधान या उनके द्वारा नियुक्त पदाधिकारी के सम्मुख करेगा और घोषणा-पत्र पर हस्ताक्षर करेगा।

स्थान रिक्ति—यदि किसी आगार का सदस्य, साठ दिनों की अवधि तक बिना आगार की अनुमति के उसके सब अधिवेशनों में अनुपस्थित रहे तो उसका स्थान रिक्त समझा जायगा; तथा—

(क) यदि वह मंत्री-पद से अन्य किसी शासन के वैतनिक पद पर नियुक्त हो।

(ख) यदि किसी न्यायालय ने उसे पागल घोषित किया हो।

(ग) यदि वह दिवालिया करार किया गया हो।

(घ) यदि उसने किसी विदेशी शासन का कोई पद स्वीकार किया हो, या किसी विदेशी राष्ट्र की नागरिकता या उसकी सुयोग-सुविधा प्राप्त की हो; अथवा—

(ङ) संसद् की किसी विधि द्वारा वह अयोग्य ठहराया गया हो; तो उसका आसन (स्थान) रिक्त समझा जायगा।

सदस्यों के विशेषाधिकार—

(१) प्रत्येक सदस्य को संसद् के आनियामक नियमों, तथा स्थायी आदेशों के अधीन रहते हुए वाक् स्वातंत्र्य होगा।

(२) संसद् या उसकी किसी समिति में कही हुई बात, या दिये गये मत के सम्बन्ध में, किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं चल सकेगी तथा संसद् के किसी आगार के प्राधिकारी (ऑथरिटी) के द्वारा प्रकाशित किसी विवरण-पत्र, पत्र, मतों या कार्यवाहियों के विषय में किसी सदस्य पर इस प्रकार की कार्यवाही न चल सकेगी।

(३) अन्य बातों में जबतक संसद् विधि द्वारा सदस्यों के विशेषाधिकार तथा विमुक्तियों (इम्युनिटीज) का विनिधान नहीं करती है तब तक प्रत्येक सदस्य को ब्रिटिश-लोकसभा के सदस्यों के समान विशेषाधिकार और विमुक्तियां प्राप्त होंगी।

संसद् की कार्य-प्रणाली—

आर्थिक (फाइनान्स) विधेयकों के अतिरिक्त कोई भी विधेयक (बिल) संसद् के किसी भी आगार में प्रारम्भ हो सकेगा। दोनों आगारों की स्वीकृति के बिना कोई भी विधेयक पारित (पास) नहीं माना जायगा

संसद् के सत्रावसान (प्रोरोग) के कारण कोई भी विधेयक व्यपगत

(लैप्सड्) नहीं माना जायगा। राज-सभा में लम्बमान विधेयक लोक-सभा के विलयन पर व्यपगत नहीं होगा। कोई विधेयक जो लोक सभा में लम्बमान है या लोक सभा से पारित होकर राज-सभा में लम्बमान है, लोक सभा के विलयन पर व्यपगत नहीं होगा।

विधि-निर्माण की पद्धतियाँ—कोई मंत्री अथवा संसद् का कोई भी सदस्य अपने आगार में विधेयक उपस्थापित कर सकेगा। पहली दशा में वह राजकीय-विधेयक और दूसरी दशा में अराजकीय-विधेयक कहा जायगा।

पहले विधेयक का नाम और उद्देश्य पढ़कर सुनाया जाता है। इसे प्रथम वाचन (फर्स्ट रीडिंग) कहते हैं। द्वितीय वाचन में विधेयक की अन्तर्हित नीति पर आलोचना होती है। विधेयक की नीति आगार द्वारा अनुमोदित होने पर, यदि आवश्यकता समझी गई तो विधेयक, विशेषज्ञ समिति (सेलेक्ट कमिटि) में भेज दी जाती है। एक निर्दिष्ट अवधि में, उक्त समिति विधेयक के प्रत्येक वाक्य, वाक्यांश और शब्दों तक पर विचार-विवेचना कर उसका प्रतिवेदन (रिपोर्ट) उक्त आगार के सम्मुख उपस्थित करती है। यदि समिति आवश्यकता समझे तो उपयुक्त संशोधन भी प्रतिवेदन (रिपोर्ट) में दे देती है। इसके बाद विधेयक का तृतीय वाचन होता है। इस बार सदस्य गण विधेयक की तथा उसके संशोधन की, यदि ऐसा कोई संशोधन हो, खरी आलोचना करते हैं। तब विधेयक पर मतदान होता है। बहुमत द्वारा पारित (पास्ड) विधेयक स्वीकृति के लिये दूसरे आगार में भेज दिया जाता है। उपरोक्त पद्धति से दूसरे आगार में भी पारित हो जाने पर विधेयक संसद् द्वारा पारित कहा जाता है। तब वह विधेयक अनुमति प्राप्त्यर्थ राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जाता है। राष्ट्रपति यदि चाहे तो अनुमति न देकर विधेयक को स्थगित रख सकता है, या संसद् में पुनर्विचार के लिये संशोधन-समेत प्रति-प्रेषित कर सकता है।

संसद् के आगारों का संयुक्त-अधिवेशन

राष्ट्रपति वा प्रधान यदि आवश्यक समझे तो निम्नलिखित अवस्थाओं में संसद् के आगारों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकेगा—

(१) यदि एक आगार द्वारा पारित विधेयक को दूसरा आगार अस्वीकृत कर दे ; अथवा

(२) विधेयक में किये जानेवाले संशोधनों पर दोनों आगार अन्ततः असहमत रहें ; अथवा

(३) विधेयक प्राप्ति की तिथि से, बिना इसके पारण किये, दूसरे आगार को छः से अधिक मास बीत चुके हों।

विधेयकों पर अनुमति (एस्सेन्ट ऑव बिल्स)

संसद् के दोनों आगारों द्वारा पारित विधेयक पर यदि राष्ट्रपति वा प्रधान (प्रेसिडेंट) की अनुमति मिल जाय तो वह विधेयक (बिल) विधि (लॉव) में परिवर्तन हो जाता है। भारतीय सूचना-पत्र (गजट) में प्रकाशित होने तथा राष्ट्रपति वा प्रधान द्वारा घोषित किये जाने पर विधि प्रभावी हो जाती है।

आर्थिक विधेयक के अतिरिक्त अन्य विधेयकों को राष्ट्रपति वा प्रधान, अनुमति न देकर स्थगित रख सकता है तथा पूरा विधेयक या उसके किसी अंश पर पुनर्विचार के लिये संसद् को वापस कर सकता है। पुनर्विचार के पश्चात् उभय आगारों द्वारा पारित विधेयक पर, यदि संसद् उसमें परिवर्तन न भी करे, राष्ट्रपति वा प्रधान अनुमति प्रदान करेगा।

आर्थिक-विधेयक (मनी बिल)

आर्थिक-विधेयक राज्यसभा में प्रस्थापित नहीं होगा। लोक सभा में पारित होने पर स्वीकृति के लिये राज्य सभा में भेजा जायगा। सभा इसे चौदह दिन के

अधिक रोककर नहीं रख सकेगी। राज्यसभा द्वारा निर्दिष्ट आर्थिक-विधेयक का संशोधन मानना या न मानना लोक-सभा की इच्छा पर अवलंबित है।

यदि राज सभा तीस दिनों के अन्दर आर्थिक विधेयक पारित न कर सके तो भी वह राज सभा द्वारा पारित मान लिया जायगा।

आर्थिक विधेयक की परिभाषा—जिसमें केवल निम्नलिखित विषयों या इनमें से किसी एक विषय का प्रावधान (प्रोविजन) हो उसे आर्थिक विधेयक कहा जायगा।

(क) जिसमें किसी कर का आरोपण, परिहरण, परिवर्तन या आनियमन हो।

(ख) राज्य द्वारा मुद्राऋण लेने का अथवा ब्याज (प्रत्याभूति) देने का अथवा राज्य द्वारा लिये गये अथवा लिये जानेवाले किसी आर्थिक भार से संबद्ध विधि के संशोधन करने का आनियमन हो।

(ग) प्रदाय (सप्लाय)।

(घ) राज्य (प्रान्त या स्टेट) के आगमों (रेवेन्यू) का नियोजन।

(ङ) किसी व्यय को राज्य के आगमों पर प्रभृत (चार्ज्ड) व्यय घोषित करना या ऐसे व्यय की राशि में वृद्धि करना।

(च) राज्य आगमों के खाते या लेखे में मुद्रा प्राप्ति, अथवा ऐसी मुद्रा का समारक्षण या निर्गम अथवा राज्य के खाते (एकाउण्ट) का अंकेक्षण।

सारांश यह कि भारत-शासन तथा संघ के आय-व्यय और अंकेक्षण सम्बन्धी सभी विधेयक आर्थिक विधेयक कहे जायेंगे।

कोई विधेयक आर्थिक विधेयक है अथवा नहीं इस विषय में लोक सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) का निर्णय सर्वमान्य होगा।

आयव्ययक (बजट)

राष्ट्रपति वा प्रधान, प्रत्येक आर्थिक वर्ष के लिये संसद् के दोनों आगारों के

समक्ष भारत-शासन का उस वर्ष के लिये अनुमानित (ईस्टिमेटेड) आय और व्यय का हिसाब रखवायेगा जिसे भारत का वार्षिक आयव्ययक (बजट) के नाम से निर्देश किया जायगा। उसके साथ एक आर्थिक विवरण पत्र भी दाखिल करेगा। जिसे "वार्षिक आर्थिक विवरण" कहा जायेगा।

वार्षिक आयव्ययक में समाविष्ट व्यय के हिसाब में,

(१) संघनित प्रणीवि (कॉनसोलिडेटेड फंड) और

(२) संभावित व्यय की प्रणीवि (कॉण्टिन्जेंसी फंड), जिनमें—

(क) जो व्यय; भारत आगमों (रेवेन्यू) पर प्रभृत व्यय के रूप में वर्णित हैं, उनकी पूर्ति के लिये अपेक्षित राशियां और

(ख भारत आगमों से किये जाने वाले अन्य प्रस्तावित व्यय की पूर्ति के लिये अपेक्षित राशियाँ पृथक-पृथक दिखलाई जावेंगी और आगम लेखे पर होने वाले व्यय का अन्य व्यय से विभेद किया जायगा।

निम्न व्यय भारत आगमों पर प्रभृत्त व्यय होगा:—

(क) राष्ट्रपति के परिलाभ (वेतन) और अधिदेय (अलाउंस) तथा उनके पद से संबद्ध अन्य व्यय।

(ख) राज्य परिषद् के सभापति और उपसभापति तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और अधिदेय।

(ग) भारत शासन का ऋण-प्रभार, उधार लेना, और ऋण–सेवा तथा ऋण-निष्क्रमण पर होने वाले व्यय।

(घ) १ - सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों को तथा उनके सम्बन्ध में दिये जाने वाले वेतन, अधिदेय और उत्तर-वेतन (पेंशन)।

२—संघानीय (फेडरल) न्यायालय के न्यायाधीशों को तथा उनके सम्बन्ध में दिये जाने वाले वेतन और उत्तर वेतन।

भाषा—विधान सभा ने भारत की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी अंकों के साथ हिन्दी और लिपि देवनागरी स्वीकार किया है। किन्तु विधान प्रारंभ होने से १५ वर्षों तक अंग्रेजी को वही स्थान प्राप्त रहेगा जो आज है। हिन्दी प्रयोग के लिये नियुक्त कमीशन की सलाह से राष्ट्रपति, क्रम-क्रम से शासन कार्य में हिन्दी प्रयोग की आज्ञा देगा। इस बीच हिन्दी के विकास के लिये सरकार प्रयत्न करेगी।

भारत-संघ का महांकेक्षक (ऑडिटर जनरल)

भारत का एक महांकेक्षक होगा, जिसको राष्ट्रपति या प्रधान नियुक्त करेगा। यदि सिद्ध दुराचार अथवा असामर्थ्य के कारण निष्काशन के लिये, संसद् के दोनों आगारों द्वारा, उपस्थित मतदाताओं के दो-तिहाई सदस्यों से समर्थित अभिलेख राष्ट्रपति के समक्ष एक ही सत्र में उपस्थित किया जाये तब महांकेक्षक निष्कासित किया जा सकेगा।

पद धारण के पर्यवसान के बाद महांकेक्षक, भारत-शासन के अधीन अथवा किसी राज्य के शासन के अधीन और पद का पात्र न होगा।

महांकेक्षक के कर्मचारियों को, अथवा उनके सम्बन्ध में दिये जाने वाले वेतन, अधिदेय तथा उत्तर वेतन को महांकेक्षक राष्ट्रपति से परामर्श करके नियत करेगा। यह व्यय भारत के आगमों पर प्रभृत होगा।

भारत-शासन का खाता वैसे रूप में रखा जायगा जैसा महांकेक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से विनियान करे। *भारत के राज्यों का कर्तव्य होगा कि वे राज्यों का* खाता महांकेक्षक द्वारा निर्दिष्ट रीति और सिद्धांत के अनुसार रखे।

भारत के महांकेक्षक के भारत-शासन संबंधी प्रतिवेदनों को राष्ट्रपति के समक्ष उपस्थित किया जायगा तथा राष्ट्रपति उनको संसद् के समक्ष रखवायेगा।

——

अध्याय ५

संघके सदस्य राज्य-संघ और उनकी शासन-प्रणाली

प्रान्त, राज्य और राज्य संघ

भारत संघ में नौ प्रांतीय राज्य हैं—बंगाल, मद्रास, बंबई, सयुक्त-प्रांत, बिहार, पूर्वी पंजाब, मध्य प्रांत और बरार आसाम और उड़ीसा। इनका शासन एक प्रांत-शासक (गवर्नर) द्वारा होता है।

मुख्यायुक्त (चीफ कमिश्नर) शासित प्रान्तीय-राज्य—कुर्ग, अजमेर-मेरवाड़ा, दिल्ली, अन्दमन-नीकोबार द्वीप-समूह तथा हिमाचल प्रदेश ; ये पांच मुख्यायुक्त शासित प्रांतीय-राज्य राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त मुख्यायुक्त (चीफ कमिश्नर) के शासन में हैं।

भारतीय राज्य और राज्य संघ—भारत के सभी देशी राज्य, पृथक रूप से या राज्य संघ (यूनियन) बनाकर भारत-संघ के सदस्य बन चुके हैं। इस प्रकार संघ की सदस्यता-प्राप्त सभी राज्यों तथा राज्य संघों को राज्य नाम से सम्बोधित किया जाता है।

इसलिये इस अध्याय में राज्य शब्द से प्रसंगानुसार, भारत के नौ ब्रिटिश-कालीन प्रांत, केन्द्र शासित मुख्यायुक्तों के प्रांत, इकाई रूप में सम्मिलित भारत के देशी राज्य तथा कई राज्यों के मिले हुए राज्य-सघ का तात्पर्य जाना जायगा।

प्रान्त शासक (गवर्नर)—प्रत्येक प्रान्तीय राज्य का एक शासक होगा जिसको राष्ट्रपति वा प्रधान नियुक्त करेगा।

कार्यकाल—प्रान्त शासक अपनी पद-प्रवेश तिथि से पांच वर्ष की अवधि तक

पद धारण करेगा, पर—(१) वह पदत्याग कर सकेगा, तथा (२) विधान के उल्लंघन के अभियोग प्रमाणित होनेपर राष्ट्रपति द्वारा पद से हटाया जा सकेगा।

कोई व्यक्ति, जो भारत संघ का नागरिक (जानपद) है, राज्यों की व्यवस्थापिका का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यताओं से युक्त है, तथा जिसकी आयु ३५ साल से कम नहीं है, प्रांत शासक निर्वाचित हो सकेगा।

पर किसी ऐसे व्यक्ति के लिये उस राज्य का निवासी होना आवश्यक नहीं है।

प्रान्त शासक, संसद या किसी व्यवस्थापिका का सदस्य तथा किसी अन्य वैतनिक पद पर नियुक्त नहीं रह सकेगा। प्रांत शासक का वेतन और अधिदेय उस राज्य की व्यवस्थापिका विधि द्वारा निश्चित करेगी।

प्रान्त-शासक उस राज्य के अधिकार क्षेत्र-गत विधि द्वारा दण्डित व्यक्ति के दण्ड का क्षमण, विलंबन, स्थगन या परिहरण कर सकेगा अथवा दण्डादेश का रोकना परिहरण या लध्वादेशन कर सकेगा।

गुरुतर अशान्ति या आपत्कालीन स्थिति में राष्ट्रपति वा प्रधान, अध्यादेश द्वारा राज्य का शासनसूत्र स्वयं ग्रहण कर सकेगा तथा प्रान्त शासक द्वारा राज्य का शासन करेगा।

राज-प्रमुख—

जहां कई राज्यों का राज्य-संघ भारत-संघ का सदस्य होगा, वहां के राज प्रमुख का निर्वाचन, राष्ट्रपति वा प्रधान की स्वीकृति के बिना मान्य नहीं होगा। राज्य-संघ के राजन्य वर्ग अपने में से एक व्यक्ति को राज प्रमुख और दूसरे को उपराज-प्रमुख चुनेंगे।

प्रान्तीय शासकों के समान राज प्रमुख भी अपने कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्व के निर्वाह में राज्य के मंत्रि-मंडल के मतानुसार चलेंगे। किन्तु शासन-संकट या आपत्कालीन स्थिति में वे राष्ट्रपति वा प्रधान के आदेशानुसार राज्य-शासन की समस्त शक्ति स्वहस्तगत कर लेंगे।

महाराज—जो देशी-राज्य पृथक् रूप से संघ-सदस्यतः की स्वतः एक इकाई (युनिट) होंगे, उस राज्य के महाराजा का राज्य के शासन-यंत्र में वही स्थान होगा जो प्रान्तीय राज्यों में शासकों का है। उनका <u>अभिषेक</u> राष्ट्रपति या प्रधान की अनुमति के बिना नहीं हो सकेगा। शासन कार्यों में उसका कर्तव्य और उत्तरदायित्व राज्य के मंत्रिमंडल की सम्मति और सिद्धान्त के अनुसार शासन करना होगा। अब भारत को उत्तरदायित्वहीन निरंकुश राजा-महाराजाओं की आवश्यकता नहीं है। भारत के स्वाधीन गणतंत्र में राजाओं का स्थान कहां और कितने दिन तक रहेगा, यह कौन बता सकता है?

मंत्रि मंडल—प्रान्त शासक, राजप्रमुख या महाराज के शासन-कार्य में सहायता पहुँचाने के लिये प्रत्येक राज्य में मुख्य-मंत्री के नेतृत्व में एक मंत्रिमंडल होगा। शासन का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व इसी पर होगा। मन्त्रि-मंडल का प्रत्येक मंत्री एक या एकाधिक कार्य-विभाग का कार्य-भार सम्हालेगा।

प्रान्त शासक मुख्य-मंत्री के परामर्श से अन्य मन्त्रियों को नियुक्त करेगा। विधि के अनुसार प्रान्त शासक की इच्छा पर्यन्त वे (मंत्री) पद पर आसीन रहेंगे। परन्तु व्यवहारतः मंत्रि-मंडल पर जब तक व्यवस्थापिका का विश्वास रहेगा तब तक ही वे अपने पदों पर बने रह सकेंगे।

बिहार, मध्य प्रान्त और बरार तथा उड़ीसा राज्यों में वन-जातियों के कल्याण का प्रभारी एक मंत्री रहेगा।

कोई मंत्री, जो छः निरंतर मासों की अवधि पर्यंत राज्य के विधान-मण्डल का सदस्य न रहे, उस अवधि के पश्चात् मंत्री न रहेगा।

प्रान्त शासक राज्य के बहुमत पक्ष के नेता को मंत्रि-मण्डल संघटन के लिये आमंत्रित करेगा, वही व्यक्ति मुख्य-मंत्री होगा। मुख्य मंत्री अपने सह-कर्मियों के नाम की तालिका प्रान्त शासक के समक्ष उपस्थित करेगा। प्रान्त-शासक मुख्य मंत्री के परामर्श से अन्य मंत्रियों को नियुक्त करेगा।

मंत्रि-मण्डल व्यवस्थापिका के प्रति सामूहिक रूप से उत्तरदायी होगा तथा व्यवस्थापिका बहुमत स्वीकृत संकल्प द्वारा मंत्रिमण्डल को हटा सकेगा।

प्रान्त की समस्त शासन-प्रबन्ध वा अधिशासी (एक्जक्यूटिव) कार्यवाही प्रान्त-शासक के नाम से की गई कही जायगी।

सभी राज-प्रमुख और महाराज प्रान्त शासकोंके समान ही, राज्यकी जनताके प्रति उत्तरदायी मंत्रिमण्डलके सिद्धान्त और परामर्शके अनुकूल अपने अधीन राज्योंका शासन करेंगे।

भारत संघ एवं राज्य-शासन

राज्य पर बाहरी शत्रुके आक्रमण करने पर या आक्रमणकी अथवा राज्यके अन्तर्गत गंभीर अशान्तिकी संभावना होने पर, भारत संघका राष्ट्रपति, राज्य और संघकी सुरक्षा तथा शान्ति स्थापनार्थ राज्यके सभी शासनाधिकारों तथा विधि-निर्माणके अधिकारोंको स्वहस्तगत कर लेगा; तथा राज्यके शासनका संचालन स्वयं वहाँ के शासक, राजप्रमुख, महाराज या अन्य किसी नव-नियुक्त अधिकारी द्वारा करा सकेगा।

——

अध्याय ६

संघ के सदस्य राज्य और उनकी व्यवस्थापिका

राज्य और व्यवस्थापिका—संघमें सम्मिलित प्रत्येक राज्यके लिये एक व्यवस्थापिका होगी। जो बंगाल, मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बिहार तथा *पूर्वी-पंजाब राज्योंमें राज्य शासक और दो आगारों से तथा अन्य राज्योंमें राज्य-*शासक और एक परिषद् से बनेगी।

जहां किसी राज्यकी व्यवस्थापिकाके दो आगार हैं, वहां एक विधान परिषद् तथा दूसरा विधान सभाके नामसे ज्ञात होगा। जहां केवल एक आगार है, वहां वह विधान-सभाके नामसे ज्ञात होगा।

प्रत्येक राज्यकी विधान-सभा यदि कालावधि के पूर्व ही विलोप न कर दी जाये, तो अपने प्रथम अधिवेशनकी नियुक्ति तिथि से पांच वर्ष तक चालू रहेगी।

विधान-परिषद् का विलोप नहीं होगा, किन्तु प्रत्येक तीन वर्षके पश्चात् *परिषद् की एक तिहाई सदस्या राज्यको निश्चित विधि से हटा दी जायगी।*

विधान-सभा तथा विधान परिषद्की सदस्यताके प्रार्थीको उम्र क्रमशः २५ और ३५ से कम नहीं होनी चाहिये।

राज्यके उत्तरागार (अपर हाउस) या विधान-परिषद्के निर्माण या विलोपका भविष्यत् कालीन विधान—यदि राज्यके विधान मण्डलके दो आगार हों, तो उत्तरागार (विधान परिषद्) के विलोपके लिये, अथवा यदि एक ही आगार या विधान सभा (लोअर हाउस) ही हो, तो उत्तर-आगारके निर्माणके लिये जब विधान-मण्डलके दो-तिहाई सदस्योंकी स्वीकृति

संकल्प द्वारा, संघ-संसद् से अनुरोध किया जायगा, तो, संसद् विधि द्वारा उत्तर-आगारके विलोप या निर्माणकी, (जैसा अनुरोध होगा) व्यवस्था, करेगी। इस प्रकार राज्यकी वर्तमान राज्य परिषद् तोड़ देने या अवर्तमान परिषद्की निर्माण व्यवस्थाको संघ-विधानका संशोधन नहीं माना जायगा।

विधान सभाकी रचना—प्रत्येक राज्यकी विधान-सभा बालिग (प्रौढ़) मताधिकार के आधार पर प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा चुने हुये सदस्यों से बनेगी। अर्थात् विधान सभाके सदस्योंके निर्वाचनमें प्रत्येक प्रौढ़ (बालिग) नागरिक जिसकी अवस्था इक्कीस वर्षसे कम नहीं है और जो किसी विधिके अधीन, पागल, अपराधी, दुश्चरित्र या दूसरे निषिद्ध दुर्गुणोंसे युक्त नहीं है, मतदानका अधिकारी होगा।

विधान सभामें प्रत्येक एक लाख निर्वाचकका एक प्रतिनिधि सदस्य होगा।

किन्तु किसी राज्यकी विधान सभामें पाँच सौ से अधिक तथा साठ से कम सदस्य नहीं होंगे।

विधान परिषद् की रचना—दो आगारोंवाली व्यवस्थापिकाके उत्तरागार (विधान-परिषद्) के सदस्योंकी संख्या विधान-मण्डलकी सदस्य संख्याके पचीस प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। किन्तु किसी भी विधान-परिषद्की सदस्य संख्या चालीस से कम न होगी।

किसी राज्यकी विधान परिषद्की समस्त संख्याओंमें से—

(१) आधी, निम्नलिखित विषयोंके विशेषज्ञोंमें से चुनी जावेगी।

(क) साहित्य, कला और विज्ञान;

(ख) कृषि, मत्स्य-पालन और तत्संबन्धी विषय;

(ग) अभियन्त्रण (इञ्जिनियरी) और वास्तु-शास्त्र;

(घ) लोक-शासन और सामाजिक सेवायें;

(२) इस राज्यकी विधान-सभाके सदस्य, एक तिहाई, अनुपाति प्रतिनिधान

(प्रोपोर्शनल रिप्रेजेन्टेशन) पद्धतिके अनुसार एकल परिवर्तनशील मत (सिंगल ट्रांसफरेबल वोट) द्वारा निर्वाचित करेंगे।

(१) शेष प्रान्त शासक मनोनीत करेगा।

विधान-परिषद् के सदस्य नौ वर्षों के लिये चुने जायेंगे। विधान परिषद्का विलोप नहीं होगा, पर प्रति तीन वर्षके उपरान्त इसकी एक तिहाई सदस्यों की मियाद व्यवस्थापिका द्वारा निर्मित विधिके अनुसार अन्त हो जायगा।

अधिवेशन—विधान मंडलके आगार या आगारोंके सालमें कम से कम दो अधिवेशन होंगे। प्रथम अधिवेशनकी अन्तिम तारीख और द्वितीय अधिवेशनकी प्रथम तारीखमें छः मास से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिये।

प्रान्त शासक अपनी इच्छा के अनुसार व्यवस्थापिकाके आगार या आगारोंका अधिवेशन बुला सकेगा, अधिवेशन स्थगित कर सकेगा तथा विधान-सभाका विलोप कर सकेगा। वह व्यवस्थापिका के आगारोंको संबोधन कर सकेगा तथा किसी स्थगित विधेयकके सम्बन्धमें संशोधन या सम्मति भेज सकेगा। प्रान्त शासककी सम्मति या संशोधन पर शीघ्र पुनर्विचार करना व्यवस्थापिका का कर्त्तव्य होगा।

आगार के या आगारोंके संयुक्त अधिवेशनके प्रारंभमें शासक उसे सम्बोधन करेगा, तथा अपने संबोधनमें अधिवेशन बुलाने का कारण बतलायेगा। प्रान्त शासकके बतलाये हुए कारणों पर व्यवस्थापिका को सर्व-प्रथम विचार करना होगा।

मंत्रिमण्डल के प्रत्येक सदस्य को तथा राज्य के महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) को व्यवस्थापिका के आगार या आगारों को सम्बोधन करने का अधिकार होगा; परन्तु विधान परिषद् का सदस्य न रहने पर, उन्हें परिषद् की मतगणना में मतदान का अधिकार न होगा।

राज्य-संघ के राज्य प्रमुख का वहां की व्यवस्थापिका में वही स्थान होगा जो प्रान्त शासक का प्रान्तीयराज्य की व्यवस्थापिका (विधान मण्डल) में है।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष—राज्य की विधान-सभा यथासंभव शीघ्र अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपने अध्यक्ष और उपाध्यक्ष चुनेगी। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उसके कर्त्तव्यों का निर्वाह उपाध्यक्ष करेगा।

सभापति और उपसभापति—प्रत्येक राज्य की विधान-परिषद् जहाँ ऐसी परिषद् हो अपने दो सदस्यों को क्रमशः अपने सभापति और उपसभापति चुनेगी। उपसभापति, सभापति की अनुपस्थिति में उनके कर्त्तव्यों का निर्वाह करेगा।

विधान सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष तथा विधान-परिषद् के सभापति तथा उपसभापति को वह वेतन दिया जायगा जो राज्य की विधान सभा और विधान परिषद् विधि द्वारा निश्चित करें।

विधि-निर्माण की पद्धति—राज्य की विधियों के निर्माण की पद्धति संघ की विधि-निर्माण पद्धति के समान ही होगी। विधान परिषद् को विधियों के निर्माण में कुछ विशेष महत्व नहीं प्राप्त होगा। मंत्रि-परिषद् विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होगी। किसी विधेयक के सम्बन्ध में विधान-सभा और विधान परिषद् में मतभेद की अवस्था में विधान सभा में स्वीकृत विधेयक को विधान परिषद् तीन मास से अधिक विलंबित नहीं कर सकेगी। विधान-परिषद द्वारा प्रस्तावित संशोधन को अमान्य कर यदि विधान-सभा पुनः उक्त विधेयक को पास करे तो, दूसरी विधान-परिषद् को वह विधेयक एक मास की अवधि में पास कर देना चाहिये, अन्यथा विधेयक उभय-आगारों द्वारा पास मान लिया जायगा।

आर्थिक-विधेयक विधान-परिषद् में उत्थापित नहीं होगा।

आर्थिक-विधेयक की प्रणाली—प्रत्येक आर्थिक वर्ष के लिये विधान-मंडल के आगार या आगारों के समक्ष, प्रान्त शासक उस राज्य की उस वर्ष के लिये आनुमानिक आय और व्यय के हिसाब का विवरण रखवायेगा जिसे 'वार्षिक आर्थिक विवरण' (एनुअल फिनान्सियल स्टेटमेंट) के नाम से निर्देश किया गया है।

उक्त विवरण के समाविष्ट हिसाबों में—

(क) राज्य के आगमों पर प्रभृत व्यय और उनकी पूर्ति के लिये अपेक्षित राशियां ; और

(ख) राज्य के आगमों से किये जानेवाले अन्य प्रस्तावित व्यय के लिये अपेक्षित राशियां पृथक्-पृथक् दिखाई जायंगी और आगम-खाते पर होनेवाले व्ययका अन्य व्यय से विभेद किया जायगा।

विधान सभामें हिसाब विषयक कार्य-प्रणाली—प्रान्त शासक की सहमति (अभिस्ताव) के बिना किसी भी अनुदान (ग्रांट) की मांग न की जायगी।

राज्य के आगमों पर प्रभृत व्यय से संबद्ध हिसाब विधान-सभामें मतदान के लिये न रखी जायेगी, किन्तु व्यवस्थापिका में इसका पर्यालोचन हो सकेगा।

प्रान्त शासक राज्य के आगमों पर प्रभृत हिसाब (इस्टिमेट) की तथा विधान-सभा द्वारा किये गये अनुदानों को अपने हस्ताक्षर से प्रामाणिक बनायगा। इस प्रकार प्रामाणिक व्ययों की सूची विधान-सभा के समक्ष रखी जायगी, किन्तु इस पर पर्यालोचना या मतदान न हो सकेगा।

उपरोक्त विधि से स्वीकृत व्यय-सूची के अतिरिक्त व्यय की संभावना पर शासक उसके लिये विधान सभा से अनुदान की मांग कर सकेगा तथा विधान सभा उसे मतदान के लिये रख सकेगी।

राज्य की भाषा - किसी राज्य के विधान-मंडल में कार्य, उस राज्य में सामान्यतया प्रयुक्त भाषा या भाषाओं अथवा अंग्रेजी में किया जायगा। यदि किसी भाषा के बोलने वाले सदस्यों की संख्या बीस प्रतिशत से अन्यून होगी तो उस भाषा का प्रयोग वहां के विधान मंडल में अवश्य हो सकेगा।

प्रान्त शासक को अध्यादेश प्रवर्तन की शक्ति—विधान-मंडल के विश्रान्ति-काल में प्रान्त शासक को यदि यह निश्चय हो जाये कि तुरन्त कार्यवाही करने के लिए बाधित करने वाली परिस्थिति विद्यमान है, तो वह तदनुकूल अध्यादेश

(आर्डिनेंस) प्रवर्तन (जारी) कर सकेगा। इस प्रकार प्रवर्तित अध्यादेश व्यवस्थापिका के समक्ष उपस्थित किया जायगा। व्यवस्थापिका की बैठक के छः सप्ताह के बाद अध्यादेश स्वतः प्रभावी न रहेगा। व्यवस्थापिका में पास किये निन्दा सूचक संकल्प द्वारा अध्यादेश छः सप्ताह के पहले भी अप्रभावी हो जायगा। शासक स्वयं किसी समय अध्यादेश प्रत्याहृत कर सकेगा।

आपत्कालीन स्थिति में राष्ट्रपति की शक्ति—राष्ट्रपति संघ या किसी राज्य की शांति-व्यवस्था में गंभीर व्यतिक्रम उपस्थित होने या होने की सम्भावना-जन्य आपत्कालीन स्थिति में उद्‌घोषणा द्वारा राज्य का सम्पूर्ण शासन अपने आप ग्रहण कर सकेगा तथा स्वेच्छानुसार राज्य का शासन कर सकेगा। इस अवधि में उच्च न्यायालय में प्रयुक्त होनेवाली विधियों से भिन्न सभी विधियाँ अप्रभावी (बलहीन, रद्द) हो जायेंगी।

मुख्यांकेक्षक (ऑडिटर इन-चीफ)—राष्ट्रपति या प्रधान महांकेक्षक से परामर्श कर राज्य का एक मुख्यांकेक्षक (ऑडिटर इन चीफ) नियुक्त कर सकेगा। मुख्यांकेक्षक का वेतन तथा उसकी पदावधि की शर्तें उच्च न्यायालयों (हाई कोर्ट) के न्यायाधीशों के समान होंगी। मुख्यांकेक्षक का वेतन और अधिदेय तथा उसके विभाग के अन्य व्यय राज्य के आगमों पर प्रभृत होंगे। मुख्यांकेक्षक अपने पद से अवकाश ग्रहण के पश्चात संघ के महांकेक्षक तथा राज्यों के मुख्यांकेक्षक के पद पर नियुक्त हो सकेगा। भारत-शासन या उसके अधीन राज्य शासनों में अन्य पदों पर उसकी नियुक्ति नहीं हो सकेगी।

—

अध्याय ७

वर्तमान भारत-शासन (इण्डिया गवर्नमेंट)

केन्द्रीय शासन और शासन विभाग

अन्तवर्ती-विधान

भारत की विधान सभा द्वारा प्रस्तुत भारत का नवीन विधान आज कल प्रचलित अन्तवर्ती-विधान को समाप्त कर देगा। यह अन्तवर्ती विधान, भारत शासन अधिनियम १९३५ का भारत स्वाधीनता अधिनियम, १९४७, द्वारा संशोधित हुआ था, परन्तु २६ जनवरी १९५० भारत स्वाधीनता दिवस में प्रजातन्त्री भारत साधारणतन्त्र का जन्म होगा। साधारण निर्वाचन के बाद नया शासनतन्त्र चालू होगा।

वर्तमान भारत-शासन के सम्पूर्ण शासन-कार्य का उत्तरदायित्व भारत-शासन (इंडिया गवर्नमेंट) पर है।

केन्द्रीय-शासन के सभी शासन कार्य गवर्नर जेनरल और उनकी मन्त्रि-मंडल के अधीन है तथा केन्द्र की विधि-निर्माण की शक्ति राष्ट्रपाल (गवर्नर जेनरल) और संसद् के अधीन है।

प्रान्तीय शासनों, प्रान्तीय शासन-विभाग तथा प्रान्तीय व्यवस्थापिका से भेद दिखाने के लिये यहां हम केन्द्रीय शासन, केन्द्रीय शासन-विभाग तथा संसद् आदि शब्दों का व्यवहार करेंगे। केन्द्रीय संस्थाओं का स्वरूप सार्वदेशिक तथा प्रान्तीय संस्थाओं का स्वरूप सर्वतोभावेन प्रांतीय (स्थानीय अर्थात् अपने अधिकृत-क्षेत्र भर की समस्याओं तक ही सीमित है।

राष्ट्रपाल (गवर्नर जेनरल)—१७७३ ई० के नियामक अधिनियम (रेगुलेटिंग एक्ट) द्वारा गवर्नर जेनरल पद की सृष्टि हुई। वारेन हेस्टिंग्ज भारत

के प्रथम राष्ट्रपाल (गवर्नर जनरल) नियुक्त हुये थे। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी भारत के आखिरी गवर्नर जनरल हैं।

१८३३ के शासकीय (चार्टर) अधिनियम द्वारा भारत की सार्वभौम सत्ता ग्रहण कर बंगाल का गवर्नर, भारत का गवर्नर जनरल हुआ था। इंगलैंड के राजा की स्वीकृति के बाद भारत का गवर्नर जनरल १८५८ में वाइसराय हुआ।

ब्रिटिश सम्राट ब्रिटिश मन्त्रि-मंडल के परामर्श से गवर्नर जनरल नियुक्त करता था। २६ जनवरी १९५० ई० को भारत से ब्रिटिश बादशाह बहादुर का सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा और उनका गवर्नर जनरल का स्थान नहीं रहेगा। नये विधान से उनकी यह शक्ति समाप्त हो जायगी तथा वर्तमान राष्ट्रपाल के बदले भारतीय राष्ट्र का कर्णधार हमारे निर्वाचित राष्ट्रपति होंगे।

राष्ट्रपाल और मंत्रिमंडल--भारत की सारी अधिशासी शक्ति राष्ट्रपाल तथा उनके मंत्रि-मंडल में निहित है।

भारत शासन की अधिशासी शक्ति केवल राष्ट्रपाल को नहीं किन्तु सपरिषद् राष्ट्रपाल के हाथ में है। सिर्फ अत्यावश्यक स्थिति में ही राष्ट्रपाल शासन की सारी शक्ति अपने हाथ में ले सकते हैं तथा ऐसी स्थिति में ही मंत्रि-मंडल के परामर्श की अवहेलना कर सकते हैं। कहने का आशय यह है कि भारत का शासन कार्य केवल एक व्यक्ति द्वारा नहीं किन्तु एक मंत्रिमंडल तथा राष्ट्रपाल के सम्मिलित विचार द्वारा होता है।

राष्ट्रपाल का मंत्रि-मंडल

किसी ने कहा है कि भारत का शासन किसी व्यक्ति विशेष द्वारा नहीं, अपितु मंडल द्वारा संचलित होता है। पर भारत के हमारे आज के राष्ट्रपाल को प्रायः कुछ अधिकार प्राप्त नहीं है। वे मन्दिर में स्थापित प्रतिमा मात्र हैं। अपनी बुद्धि या विवेचना के अनुसार कुछ करने की शक्ति उन्हें नहीं है। उन्हें केवल मन्त्रि-मण्डल के परामर्शानुसार काम करना पड़ता है।

भारतीय मंत्रि-मंडल की रचना—'मंत्रि-मंडल के कितने सदस्य हों' इसका निर्देश भारतीय-विधान में नहीं है।

भारतीय मंत्रि-मंडल की शक्ति और कर्त्तव्य—

भारत की युद्ध-कालीन तथा शान्तिकालीन शासन-व्यवस्था किस नीति के अनुसार चलेगी, इसके निर्णय का भार मंत्रि-मंडल पर है। मंत्रि-मंडल के प्रत्येक मंत्री के ऊपर एक या एकाधिक कार्यालय का भार रहता है। प्रधान-मंत्री मंत्रियों के कार्य विभागों का बँटवारा कर देता है। मंत्रि-मण्डल शासन के सिद्धान्तों का निश्चय मंडल के बहुमत से करता है, किन्तु अधिकतर सिद्धांत सर्व-सम्मति से ही स्वीकृत किये जाते हैं। मंत्रि-मण्डल के कार्यों का विवरण-पत्र गुप्त रखा जाता है। सभी मंत्री मंत्रि-मण्डल के सदस्य नहीं हैं। प्रधान मंत्री ही मंत्रि-मण्डल का नेता होता है तथा वही लोक सभा के सदस्यों से अपने सहयोगियों को मनोनीत करता है इस समय भारत की लोक सभा ही भारतीय विधान सभा का कार्य करती है।

मंत्रि मंडल में ऐसा मंत्री भी जिसके ऊपर किसी विशेष कार्यालय का भार न हो रह सकता है तथा किसी कार्यालय का मंत्री होते हुए भी कोई व्यक्ति मंत्रि-मण्डल का सदस्य नहीं भी रह सकता है।

राष्ट्रपाल मंत्रियों को नियुक्त करता है। लोक-सभा के बहुमत-पक्ष का नेता ही प्रधान मंत्री नियुक्त किया जाता है। मंत्रि-मण्डल की कार्यावधि लोक-सभा के विश्वास काल तक ही है। लोक-सभा में अविश्वास के पास किये गये संकल्प पर मंत्रि मण्डल समाप्त हो जाता है।

मंत्रि-मण्डल का अधिवेशन और उसकी कार्य-प्रणाली—प्रायः सप्ताह में एक बार मंत्रि-मंडल का अधिवेशन होता रहता है। यदि राष्ट्रपाल या प्रसीडेंट मंत्रि-मंडल के समक्ष किसी विषय में कोई प्रश्न उपस्थित करता है, या कोई विभागीय मंत्री किसी विषय पर आलोचना करता है तो इन सब

पर मंत्रि-मंडल के अधिवेशन में विचार किया जाता है। किसी विभाग का तथ्य तथा अंक (फैक्ट्स एण्ड फीगर्स) समझाने की आवश्यकता रहने पर उस विभाग का सचिव (सक्रेटरी), मंत्रि-मण्डल के अधिवेशन में उपस्थित रह सकता है। मन्त्रि-मण्डल में मतभेद उपस्थित होने पर प्रायः बहुमत को मान कर निर्णय किया जाता है।

भारत शासन के विभिन्न कार्यालय

विदेशीय विभाग (फॉरेन अफेयर्स)—इस विभाग को पर-राष्ट्र विभाग भी कहते हैं। वैदेशिक राष्ट्रों, संयुक्त राष्ट्र तथा अन्य वैदेशिक संस्थाओं के साथ भारत के सम्पर्क तथा विदेशी राज्यों में स्थित भारतीय दूतावासों तथा भारत-स्थित विदेशी दूतावासों से सम्बन्धित विषयों का तत्वावधान इस विभाग का काम है।

ब्रिटेन तथा अन्य विदेशीय राष्ट्रों की सरकं-रक्षा का कार्य वर्तमान विदेशीय विभाग के अन्तर्गत है।

गृह विभाग—संघ की आन्तरिक शान्ति-व्यवस्था की रक्षा का भार गृह विभाग के ऊपर है। भारत की (एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस) प्रशासी-सेवा विधि और आदेश (लॉ एण्ड-आर्डर), पुलिस (रक्षिदल), कारागार, बन्दी-ग्राम, आभ्यान्तरिक राजनीति आदि विषय गृह-विभाग के अन्तर्गत हैं। शान्तिकालीन देश रक्षा की व्यवस्था भी इसी विभाग का काम है। इस विभाग का संचालन भारत के गृह मंत्री करते हैं।

अर्थ विभाग—यह विभाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योंकि भारत की सारी अर्थनीति इसी विभाग के अन्तर्गत है। राष्ट्र का सम्पूर्ण शासन-यंत्र इसी विभाग पर आधारित है। राज्य-शासन में अत्यधिक धन का व्यय होता है। राज्य के करों और शुल्कों को वसूल कर व्यय की व्यवस्था करना इस विभाग का कर्तव्य

है। अर्थ-मंत्री भारतीय करों का निर्णायक होता है। उसे संघ के विभिन्न विभागों के व्यय पर भी दृष्टि रखनी पड़ती है।

विधि विभाग—समस्त नवीन विधियों के निर्माण के लिये विधेयकों का प्रारूप (ड्राफ्ट) प्रस्तुत करना इस विभाग का काम है। इस विभाग के मंत्री को विधि-मंत्री कहते हैं। वह विधि (ला) संबन्धी सभी बातों में शासक को परामर्श देता है।

वाणिज्य विभाग—भारत का वाणिज्य, आयात और निर्यात शुल्क (ड्यूटी) वाणिज्य सबन्धी तथ्य तथा अंकों का संग्रह करना इत्यादि कार्य इस विभाग के जिम्मे है।

शिल्प उद्योग और प्रदाय (सप्लाय) विभाग—उद्योग-धन्धों, औद्योगिक अनुसन्धान तथा प्रदर्शनी, अयुद्धकालीन उद्योगों की उन्नति तथा युद्धोत्तर पुनर्व्यवस्था आदि की उन्नति का भार इस विभाग पर है।

देशी राज्य विभाग—जिन देशी राज्यों ने भारत संघ में योगदान किया है उनके भारत के साथ सम्पर्क की रक्षा या तत्सम्बन्धी समस्याओं के समाधान का उत्तरदायित्व इस विभाग पर है।

सहायता और पुनर्वास विभाग—भारत में आये हुए शरणार्थी तथा दंगा आदि उपद्रवों द्वारा दुर्दशाग्रस्त लोगों को सहायता तथा उनके पुनर्वास की व्यवस्था करना इस विभाग का काम है।

कृषि विभाग—विभिन्न प्रान्तों एवं राज्यों की कृषि उन्नति इस विभाग के जिम्मे है। देश की कृषि के सम्बन्ध में अनुसन्धान तथा अन्वेषण कराना भी इसी विभाग का कर्तव्य है।

खाद्य (फूड) विभाग—सारे भारत को खाद्य सामग्री का नियंत्रण, संग्रह तथा वितरण करना इस विभाग का विषय है। कृषि विभाग तथा खाद्य विभाग को एक में मिला देने की बात चल रही है।

स्वास्थ्य विभाग—लोगों की स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी बातों का निरीक्षण, प्रबन्ध तथा लोक-स्वास्थ्य को उन्नति के लिये प्रयत्न करना इस विभाग का काम है।

शिक्षा-विभाग—समग्र भारत को शिक्षा नीति का संचालन इस विभाग के द्वारा होता है। यों तो शिक्षण संस्थाओं का संचालन तथा प्रबंध प्रान्तीय-शासनों का काम है परन्तु युद्धोत्तर शिक्षा की उन्नति तथा सुधार के लिये प्रयत्न करना इस विभाग का कर्त्तव्य है।

देश-रक्षा विभाग—भारत की प्रतिरक्षी स्थल, गगन एवं नौ सेना के प्रबंध तथा संचालन का भार रक्षा विभाग पर है। देश की रक्षा का संपूर्ण उत्तरदायित्व इसी विभाग पर है। इन तीनों सैन्य विभागों के अलग-अलग सेनापति हैं।

यातायात (संचार) विभाग—भारत के यान वाहनादि की व्यवस्था, सड़कें तथा रेलवे (अयामार्ग) का देखभाल तथा प्रबध जहाजों की व्यवस्था आदि कार्यों का भार संचार (कम्युनिकेशन) विभाग पर है।

श्रम विभाग—देश के श्रमिकों से संबन्धित विषयों को देखना, सुनना इस विभाग का कर्तव्य है। डाक-टिकट (स्टाम्प) लेखन-सामग्री (स्टेशनरी) तथा मुद्रण (प्रिंटिंग) आदि का नियंत्रण संबन्धी कई छोटे-मोटे कार्यालयों को सम्हालने का भार भी इस विभाग पर है।

खान, सिंचाई तथा विद्युत्विभाग—खानों, जल-विद्युत और सिंचाई की व्यवस्था का उत्तरदायित्व इसी विभाग पर है।

तथ्य और बेतार विभाग—बेतार (आकाशवाणी) संचालन, समाचार पत्र और चलचित्रों द्वारा प्रचार, देश के समाचार पत्रों के समाचारों की छानबीन, शासन के अनुकूल जनमत के बनाना, रखना आदि काम इस विभाग के अधीन है।

शासन कार्यालय तथा विभागीय सचिव (सेक्रेटरी)—प्रत्येक

विभाग के मंत्री के अधीन उस विभाग के कार्यों को संभालनेवाला एक सचिव (सेक्रेटरी) होता है। सचिव के अधीन संयुक्त-सचिव (ज्वायन्ट सेक्रेटरी) प्रतिसचिव (डेप्युटी सेक्रेटरी) उपसचिव (अंडर सेक्रेटरी) तथा सहायक सचिव (एसिस्टेंट सेक्रेटरी) आदि होते हैं। प्रत्येक विभाग में पंजीकार (रजिस्ट्रार, अधीक्षक (सुपरिन्टेंडेंट), लिपिक या किरानी आदि नीचे के कर्मचारी भी रहते हैं। भारत शासन के सभी कार्य भारत-शासन-सचिवालय द्वारा संचालित होते हैं। मंत्रिमंडल शासन नीति निश्चित करता है तथा सचिवालय (सेक्रेटेरियेट) उसे कार्यरूप प्रदान करता है।

विभागीय-सचिव की पद मर्यादा—भारत-शासन के विभागीय सचिवों की पद मर्यादा बहुत कुछ ब्रिटिश शासन के उपसचिव के समान है। सचिव प्रत्येक विषय के सिद्धान्त संबन्धी अपना मतामत मंत्री के सामने प्रगट करता है। अपने विभाग (डिपार्टमेंट) संबन्धी आलोचना के समय वह मंत्रिमंडल में उपस्थित होकर आवश्यक तथ्यों को प्रदर्शित करता है। किन्तु किसी भी अवस्था में भारत के विभागीय सचिव का पद इङ्गलैंड के स्थायी उपसचिव से श्रेष्ठ नहीं है।

सचिव साधारणतः चार वर्ष तक अपने पद पर रहता है।

राजदूत—प्रधान विदेशीय राज्यों में भारत-राष्ट्र का राजदूत रहता है। राजदूत के अभाव में वहाँ का काम देखने के लिये एक भारप्राप्त प्रतिनिधि (शार्ज-दो-अफेयर्स) रहता है। भारतीय राजदूत वहाँ की भारत संबन्धी घटनाएँ भारत के विदेशीय विभाग को जनाता रहता है। इस प्रकार विभिन्न देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सबन्ध तथा आदान-प्रदान की रक्षा भारतीय राजदूत का कर्तव्य है। चीन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, फ्रांस, सोवियत संघ, बेल्जियम, ईरान, मिश्र, तुरुक (टर्की) हालैंड, पोर्तुगाल, ब्रेजिल, अर्जेण्टाइन आदि देशों में भारत के राजदूत

हैं। उपरोक्त देशों के राजदूत भारत में भी हैं। इन सब का संचालन विदेशीय विभाग के द्वारा होता है।

ब्रिटेन स्थित भारतीय हाई कमीश्नर (उच्चायुक्त) का काम—उच्चायुक्त (१) गवर्नर जनरल के आज्ञानुसार भारतीय व्यापार तथा ठेका सम्बन्धी कार्य कर सकता है। उसको आज्ञा प्राप्त कर भारतीय प्रान्तों के व्यापार संबन्धी काम कर देता है।

भारतीय स्टोर विभाग तथा छात्र विभाग वर्तमान हाई कमिश्नर के आधीन है। भारतीय ट्रेडकमिश्नर (वाणिज्यायुक्त) भी उसके कर्मचारियों में हैं। वहाँ के विपत्ति-ग्रस्त भारतीयों की देख-रेख भी हाई कमिश्नर का काम है।

कनाडा, आष्ट्रेलिया, दक्षिण अफ्रिका आदि देशों में भी भारतीय हाई कमिश्नर हैं। ये सभी भारत के विदेशीय विभाग के अधीन हैं।

आशा है प्रजातन्त्री स्वाधीन भारत, हाई कमिश्नर का बदली करके राष्ट्र-दूत नियुक्त करेगा।

अध्याय ८

केन्द्रीय शासन : व्यवस्थापिका

हम भारत के शासन विभाग की आलोचना कर चुके हैं। अब हम केन्द्रीय व्यवस्थापिका की आलोचना करेंगे।

वर्तमान काल में भारत की सभी विधियों के निर्माण की शक्ति भारत के राष्ट्रपाल तथा केन्द्रीय व्यवस्थापिका को अर्पित कर दिया गया है। जब तक नया विधान चालू नहीं हो जाता तब तक यह प्रणाली चलती रहेगी। वर्तमान व्यवस्थापिका को नवीन विधान निर्माण की सारी शक्ति प्राप्त है। जब तक नवीन निर्वाचन द्वारा नवीन संसद् की रचना नहीं होती तब तक वर्तमान विधान सभा ही विधियों का प्रणयन करेगी।

भारतीय विधान सभा की रचना–भारत की वर्तमान विधान सभा प्रान्तों की विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा आनुपातिक निर्वाचन पद्धति के अनुसार गठित हुई है। तथा केन्द्रीय विधान सभाओं में कुछ सदस्य भारत संघ के देशी राजाओं द्वारा मनोनीत या निर्वाचित हुए हैं।

भारतीय विधान सभा की पूर्ण संख्या ३०७ है। इनमें मद्रास ४९, बम्बई २१, बंगाल २१, संयुक्तप्रांत ५५, पूर्वी पंजाब १६, बिहार ३६, मध्यप्रांत और बरार १७, आसाम ८ उड़ीसा ९ दिल्ली ९ अजमेर १, कुर्ग १, हिमाचल प्रदेश १, कच्छ ९, महीसुर ७, त्रिवाकुर ६, बड़ौदा ३, कोचीन १, जयपुर ३, जोधपुर २, बिकानेर १, मध्यभारत ७, सौराष्ट्र ४, मत्स्य २, राजस्थान ४, विन्ध्य प्रदेश ४ पटियाला और पूर्वी पंजाब ३, जूनागढ़ १, कोल्हापुर १, मयूर भंज १, सिक्किम और कूचबिहार १, त्रिपुरा और मणिपुर १, रामपुर और बनारस १, काश्मीर ४

तथा बम्बई, मद्रास, उड़ीसा और मध्यप्रदेश के छोटे राज्यों के १३ सदस्य हैं।

विधान सभा का कार्य— वर्तमान विधान सभा को दो तरह के काम करना था : -

(१) उसने भारत का नवीन विधान प्रस्तुत किया है।

२) भारत के अन्तर्वर्ती काल के लिये आवश्यक विधियां बनाती आई है। यह १९३५ के भारत शासन अधिनियम द्वारा प्रदत्त केन्द्रीय विधान मण्डल के सभी अधिकारों का उपभोग करती है। तथा भारत स्वाधीनता अधिनियम १९४७ के अनुसार विधान निर्माण संबन्धी तथा भारत के आर्थिक विषय संबन्धी शक्तियों का उपभोग करती है। नये विधान के अनुसार नवीन संसद् के संघटन होने पर वर्तमान विधान सभा निवृत्त हो जायगी।

सदस्यता तथा स्थान (आसन) रिक्त—प्रत्येक सदस्य को सदस्यता का स्थान (आसन) ग्रहण करने के पहले सभा की पंजी (रजिष्टर) में हस्ताक्षर करना होता है। सदस्य सभापति को त्याग-पत्र देकर पद त्याग कर सकता है। यदि किसी निर्वाचन क्षेत्र के सदस्य का स्थान किसी कारण से रिक्त हो जाय तो नवीन सदस्य का निर्वाचन, निर्वाचन मण्डली के सकल संक्राम्य मत द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधान पद्धति (प्रोपोर्सनल रिप्रेजेन्टेशन) के अनुसार होगा। भारतीय नागरिक के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति निर्वाचित नहीं हो सकेगा।

सभापति—विधान सभा के सदस्यों ने अपने बीचमें से एक सदस्य को सभापति चुना है। इसका काम विधान सभा के अधिकारों की रक्षा करने की चेष्टा करना, विधान सभा के प्रतिनिधि तथा उत्तरदायी के हैसियत से काम करना तथा सर्वोच्च पद धारण करना है। वे जब तक विधान सभा के सदस्य रहेंगे तभी तक सभापति भी रह सकेंगे। यदि किसी कारण से वे सभा के सदस्य न रहें तो वे सभापति पद से भी निवृत्त हो जायेंगे। विधान सभा के कर्म सचिव तथा सभा के सदस्यों को त्यागपत्र देकर सभापति पदत्याग कर सकेंगे।

उपसभापति—विधान सभा के पाँच उपसभापति होंगे। इनमें से दो उप सभापतियों का निर्वाचन विधान सभा के सदस्य करेंगे। शेष उपसभापति *सभापति द्वारा मनोनीत होंगे।*

यदि कोई उपसभापति पदत्याग करे तो रिक्त स्थान की पूर्ति निर्वाचन द्वारा कर ली जायगी। सभापति की अनुपस्थिति में उनके द्वारा मनोनीत कोई *उपसभापति सभा का सभापतित्व करेगा।* यदि सभापति और सभी उपसभापति अनुपस्थित हों तो सभा उस दिन के कार्य सचालन के लिये अपने किसी सदस्य को सभापति निर्वाचित करेगी।

विधान सभा का कार्यालय—विधान सभा के कार्यालय की दो शाखायें हैं—शासकीय शाखा (एडमिन्स्ट्रेटिव ब्रांच) तथा परामर्शदात्री शाखा (एडमाइजरी ब्रांच)। सभापति द्वारा नियुक्त शासकीय परामर्शदाता परामर्शदात्री शाखा का प्रधान कर्म सचिव होता है। कार्यालय का भार एक सचिव (सेक्रेटरी) के ऊपर रहता है।

कार्य प्रणाली—विधान सभा का अधिवेशन प्रारम्भ होने के पूर्व सचिव, आलोच्य विषयों की एक तालिका (सूची) तैयार करता है तथा इसकी प्रतिलिपियाँ प्रत्येक सदस्य को भेज देता है। इस तालिका (सूची) को दिन की कार्यावलि कहते हैं।

भाषा—हिन्दी और अंग्रेजी विधान सभा की भाषा है। इसके कार्य विवरण भी इन्हीं दो भाषाओं में लिखे जाते हैं।

विधान सभा की शक्ति—ब्रिटेन, फ्रांस आदि देशों की संसद् (पार्लिया-मेंट) सार्वभौम सत्तावती है। इन देशों का शासन विभाग संसद् के अधीन है। इन संसदों की रचना वहाँ के लोक प्रतिनिधियों द्वारा होती है तथा इसके द्वारा वहाँ की जनता की इच्छा-आकांक्षा की अभिव्यक्ति होती है। अतएव संसद् की सार्वभौम सत्ता वाञ्छनीय है। दूसरी ओर शासन विभाग की रचना वैतनिक सेवकों द्वारा

होती है। जनता की इच्छा को कार्य रूप देने के लिये ही इनकी नियुक्ति होती है। ये जनता के वेतन-भोगी सेवक मात्र हैं। अतएव शासन विभाग के ऊपर संसद् का नियंत्रण आवश्यक है।

इसीलिये इन सब देशोंमें संसद् केवल विधि निर्मात्री सभा मात्र नहीं है। अपितु वह वहाँ की सम्पूर्ण शासन-सत्ता तथा आर्थिक व्यवस्था का नियंत्रण करने की शक्ति भी रखती है।

विधान सभा को विधि निर्माण की शक्ति—निम्नलिखित व्यक्ति, वस्तु तथा विषयों के सम्बन्ध में विधान सभा को विधि (कानून) बनाने की शक्ति दी गई है।

(क) भारत के सभी व्यक्ति, सभी न्यायालय, सभी स्थान तथा वस्तु सम्बन्धी;

(ख) भारतके किसी भी भागमें बसनेवाली सारी प्रजा तथा कर्मचारी सम्बन्धी;

(ग) भारत या भारत के बाहर रहने वाली भारतीय नागरिक सम्बन्धी;

(घ) भारतीय स्थल, विमान और नौ सेनायें, तथा इनमें नियुक्त सभी व्यक्तियों (वे जहां कहीं भी रहें) के सम्बन्ध में ;

(ङ) भारत में प्रचलित किसी भी विधि को परिवर्तित करना या रद्द कर देना तथा भारतीय विधान सभा जिन व्यक्तियों के सम्बन्ध में विधि बना सकती है, उनके सम्बन्ध में प्रयुक्त होने वाली विधि में परिवर्तन करना या रद्द कर देना।

विधान सभा की विधि सम्बन्धी शक्ति—राष्ट्रपाल की पूर्व प्राप्त स्वीकृति के बिना विधान सभा में निम्नलिखित विषयों में कोई विधेयक उत्थापित करना अवैध माना जायगा:—

(१) भारतीय आगम तथा शासन-ऋण;

(२) भारतीय प्रजा का धर्माचरण;

(३) भारत की स्थल, जल और विमान सेना के किसी विशेष अंश या इनकी शृङ्खला की रक्षा;

(४) विदेशी राज्य संबंधी;

(५) जिन प्रान्तीय विषयों में विधि निर्माण की शक्ति भारतीय विधान सभा को नहीं दी गई है ऐसे किसी प्रान्त का नियंत्रण संबंधी;

(६) प्रान्तीय व्यवस्थापिका की किसी विधि का संशोधन करना या उसे रद्द करना।

(२) **आर्थिक विषयों की शक्ति**—प्रत्येक स्वाधीन देश में आर्थिक विषय वहाँ के संसद् द्वारा नियंत्रित होते हैं। जनता कर देती है। इसलिये करदान, कर की वसूली तथा प्राप्त आगम के व्यय के सम्बन्ध में जनता की स्वीकृति आवश्यक है। संसद् के सदस्यों द्वारा जनता अपना मतामत व्यक्त करती है।

आयव्ययक (बजट)—प्रत्येक वर्ष के आयव्यय का आनुमानिक हिसाब, एक विवरण (रिपोर्ट) के साथ विधान सभा के समक्ष रखा जाता है। इस आनुमानिक हिसाब को आयव्ययक (बजट) कहते हैं।

(१) राज्य के आगम का अधिकांश धन करों द्वारा प्राप्त होता है। आगम संबन्धी विधेयकों को मुद्रा विधेयक (मनी बिल) कहते हैं। कोई कर लगाने के पहले विधान सभा में तत्संबंधी विधेयक पास (पारित) कराना होता है।

(२) ब्रिटेन और फ्रांस की तरह, भारत के आगमों पर प्रभृत्त सभी व्यय, विधान सभा में मतदान के लिये रखा जायगा। विधान सभा को इन सभी व्ययोंके स्वीकार करने, अस्वीकार करने तथा इन में कमी करने का अधिकार है।

(३) **शासन संबन्धी शक्ति**—स्वाधीन देशों की संसद् वहां के शासन विभाग का नियंत्रण करती है। शासन विभाग के कर्मचारीगण वहां की जनता के वैतनिक सेवक मात्र हैं। अतएव जनसाधारण के प्रति अपने कर्तव्यों को यथोचित रीति से संपादन न करने पर उन्हें अपने पदों पर रहने का अधिकार नहीं है।

विधान सभा ही जनता की प्रतिनिधि है। अतएव विधान सभा के हाथ में इनकी बहाली और बरखास्तगी का रहना युक्ति संगत तथा आवश्यक है।

भारत में ब्रिटिश राज्य काल में नौकरशाही ही सर्वेसर्वा थी। जन सेवक (शासन-कर्मचारी) देश के स्वामी के मत का व्यवहार करते थे। नयी व्यवस्था में विधान सभा शासन विभाग की पूर्ण रूप से अधिकारिणी है। किन्तु यह सत्य है कि अभी तक भारतीय जन सेवकों (शासन विभाग के कर्मचारियों) के हृदय से नौकरशाही की प्रभुता का प्राचीन भाव पूर्णरूप से हटा नहीं है।

भारत-शासन अपने शासन कार्यों में भारती विधान सभा के प्रति उत्तरदायी है। उत्तरदायित्व पूर्ण शासन व्यवस्था के विषय में यदि शासन (गवर्मेण्ट) के प्रति विधान सभा का विश्वास न रहे तो शासन को पदत्याग करना पड़ेगा।

——०——

अध्याय ९

केन्द्रीय शासन तथा प्रान्तीय शासन के बीच शासन विषयों का विभाजन

भारत शासन विधान १६१६ —१९१९ के शासन विधान में भारत के सामरिक एवं असामरिक शासन का नियंत्रण एवं परिचालन की जिम्मेवारी सपरिषद् गवर्नर जनरल के हाथ में थी। गवर्नर जनरल इंगलैंड स्थित भारत-मंत्री के निर्देश से शासन कार्य चलाते थे। उस समय भारत का शासन एक केन्द्रीय (एकांगीय) होते हुए भी शासन-सुविधा की दृष्टि से केन्द्र और प्रान्तों के बीच शासन-विषयों का विभाजन किया गया था। देश रक्षा, डाक और तार विभाग, मुद्रा शुल्क (बलि) देशी राज्य आदि सार्वदेशिक स्वार्थ सम्बन्धी विषय केन्द्र के अन्तर्गत रखे गये थे। प्रादेशिक शासन व्यवस्था, शिक्षा, स्वायत्त-शासन, विधि और व्यवस्था की रक्षा, इत्यादि विषयों का परिचालन प्रान्तीय शासन के अधीन रखे गये। किन्तु प्रान्तीय सरकारों को सदा केन्द्रीय सरकारों के अनुवर्ती रूप में काम करना होता था।

१६३५—प्रान्तों के स्वशासन और केन्द्र में संघ शासन के प्रस्ताव के कारण उपर्युक्त पुरानी व्यवस्था में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया। १९३५ ई० के भारत शासन विधान में केन्द्र तथा प्रान्तों के विधि निर्माण के विषयों की तालिका में स्पष्ट रूप से विभाजन कर दिया गया। स्थिर यह हुआ कि (१) कुछ विषयों के सम्बन्ध में केवल केन्द्रीय व्यवस्थापिका, (२) कुछ विषयों में केवल प्रान्तीय व्यवस्थापिका, तथा (३) कुछ विषयों में दोनों ही व्यवस्थापिका-सभाएँ, विधि निर्माण कर सकेंगी।

१९३५ ई० के विधान के संघ शासन का अंश भारतीय जनमत के तीव्र विरोध के कारण व्यवहार में न आ सका।

नवीन शासन विधान में विषय विभाजन—नवीन शासन विधान में विषयों का विभाजन निम्नलिखित रीति से किया गया है :—

केन्द्रीय या संघीय तालिका (युनियन और फेडरल सब्जेक्ट्स)—भारत संघ की व्यवस्थापिका सभा केवल संघीय-तालिका में उल्लिखित विषयों पर विधि निर्माण कर सकेगी तथा इन विषयों पर संघ के सदस्य राज्यों को विधि-प्रणयन का कोई अधिकार नहीं होगा। संघीय तालिका इस प्रकार है :—

(१) रक्षा विभाग (देश रक्षा व्यवस्था तथा सेनाओं के सहित)।

(२) विदेशीय विभाग, युद्ध और शान्ति. कूटनीतिक संपर्क दूत विनिमय, वाणिज्य प्रतिनिधित्व, संयुक्त राष्ट्र संघ।

(३) मुद्रा का प्रचलन तथा उसकी ढलाई, तथा रिजर्व बैंक आव इण्डिया।

(४) संघ की सम्पति, शासन ऋण तथा उत्तर वेतन (पेंशन)।

(५) डाक और तार विभाग, अयोमार्ग (रेलवे) जलपथ, पोत (जहाज) बड़े-बड़े बन्दरगाह (पत्तन) तथा ज्योतिस्तम्भ (लाइट हाउस)।

(६) विदेशीय वाणिज्य तथा भारत में स्थायी रूप से बसी हुई विदेशी प्रजा।

(७) जन गणना, तथ्य तथा अंक विभाग, भू-मापन या पैमाइश, (सर्वे). केन्द्रीय कौतुकालय या जादूघर (म्यूजियम) तथा अनुसंधान संस्थायें।

(८) अधिकोष व्यवसाय (बैंक बिजिनेस), बीमा (आगोप) धनादेश (चेक) अर्थ पत्र (नोट), विपत्र (बिल) तथा विनिमय (एक्सचेंज)।

(९) सीमित समितियाँ (चौथ कारबार), तथा उसके ऊपर का कर।

(१०) काशी, अलीगढ़ तथा दिल्ली विश्वविद्यालय, तथा दूसरे राष्ट्रीय महत्व के विश्वविद्यालय।

(११) केन्द्रीय शासन के अधीन कर्मचारियों की नियुक्ति तथा लोक-सेवा-आयोग (पब्लिक सर्विस कमीशन)।

(१२) केन्द्रीय शिल्पोन्नति, एकत्व अधिकार (पेटेन्ट राइट) तथा पण्य चिह्न (ट्रेड मार्क)।

(१३) पेट्रोल, नमक तथा अफीम (अहिफेन)।

(१४) भारतीय व्यवस्थापिका सभा का निर्वाचन।

(१५) सर्वोच्च न्यायालय।

(१६) भारतीय व्यवस्थापिका के सभापति तथा सदस्य का निर्वाचन।

राज्यों या प्रान्तों की तालिका (स्टेट और प्राविंसियल सबजेक्ट्स)—केवल संघ में योग देने वाले (संघ के सदस्य) राज्यों तथा प्रान्तों को निम्नलिखित तालिका के विषयों पर विधि बनाने का अधिकार होगा। तथा उस राज्य या प्रान्त के अधिकार क्षेत्र में ही तथा प्रस्तुत विधियोंका प्रभाव होगा। इस तालिका के विषयों पर संघ व्यवस्थापिका को विधि प्रणयन का अधिकार नहीं होगा :—

(१) विधि और व्यवस्था (आदेश)।

(२) सर्वोच्च न्यायालय के अतिरिक्त अन्य न्यायालय तथा न्याय।

(३ , कारागार (जेल)।

(४) अस्पताल (चिकित्सालय) आरोग्य मन्दिर, (सेनिटोरियम) इत्यादि लोक-संस्थायें।

(५) प्रान्तीय शासन के अधीन सेवकों की नियुक्ति तथा प्रान्तीय-लोक-सेवा-आयोग (पब्लिक सर्विस कमीशन)।

(६) प्रान्तीय सिचाई विभाग।

(७) प्रान्त के धन से परिचालित कौतुकालय (जादूघर) तथा पुस्तकालय।

(८) प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्यों का निर्वाचन।

(९) जन स्वास्थ्य तथा स्वास्थ्य रक्षा की व्यवस्था।

(१०) शिक्षा।

(११) स्थानीय योगायोग (आवगमन) की व्यवस्था।

(१२) कृषि।

(१३) वन।

(१४) खनि (खदान)।

(१५) मत्स्य पालन।

(१६) दरिद्रों की सहायता तथा बेकार।

(१७) सहकारी समिति।

(१८) बाजी और जुआ (द्यूत)।

(१९) प्रान्तीय तथ्य और अंक विभाग।

(२०) भू-आगम (मालगुजारी या लैण्ड रेवेन्यू)।

(२१) कृषि आयकर निर्धारण।

(२२) जन्म, मृत्यु और उत्तराधिकार कर।

(२३) प्रति व्यक्ति (पर कैपिटा) कर।

(२४) व्यापार और वाणिज्य कर।

(२५) भोज्य, आमोद-प्रमोद, बाजी, जुआ (द्यूत) तथा विलास-वस्तुओं पर कर,

समानाधिकार तालिका (कांकरेन्ट लिस्ट आव सब्जेक्ट्स)— निम्नलिखित विषयों पर संघ व्यवस्थापिका तथा राज्यों या प्रान्तों की व्यवस्थापिका को विधि निर्माण का समान अधिकार होगा:—

प्रथम अंश

(१) दण्ड विधि (फौजदारी कानून तथा दण्ड-कार्य प्रणाली)।

(२) दिवानी या व्यवहार कार्य प्रणाली (सिविल प्रोसिज्योर)।

(३) साक्ष्य (गवाही) और शपथ।
(४) विवाह और विवाह विच्छेद।
(५) ठेका (कान्ट्राक्ट)।
(६) दिवालियापन या शोधक्षमता (इनसाल्वेंसी)।
(७) मुद्रणालय (छापाखाना)।
(८) विधि, चिकित्सा तथा अन्य पेशा (वृत्ति)।
(९) विषाक्त तथा खतरनाक औषधि, अम्ल इत्यादि।

द्वितीय अंश

(१०) स्वास्थ्य बीमा (स्वास्थ्य-प्रश्रविदा)।
(११) वार्धक्य का उत्तरवेतन (बुढ़ापे का पेंसन)।
(१२) कारखाने (निर्माणी) का अधिनियम (फैक्टरी एक्ट)।
(१३) श्रमिक कल्याण।
(१४) श्रमिक संघ (मजदूर यूनियन) और मालिक-मजदूर के झगड़े।
(१५) विद्युत (बिजली)।
(१६) चलचित्र अनुमोदन (फिल्मों को आज्ञादान)।
(१७) आर्थिक तथा सामाजिक परिकल्पनायें।

साधारण अवस्था में संघ प्रान्तीय विषयों में हस्तक्षेप नहीं करेगा किन्तु देश की आन्तरिक अशान्ति या युद्ध कालीन स्थिति में राष्ट्रपति सारे भारत में शान्ति तथा सुरक्षा को संकट ग्रस्त घोषित कर आपत्कालीन घोषणा द्वारा प्रान्तों के सभी विषयों के नियंत्रण का अधिकार संघ को दे सकेगा। तथा आपत्कालीन विधि बना सकेगा।

अवशिष्ट शक्ति—तालिका में जिन विषयों का उल्लेख नहीं है वे संघ की व्यवस्थापिका के अधिकार में होंगे।

समानाधिकार विषयों की तालिका के सम्बन्ध में केन्द्र तथा प्रान्तों या राज्यों में विरोध की स्थिति आ पड़ने पर प्रान्त या राज्य का निर्णय अमान्य हो जायगा तथा संघ व्यवस्थापिका की विधि ही मानी जायगी।

——

अध्याय १०

प्रान्त समूह

पहले केन्द्रीय शासन सारे भारत का सर्व सत्ताधारी था। प्रान्तीय-शासन सभी विषयोंमें केन्द्र के अधीन थे।

'मान्टेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में कहा गया कि प्रान्तोंको आधार मानकर ही देशमें उत्तरदायी शासनकी व्यवस्था करनी होगी।

प्रान्तोंको स्वायत्तशासन प्रदान करने का अर्थ है, उन्हें विधि-निर्माण, प्रान्तीय शासन व्यवस्था, तथा आर्थिक विषयों की यथा संभव स्वाधीनता दी जाय। इस प्रकार स्वाधिकार प्राप्ति को 'प्रान्तीय उत्तरदायी शासन' कहा जाता है।

प्रान्तीय उत्तरदायी शासनके पक्षमें तर्क

(१) प्रान्तीय उत्तरदायी शासन की मांग प्रान्तोंकी भौगोलिक, अर्थनैतिक तथा जातीय (racial) रेसियल संख्याओंके आधार पर अवलंबित है।

(२) क्रम-क्रमसे बढ़ती हुई प्रान्तीय स्वाधीनता (प्रान्तीयता) की भावना इस मांगको अधिक दृढ़ कर रही है।

(३) वर्तमान भाषाओं के आधार पर प्रान्तोंका पुनर्गठन हो रहा है। बिहारी, पञ्जाबी, मराठे, आसामी, करनाटकी आदि प्रत्येक जाति अपनी अपनी अवस्था में शीघ्र उन्नतिके पथ पर अग्रसर होना चाहती है। ऐसा प्रान्तीय उत्तरदायी शासन के बिना संभव नहीं है।

वर्तमान प्रान्त समूह

प्रान्तनाम	मंत्रिमंडल	विधानसभाकी स्थान (सीठ) संख्या	प्रधान मंत्री
आसाम	कांग्रेस	६८	श्री गोपीनाथ बारदोलई

बंगाल	कांग्रेस	८४	डा० विधान चन्द्र राय
बिहार	कांग्रेस	१५२	श्री श्रीकृष्ण सिंह
बम्बई	कांग्रेस	१७२	श्री बि० जी० खेर
मध्य प्रदेश और बरार	कांग्रेस	१११	श्री रविशङ्कर शुक्ल
मद्रास	कांग्रेस	२१२	श्री ओ० पी० रेड्डी
उड़ीसा	कांग्रेस	६०	श्री हरेकृष्ण मेहताब
पूर्वी पंजाब	कांग्रेस	७५	डा० गोपीचन्द भार्गव
संयुक्त प्रांत	कांग्रेस	२२५	श्री गोविन्दबल्लभ पंत

पाकिस्तान—पाकिस्तानमें प्रान्तीय शासक द्वारा शासित ४ प्रान्त हैं—पूर्वी बंगाल (पूर्वी पाकिस्तान) सिन्धु पश्चिमी पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत। केवल एक बेलूचिस्तान, मुख्यायुक्त (चीफ कमिश्नर) शासित प्रान्त पाकिस्तान में है।

अध्याय ११

वर्तमान प्रान्तीय शासन : शासन विभाग

प्रान्त शासक—अस्थायी शासन-विधान (*भारतीय स्वाधीनता अधिनियम* १९४७) के अनुसार इङ्गलैंड का राजा, भारत सरकार के परामर्श से प्रान्त शासक नियुक्त करता था। किन्तु १९५० में भारतीय प्रजातन्त्र की स्थापना के बाद *प्रान्तीय शासकों की नियुक्ति भारत के राष्ट्रपाल करेंगे।*

प्रान्त शासक प्रान्तके सर्व श्रेष्ठ शासन कर्ता होते हैं। नियुक्तिके समय कार्य संचालनार्थ इन्हें एक निर्देश (इन्सट्रुमेंट आव इन्सट्रक्सन्स) दिया जाता है। *सामान्यतया मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुकूल शासक को चलना पड़ता है।* वे प्रान्तके महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) नियुक्ति करते हैं।

पुराने शासन विधान में प्रदत्त विशेषाधिकार के कारण प्रान्त शासक वास्तविक अर्थमें सर्वोच्च सत्ताधारी थे, किन्तु १९४७ ई० से विशेषाधिकार की समाप्ति के कारण वे केवल वैधानिक शासक रह गये हैं।

मंत्रि मंडल—शासन कार्यमें प्रान्त शासक को सहायता तथा परामर्श देने के लिये प्रत्येक प्रान्तमें एक मंत्रिमंडल है। *मंत्रियों की संख्या विधान द्वारा* निश्चित नहीं की गई है।

प्रान्त-शासक अपने मतानुसार प्रान्त की विधान सभा के बहुमत पक्षके नेताको मुख्य मंत्री या चीफ मिनिस्टर नियुक्त करते हैं तथा मुख्य मंत्री के परामर्शके अनुसार अन्य मंत्रियोंको नियुक्त करते हैं। कोई मंत्री यदि विधान सभा का सदस्य न रहे तो उसे छः महीनों के अन्दर सदस्य निर्वाचित होना होगा। अन्यथा इस अवधिके बाद वह मंत्री नहीं रह सकेगा।

प्रान्त शासक और मंत्रिसभा का सम्बन्ध—प्रान्तीय शासन प्रान्त शासक के नाम पर मन्त्रिमण्डलके द्वारा परिचालित होता है। सभी क्षेत्रोंमें प्रान्त शासक केवल वैधानिक शासक के रूपमें काम करते हैं।

वस्तुतः मंत्रिगण ही शासन करते हैं। व्यवस्थापिकाके समक्ष शासन कार्य के निमित्त मंत्रिमण्डल ही उत्तरदायी है। साधारणतः प्रत्येक मंत्री अपने अपने कार्यालय के शासन को परिचालना करते हैं। सच तो यह है कि प्रान्त शासक इङ्गलैंडके राजा के सामान वैधानिक शासक भर है। शासन कार्य की सुविधा के लिये मुख्य मंत्री अन्य मंत्रियोंमें कार्यालयों का विभाजन कर देते हैं।

मंत्रि मंडल और व्यवस्थापिका—नवीन शासन विधान के अनुसार प्रान्त शासक मंत्रियोंको नियुक्त करते हैं। ऐसा व्यक्ति, जो व्यवस्थापिका का सदस्य नहीं है, यदि मंत्री नियुक्त किया जाय तो उसे छः मास की अवधिमें व्यवस्थापिका का सदस्य निर्वाचित होना होगा।

प्रान्त शासक व्यवस्थापिका के बहुमत पक्षके नेता को मुख्य मंत्री नियुक्त करते हैं। मंत्रि मण्डल का कार्यकाल, विधानतः प्रान्त शासक की इच्छा पर निर्भर है, किन्तु वस्तुतः वह व्यवस्थापिका के विश्वास काल तक है। व्यवस्थापिका का विश्वास न रहने पर मंत्रि मण्डल को पदत्याग करना होता है। मंत्रिमण्डल अपने शासन कार्य तथा नीति के सम्बन्धमें व्यवस्थापिकाके प्रति सामूहिक रूपसे उत्तरदायी होता है इस प्रकार वह व्यवस्थापिकाके द्वारा नियन्त्रित है।

व्यवस्थापिका विधि द्वारा मंत्रियों का वेतन निश्चित करती है। प्रान्तीय शासन विषयक मंत्रियों के उत्तरदायित्व को मंत्रि मंडल का उत्तरदायित्व (मिनिस्ट्रियल रिस्पोन्सिब्लिटि) कहा जाता है।

प्रान्तोंकी शासन नीति तथा शासन कार्यों के लिये मंत्रिगण उत्तरदायी हैं।

प्रान्त-शासक की शक्ति

प्रान्त शासन के सभी कार्य प्रान्त शासक के नाम से किये गये कहे जाते हैं। पर वस्तुतः मंत्रिगण ही कार्योंके संचालक होते हैं।

व्यवस्थापिका सम्बन्धी शक्ति—(क) व्यवस्थापिका के विश्रान्ति कालमें, आवश्यक प्रयोजन समझने पर प्रांत शासक मंत्रि मण्डलके परामर्श से अध्यादेश (आर्डिनेन्स) प्रवर्तित (जारी) कर सकते हैं। प्रान्तीय व्यवस्थापिका का अधिवेशन प्रारम्भ होने के छः सप्ताह बाद ऐसे अध्यादेश रद्द हो जाते हैं। व्यवस्थापिका यदि चाहे तो छः सप्ताह के पहले भी अध्यादेश को रद्द कर दे सकती है। सत्य तो यह है कि ऐसे अध्यादेशोंके प्रवर्तन का उत्तरदायित्व भी असलमें मंत्रिमंडल पर ही है। क्योंकि उसी के परामर्श के अनुसार प्रांत शासक अध्यादेश प्रवर्तित करते हैं।

(ख) **विशेषाधिकार (विटो)**—*प्रांत शासक व्यवस्थापिका द्वारा पास किये* हुए (पारित) किसी विधेयक को स्वेच्छानुसार अनुमति दे सकते हैं, नहीं दे सकते हैं अथवा विवेचना के लिये राष्ट्रपाल के पास भेज सकते हैं। पहले विधान में प्रान्त शासक को व्यवस्थापिका की राय को रद्द करने का जो विशेषाधिकार (विटो) प्राप्त था वह अब नहीं रहा। लोक-निर्वाचित व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत विधेयक को प्रांत शासक 'वैधानिक शासक के रूपमें स्वीकार कर लें, अस्वीकार न करें। हां, विशेष परिस्थितिमें वे पुनर्विचार के नाम पर कुछ समय निकाल ले सकते हैं। पूर्णतः अस्वीकार करना तो गणतंत्र से विरोध करना होगा।

आर्थिक विषय सम्बन्धी शक्ति—प्रांत के आगम से व्यय के लिये धनकी मांग प्रांतीय व्यवस्थापिका सभा से प्रांतशासकके नाम पर की जायगी। मांग को स्वीकार अस्वीकार किम्बा कम करके स्वीकार करने का अधिकार व्यवस्थापिका को होगा। किन्तु प्रांत शासक ही अर्थ व्ययकी मांग कर सकेगा। प्रांतीय व्यव-

स्थापिका द्वारा स्वीकृत आयव्ययके (बजट) को प्रांत शासक अनुमति प्रदान करेगा।

नवीन शासन विधानमें प्रान्त शासक का स्थान—भारतीय विधान सभा द्वारा स्वीकृत नवीन विधानमें प्रांत शासक की नियुक्ति का अधिकार राष्ट्रपतिको दिया गया है। विधानके प्रारूप (ड्राफ्ट) में प्रांत शासक के निर्वाचन अथवा निर्वाचित चार व्यक्तियोंमें एक को राष्ट्रपति द्वारा नियुक्तिका प्रावधान (प्रोवीजन) दिया गया था। किन्तु विधान सभाने इस अनुच्छेद (आर्टिकल) में प्रान्त शासक के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष निर्वाचनके प्रावधानको हटा कर (अस्वीकार कर) नियुक्ति का पूरा अधिकार राष्ट्रपतिके हाथमें दे दिया है।

प्रांतीय शासनको सुदृढ़ रखनेके उद्देश्य से विधान सभा द्वारा ऐसी व्यवस्था की गई है। ताकि प्रांतोंमें मंत्रियोंके शासनमें जब अव्यवस्था या अशांकी पूर्ण त्रुटियाँ उत्पन्न हों और इनके कारण देशकी एकता पर आंच आवे तो राष्ट्रपति प्रांतके शासन को अपने हाथमें सरलता पूर्व ले सकें।

अध्याय १२

वर्तमान प्रान्तीय शासन, विधि विभाग

प्रान्तीय आइन सभा या विधान मंडल—प्रत्येक प्रांतमें प्रांत शासक और व्यवस्थापिका को मिलाकर एक विधि बनाने वाली संस्था (विधान मण्डल) गठित हुई है। मद्रास, बम्बई, संयुक्त-प्रांत तथा बिहारमें प्रांत शासक तथा दो आगारों, १-विधान परिषद् (लेजिस्लेटिव कौंसिल) २-विधान सभा (लेजिस्लेटिव एसेम्बली) को लेकर विधि बनाने वाली संस्था (विधान मण्डल) बनी है।

प्रान्तीय व्यवस्थापिका या विधान मंडल की रचना—मंत्रियों सहित प्रांतों की व्यवस्थापिका पूर्ण रूपसे गैर सरकारी (अशासकीय) व्यक्तियों द्वारा गठित होती है। उत्तरागार (अपर हाउस) के थोड़े से सदस्य प्रांत शासक द्वारा मनोनीत होते हैं। इनके सिवा शेष सभी निर्वाचित सदस्य ही रहते हैं। विधान सभा की सदस्य संख्या इस प्रकार है:—संयुक्त प्रांत २२६, मद्रास २१२, बम्बई १७२, बंगाल ८४, पूर्वी पंजाब ७४, बिहार १५०, मध्य प्रांत १११ और आसाम ६८।

निर्वाचक निकाय—१९३५ ई० के भारत शासन विधानके अनुसार भारतके १४ प्रतिशत लोग या कुल साढे तीन करोड़ लोगों को मतदानका अधिकार प्राप्त है। मतदानका यह अधिकार सम्पति, करदानकी शक्ति, या शिक्षा की योग्यता के आधार पर दिया गया है। लोकप्रिय सरकार (शासन) का वास्तवमें लोकप्रिय बनानेके लिये मतदानके अधिकार को व्यापक बनाना आवश्यक है। नवीन विधानमें सभी बालिग (प्रौढ) व्यक्तियों का मतदान करने के अधिकार की नीति स्वीकृत हुई है।

निर्वाचक (चाय के बगीचे का मालिक) निकाय का साधारण तथा विशेष निर्वाचन क्षेत्रोंमें विभाजन किया गया है। साधारण निर्वाचन क्षेत्रके (अनुसूचित

जातियोंके लिये सुरक्षित स्थानों के साथ) मतदाता प्रधानतः हिन्दू हैं। मुसल्मान, सिख, योरपीय, एंग्लो इण्डियन तथा भारतीय क्रिस्तान सम्प्रदायोंमें प्रत्येक के लिये विशेष निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था है। इनके सिवा वाणिज्य, शिल्प, खनि (खानों) जमीन्दार आदि स्थिर स्वार्थी वर्गों तथा विश्व विद्यालय, श्रमिक और महिलाओं के लिये सुरक्षित स्थान (आसन) हैं।

व्यवस्थापिका की कालावधि तथा अधिवेशन--प्रत्येक व्यवस्थापिका की कालावधि ५ वर्षों की होती है। किन्तु प्रान्तशासक (गवर्नर) यदि चाहे तो इस कार्यकालको इसके पहले भी समाप्त कर सकते हैं।

वर्षमें कम से कम एक बार विधान सभा का अधिवेशन होगा। प्रान्तशासक अपने इच्छानुसार विधान-सभा का अधिवेशन बुला सकेंगे, अधिवेशन स्थगित रख सकेंगे या विधान-सभा का विलयन कर सकेंगे। वे व्यवस्थापिका (विधान मंडल) को सम्बोधन कर सकेंगे तथा उसमें सदेश भेज सकेंगे।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष का निर्वाचन—प्रत्येक प्रान्तीय विधान-सभा दो सदस्यों को अध्यक्ष और उपाध्यक्ष निर्वाचित करती है। व्यवस्थापिका (विधान मंडल) विधि द्वारा इनके वेतन तथा अधिदेय निश्चित करती है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उनके कार्यों का निर्वाह करते हैं।

गणपूरक (कोरम)—कुल सदस्यों के एक दशांश की उपस्थिति से गणपूरक (कोरम) पूरा होता है। तभी सभा का कार्य चल सकता है।

अनुपक्ति शपथ ग्रहण—सभा के प्रत्येक सदस्य को सदस्यता का स्थान (आसन) ग्रहण करने के पूर्व अनुपक्ति के लिये शपथ ग्रहण करना पड़ता है। किसी सदस्य के अयोग्य प्रमाणित होने या पद त्याग करने पर स्थान रिक्त हो जाता है।

सदस्यों की सुयोग-सुविधायें—सदस्यों को वाक्स्वातंत्र्य, सभा की स्वीकृति से पत्रादिक प्रकाशन की सुविधा तथा व्यवस्थापिका में आदी-आह्वान की सुविधा प्राप्त होती है।

व्यवस्थापिका (विधान मंडल) की रचना—इसकी विस्तृत तालिका नीचे दी जाती है।

आसन (स्थानीय) तालिका

प्रान्तीय विधान सभा

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८
		साधारण आसन											स्त्रियों के लिये स्थान				
प्रान्त	समस्त स्थान संख्या	समस्त साधारण स्थान	अल्प संख्यकोंके स्थान सुरक्षित स्थान	अनुसूचित जातियों तथा बन जातियोंके लिये सुरक्षित स्थान	सिक्ख	मुसलमान	एंग्लो इण्डियन	भारतीय क्रिस्तान	शिल्प,वाणिज्य, तथा व्यापार	जमीन्दार	विश्वविद्यालय	श्रमिक	साधारण	सिक्ख	मुसलमान	एंग्लो इण्डियन	भारतीय क्रिस्तान
मद्रास	२१२	१४६	८०	१	—	२८	२	८	६	६	१	६	६	—	१	—	१
बम्बई	१७२	११४	१५	१	—	२९	२	३	७	२	१	७	५	—	१	—	—
संयुक्त प्रांत	२२६	१४०	२०	—	—	६४	१	२	३	६	१	३	४	—	२	—	—
बिहार	१५०	८६	१५	७	—	३९	१	१	४	४	१	३	३	—	१	—	—
मध्य प्रान्त	११३	८४	२०	१	—	१४	१	—	२	८	१	२	३	—	—	—	—
बंगाल	८४	४१	१८	—	—	१८	३	१	७	२	१	८	१	—	१	१	—
पूर्वीपंजाब	७५	८०	६	—	१७	२१	—	—	१	२	१	२	—	१	—	—	—
आसाम	६८	३५	४	९	—	१५	—	११	४	—	—	३	१	—	—	—	—
उड़ीसा	६०	४४	६	५	—	४	—		१	२	—	१	२	—	—	—	—

आसन तालिका

प्रान्तीय विधान-परिसद्

१ प्रान्त	समस्त स्थान संख्या	साधारण स्थान	मुसल्मान स्थान	भारतीय क्रिस्तान	विधान सभा द्वारा निर्वाचित सदस्योंके स्थान	प्रान्त शासक द्वारा मनोनीत (नियुक्त) सदस्यों के स्थान
मद्रास	अन्यून ३५ अनधिक ५५	३५	७	३	—	अन्यून ८ अनधिक १०
बम्बई	अन्यून २८ अनधिक २९	२०	५	—	—	अन्यून ३ अनधिक ४
संयुक्त प्रांत	अन्यून ५७ अनधिक ५९	३८	१७	—	—	अन्यून ६ अनधिक ८
बिहार	अन्यून २८ अनधिक २९	९	४	—	१२	अन्यून ३ अनधिक ४

आइन सभा (विधान मण्डल) की शक्ति

(क) विधि सम्बन्धी—प्रत्येक प्रान्त का अवरागार (विधान सभा) की आर्थिक विधेयकों से अन्य विषयक कोई विधेयक को प्रस्तावित तथा स्वीकार करने का अधिकार है। व्यवस्थापिका (विधान मण्डल) में स्वीकृत हुए बिना कोई विधेयक पास नहीं हो सकेगा।

नवीन शासन विधान के अनुसार प्रान्तीय तथा समानाधिकार की तालिका में उल्लिखित विषयों के सम्बन्ध में विधि निर्माण का पूर्ण अधिकार प्रान्तीय संबन्ध में विधि निर्माण का पूर्ण अधिकार प्रान्तीय व्यवस्थापिका (विधान मंडल) को है। समानाधिकृत विषयों पर प्रान्तीय व्यवस्थापिका विधान मंडल के स्वीकृत विधेयक यदि केन्द्रीय विधान मंडल का स्वीकृत विधेयक के प्रतिकूल हो तो प्रान्तीय विधेयक रद्द (प्रभावहीन) समझा जायेगा। राष्ट्रपाल की आज्ञा से प्रान्तीय व्यवस्थापिका विधि निर्माण में अवशिष्ट शक्ति का उपयोग कर सकेगी।

भारतीय शासन विधान राष्ट्रपाल (गवर्नर जनरल) द्वारा प्रवर्तित अध्यादेश, राष्ट्रपाल की शक्ति और स्थल, विमान तथा जल सेना के सम्बन्ध में प्रान्तीय व्यवस्थापिका (विधान मंडल) राष्ट्रपाल की अनुमति के बिना कोई विधि नहीं बना सकेगी।

विधेयकों से विधि बनने की रीतिः—केन्द्रीय व्यवस्थापिका में विधेयकों से विधि बनने की प्रणाली का वर्णन हम कर चुके हैं। प्रान्तीय व्यवस्थापिका (विधान मंडल) में भी उसी पद्धति से विधि निर्माण होता है।

प्रान्त शासक प्रान्तीय व्यवस्थापिका द्वारा पास किये हुए (पारित) विधेयकको स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकते हैं। वे विधेयकको पुनर्विचार के लिये व्यवस्थापिका (विधान मंडल) के पास वापस भेज सकते हैं।

(ख) आर्थिक विधेयकों के नियंत्रण की शक्ति—केवल शासकीय

पक्ष ही आर्थिक विधेयक उत्थापित कर सकता है। प्रान्त शासक के अनुमोदन के बिना कोई भी आर्थिक विधेयक उत्थापित नहीं होता है। शासन पर प्रवृत्त व्यय के संबन्ध में विधान सभा तथा उत्तरागार को कुछ भी अधिकार नहीं है। अन्य व्यय सम्बन्धी सभी प्रस्ताव व्यय की मांग (अनुदान मांग) के रूप में प्रान्त शासक के अनुमोदन (अभिस्ताव) से व्यवस्थापिका में उत्थापित किया जाता है। व्यवस्थापिका ऐसी किसी भी मांग को स्वीकार तथा कम करके स्वीकार, अस्वीकार कर सकती है।

आयव्ययक (बजट)—प्रान्त शासक, प्रतिवर्ष प्रान्त के वार्षिक आय-व्ययका अनुगणित हिसाब (आयव्ययक) के साथ तत्संबन्धी विवरण पत्र विधान सभा में उत्थापित करेंगे। इसे 'वार्षिक आर्थिक विवरण' कहते हैं। इस वार्षिक आर्थिक विवरण में (क) प्रान्त शासक, मंत्री तथा अन्य शासन सेवकों (गवर्नेंट सर्वेन्ट्स) के वेतन तथा अधिदेय, प्रान्तीय ऋण शासनादि का व्यय प्रान्तीय आगम पर प्रवृत्त व्यय के रूप में दिखाया जायगा, (ख) इससे अन्य व्यय का प्रस्ताव पृथक् रूप से दिखाया जायगा, (ग) राज्य के आगमों पर प्रवृत्त व्यय अन्य व्यय से अलग करके दिखाया जायगा।

आय व्ययक व्याख्यान—प्रान्तीय अर्थ मंत्री प्रान्त का आय व्ययक उत्थापन के समय आयव्ययक के महत्वपूर्ण अंशों की व्याख्या करने के लिये एक भाषण देंगे। इसके बाद सदस्यगण आयव्ययक के सम्बन्ध में १५ दिनों तक आलोचना कर मतदान करेंगे। किसी एक व्यय के सम्बंध में दो दिनों से अधिक आलोचना नहीं हो सकेगी।

प्रान्त के आगम द्वारा प्रवृत्त व्यय के सम्बन्ध में विधान सभा को केवल आलोचना का अधिकार है; मतदान का नहीं। अन्य व्ययों के संबन्ध में आलोचना तथा मतदान दोनों का अधिकार विधान सभा को है। उत्तरागार (अपर हाउस) को केवल आलोचना का अधिकार है।

विधान सभा द्वारा अनुमोदित व्यय की तालिका पर प्रान्त शासक का हस्ताक्षर हो जाने पर वह विधि के समान प्रभावी हो जायगा।

(ग) शासन नियंत्रण की शक्तिः—मंत्रि मंडल अपने शासन कार्यों के लिये व्यवस्थापिका (विधान मंडल) के प्रति उत्तरदायी है। इस प्रकार मंत्रिमण्डल इसके नियत्रणाधीन है। किसी भी मन्त्री का कार्य यदि व्यवस्थापिका की नीति द्वारा अनुमोदित न हो, तो मन्त्रिमण्डल को पदत्याग करना पड़ेगा।

——

अध्याय १२

जिलों (मण्डलों) की शासन व्यवस्था

प्रत्येक प्रान्त के कई विभाग (डिविजन) किये गये हैं। ऐसे विभागों के शासक को कमिश्नर (आयुक्त) कहा जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक विभाग के कई भाग किये गये हैं, इन्हें जिला या मण्डल कहा जाता है। प्रत्येक जिले के शासक को मण्डल अधिकारी या (मैजिस्ट्रेट कलेक्टर) कहा जाता है।

प्रत्येक जिले के भी कई छोटे हिस्से किये गये हैं; इन्हें उपविभाग (सबडिविजन) कहा जाता है।

कमिश्नर (आयुक्त)—कमिश्नर अपने विभाग के आगमों को वसूलने वाला अधिकारी है। आगम (रेवेन्यु) सम्बन्धी सभी कार्यों का सर्वाधिकार उसे प्राप्त है। कमिश्नर को न्याय संबन्धी शक्ति कुछ भी नहीं है। आगम संबन्धी मामलों में वह अपील अदालतों (पुनर्विचार न्यायालयों) के मतानुसार कार्य करता है।

वह जिले (मण्डलों) के कलक्टरों (समहर्ता) का परिचालन तथा नियंत्रण करता है। वह प्रान्तीय सरकार तथा मंडल सरकार को मिलाने वाला धागा है। जिलों के स्थानीय स्वशासन संस्थाओं के सम्बन्ध में कमिश्नर को प्रचुर अधिकार प्राप्त होते हैं।

जिले के शासनकर्ता—जिले के शासनकर्ता के नाम कलेक्टर (समाहर्त्ता) तथा जिला मजिस्ट्रेट हैं। आनियामक (रेगुलेशन) के बहिर्भूत प्रदेशों (रिजोन) में उसे उपायुक्त (डिप्यूटि कमिश्नर) कहते हैं। कलेक्टर होने के नाते वह जिले के आगम (राजस्व) संग्रह का प्रमुख अधिकारी होता है। मजिस्ट्रेट की हैसियत से उसका कर्त्तव्य जिले के दंड विषयक (फौजदारी) न्यायालय के कार्यों का निरीक्षण करना तथा (पुलिस) रक्षिदल का सचालन करना है। जिले की शान्ति व्यवस्था का प्रधान अधिकारी वही होता है।

जिलेके छोटे बड़े सभी विषयों की पूरी जानकारी कलेक्टर (समाहर्त्ता) को

रखनी पड़ती है। अपने अधीनस्थ कर्मचारियोंके द्वारा वह सभी विषयोंका समाचार जानता रहता है।

अबतक कलेक्टर जिलेमें प्रान्तीय शासन का सर्वसत्ताधारी अधिकारी था। (पुलिस) रक्षिदल, कारागार, चिकित्सालय (हास्पिटल) विद्यालय समिति (स्कूलबोर्ड) विद्यालय, महाविद्यालय (कालेज), मंडल समिति (जिला बोर्ड), नगर समिति (म्युनिसिपल बोर्ड), स्थानीय समिति (लोकल बोर्ड), संघ समिति (यूनियन बोर्ड), आदि समस्त विषयोंमें इसे विस्तृत अधिकार प्राप्त थे।

आगम सम्बन्धी कार्यों के सिवा रजिस्ट्रेशन (पंजीयन) भूमि-आगम (लैंड-रेवेन्यु) सम्बन्धी कार्य ऋण ग्रस्त जमींदारी की व्यवस्था, कृषकों को ऋणदान, दुष्काल (अकाल) सहायता, आदि विषय कलेक्टरके कर्त्तव्योंके अन्तर्गत थे।

जिले के प्रमुख नगरमें कलेक्टर का कार्यालय (आफिस) होता है। जिले के विभिन्न विभागों के अधिकारियों का कार्यालय भी इसी नगर में रहता है। जिले के पुलिस सुपरिन्टेंडेन्ट (आरक्षी अधीक्षक) एग्जीक्यूटिव इन्जीनियर (अधिशासी अभियांत्रिक) सिविल सर्जन (व्यवहार चिकित्सक) जिला कारागार की व्यवस्था आदि विषयोंपर भी कलेक्टर का थोड़ा बहुत आधिपत्य रहता था।

नवीन विधानके अन्दर जिला मजिस्ट्रेट की इन सब विषयों की शक्ति बहुत कम कर दी गई है। वर्तमान विधान मण्डल के निर्वाचित सदस्य ही जनताके अधिकांश अभाव-अभियोगों को सरकार के पास पहुँचाते हैं।

जिला मजिस्ट्रेट जिलेका सर्व प्रधान शासक है। वही जिले की शान्ति-व्यवस्था का उत्तरदायी होता है। इसलिये किसी व्यक्तिके गिरफ्तार या अभियुक्त होने का उत्तरदायित्व भी उसी पर होता है। फिर उसके अधीनस्थ न्यायाधीश उसके अभियुक्त पर न्याय निर्णय करता है। ऐसी अवस्थामें न्याय मर्यादा के उल्लंघन की बड़ी सम्भावना रहती है। कभी किसी देश में अभियोगकर्त्ता, न्यायकर्त्ता नहीं हो सकता। यह गणतंत्र के सिद्धान्तके प्रतिकूल है। अतएव न्याय-विभागका शासन विभाग से पृथक्करण अत्यन्त आवश्यक है।

—

अध्याय १४

देशी राज्य

राजनीतिक दृष्टिसे भारत दो भागोंमें विभाजित था। ब्रिटिश भारत तथा भारतीय भारत।

ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा शासित प्रान्तों तथा भारतके दूसरे प्रदेशों को ब्रिटिश भारत कहा जाता था तथा देशके राजन्यवर्ग द्वारा शासित राज्योंको भारतीय भारत। १८५७ ई० तक अंग्रेजोंने कल-छल-बल से भारतके प्रत्येक देशी राज्य पर अपना वास्तविक अधिकार स्थापित कर लिया। (सहायक सन्धि) के भीतर देशी राज्यके शासकोंके साथ मिलकर अंग्रेज जाति भारत के एक सुविस्तृत भूभाग पर मध्ययुगीन सामंतवाद पर अवलम्बित शासन चला आ रहा था तथा इस प्रकार भारतको दो अस्वाभाविक भागों में बाँट रखा था। ब्रिटिश शासन कालमें राज्यों के देशी राजाओं को नाम मात्रका अधिकार प्राप्त था। वस्तुतः राज्योंके पालिटिकल एजेंट राजनैतिक अभिकर्त्ता) ही वहाँ वास्तविक शासक थे।

१५ अगस्त के पश्चात्—१९४७ ई० के १५ अगस्त को सत्ता हस्तान्तरित दोनोंके साथ-साथ देशी राजाओं पर से ब्रिटिश शासन की सर्वसत्ता [पारामाउन्सी] समाप्त हो गई। इस समय राजाओं के सम्मुख दो मार्ग खुले थे—[१] अपनी स्वतन्त्रताको कायम रखकर स्वाधीन राज्य की मर्यादा को प्रतिष्ठित करना ; [२] भारत-संघ या पाकिस्तान में योगदान करना। भारत शासनके सम्मुख ५६६ राज्योंकी सुविस्तृत समस्याएं उपस्थित हुईं। इन सभी राज्योंको भारत संघके सूत्र में गूंथ कर देश में ऐक्यबद्ध एवं शक्तिशाली गणतंत्रात्मक राज्यकी स्थापना ही भारतवासियों का बहुत दिनों से लक्ष्य था। देशी राज्यों की जनता भी इस लक्ष्य की सिद्धि तथा राज्यों के निरंकुश शासन की समाप्ति के लिये कई दशकों से संघर्ष कर रही थी।

सत्ता हस्तान्तर के अनन्तर कई देशी राज्यों ने प्रतिक्रियागामी शक्तियों के प्रभाव में पड़कर भारतको विनष्ट करने की चेष्टा की। भारतके अन्तिम अंग्रेज गवर्नर जनरल लार्ड माउण्टबेटेन के कथनानुसार 'भारतको खण्ड-खण्ड तथा दुर्बल कर देने का षड़यन्त्र चल रहा था।'

१९४९ ईस्वी के १५ अक्टूबर तक अर्थात स्वाधीनता के तृतीय वर्ष पूरा होने

के पहले ही देशी राज्यों के विलयन का काम समाप्त हो गया है। इस प्रकार भारत के नवीन मानचित्र की रचना हुई है।

क्षेत्रफल और जनसंख्या—देशी राज्यों की समस्त संख्या ५६६ थी। इनका क्षेत्रफल था अखण्डित भारत का ४० प्रतिशत। इनकी समस्त जनसंख्या सम्पूर्ण भारत की जनसंख्या का २३ प्रतिशत थी।

अन्तर्विलयन—शक्ति हस्तान्तरण के अनंतर देशी राज्योंकी क्या स्थिति है, इसकी तालिका नीचे दी जाती है;—

स्वतंत्र रूपसे योगदान-कारी राज्य	अस्थायी रूपसे अन्तर्विलियितराज्य	केन्द्रशासनाधीन राज्य	विभिन्न राज्यों द्वारा गठित राजसंघ
		हिमालयप्रदेश	(१)पंजाब और पटियाला[4]
		कच्छ, भोपाल	
		बिलासपुर	(२) राजस्थान
		कूचबिहार	(३) मध्य भारत
(क) काश्मीर[1], मैसूर		त्रिपुरा	(४) सौराष्ट्र
(ख)बड़ौदा,जूनागढ़[2],	हैदराबाद[3]	मणिपुर	(५) कोचीन और
केल्हापुर, आदि	काश्मीर		त्रिवांकुर

टिप्पणी—(१) काश्मीर समस्या के समाधान के लिये संयुक्त राष्ट्र संघ। भारत और पाकिस्तान कमीशन (uncip) नामक एक आयोग भेजा है। सिद्धान्ततः भारत और पाकिस्तान शासनों ने जनमतगणना की नीति स्वीकार कर ली है। आयोग की मध्यस्थता से युद्ध विराम सन्धि भी हो गई है। तब भी इस समस्या का कोई निर्णायक निदान नहीं हो पाया है।

(२) यों तो और भी कई राज्य स्वतंत्र भारत संघ में शामिल हुए थे परन्तु पीछे वे किसी न किसी राज संघमें मिल गये।

(३) हैदराबाद के अस्थायी सैनिक शासन ने निर्वाचक सूची प्रस्तुत कर ली है। भारत शासन की घोषणा के अनुसार हैदराबाद में निर्वाचन होगा और नव निर्वाचित विधान सभा हैदराबादकी विलियन संबन्धी नीतिका अन्तिम निर्णय करेगी।

(४) १९४८ ई० के मार्च और अप्रैल में गठित मत्स्य संघ तथा राजस्थान को मिला कर वृहत्तर राजस्थान संघ बना है।

अध्याय १५

न्याय-विभाग

भारत में अंग्रेजी राज्य के प्रारंभिक दिनों में शासक वर्ग की ओर से न्याय-व्यवस्था में परिवर्तन की कुछ भी चिंता नहीं की गई। हां, उस समय केवल ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों के लिये अंग्रेजी कानूनों (विधियों) के अनुसार न्याय करने की व्यवस्था थी।

ई० सन् १७७३ के आनियामक अधिनियम (रेगुलेटिंग एक्ट) में न्याय-व्यवस्था के सम्बन्ध में कई विधियां थीं। इसी वर्ष बंगाल में एक प्रधान न्यायाधीश तथा तीन न्यायाधीशों को लेकर सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना की गई। १८०३ ई० में बम्बई में तथा १८३१ में मद्रास में इसी तरह के न्यायालय स्थापित हुए।

फौजदारी मामलों (दण्ड विषयक अभियोगों) के निर्णयार्थ न्यायाधीश जिन विधियों को काम में लाते थे वे विधियां फौजदारी कार्यविधि (दण्ड कार्य-प्रणाली सहिता) में उल्लिखित हैं। दण्ड कार्य प्रणाली सहिता की रचना पहले हुई। दिवानी कार्य विधि (व्यवहार कार्य-प्रणाली सहिता) की रचना पीछे की गई। इसमें दिवानी मामलों (व्यवहार विषयक अभियोगों) की न्याय प्रणाली का निर्देशन है। ये विधियां कुछ दिनोंके बाद रूढ़ तथा अव्यावहारिक न हो जावें एतदर्थ समय समय पर इनके संशोधन किये गये। इन सहिताओं के अतिरिक्त और भी कितने कानूनों, नियमों तथा न्यायनिर्णयों के उदाहरणों द्वारा न्यायव्यवस्था चलती है। भारतस्थित योरोपियन लोगों के लिये विशेषकर अंग्रेजी विधियां प्रचलित थीं। भारतीय विधि-संहिता की रचना हिन्दू धर्म शास्त्र तथा मुसल्मानी कुरान शरीफ के आधारा पर की

गई थी। उस समय के भारतीय न्याय विभाग की सबसे बड़ी खामी (त्रुटि) यह थी कि अनेक क्षेत्रों में शासन तथा न्याय विभागमें कोई स्पष्ट सीमा-रेखा निर्धारित नहीं थी। मैजिस्ट्रेट (न्यायाधीश) का पुलिस विभाग के साथ घनिष्ठ संबन्ध था।

अभीतक ब्रिटेन के सर्वोच्च न्यायालय के प्रिवी कौंसिल से भारतीय न्याय विभाग का सम्पर्क था, किन्तु विधान-सभा द्वारा प्रस्तुत विधिके अनुसार गत १० अक्टूबर १९४९ ई० से भारतीय न्याय विभाग तथा प्रिवी कौंसिल का सबन्ध समाप्त हो गया।

सर्वोच्च न्यायालय या सुप्रीम कोर्ट—नये शासन विधानमें भारतके लिये एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई है। भारतके प्रधान न्यायाधीश तथा अन्य कई न्यायधीशों को लेकर यह न्यायालय संघटित होगा। समस्त कितने न्यायाधीश रहेंगे इसका निर्णय संसद् विधि द्वारा करेगी। किन्तु प्रधान न्यायाधीश के अतिरिक्त सात अन्य न्यायाधीश से कम नहीं रहेंगे।

सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालयों (हाई कोर्ट्स) के न्यायाधीशों के परामर्श से राष्ट्रपति (प्रधान) भारत संघ के अन्य न्यायाधीशों को नियुक्त करेंगे। न्यायाधीश ६५ वर्ष की उम्र तक अपने पदों पर रह सकेंगे।

जो व्यक्ति कम से कम १० वर्ष तक भारत न्याय विभाग में न्यायाधीश रह चुके होंगे या कम से कम पांच वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में न्यायाधीश रह चुके होंगे वही व्यक्ति सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश तथा सहायक न्यायाधीश नियुक्त हो सकेंगे।

यदि सर्वोच्च न्यायालय का कोई न्यायाधीश अकर्मण्य अथवा दुराचारी प्रमाणित हो, तथा भारतीय संसद् राष्ट्रपति के समक्ष एतदर्थ आवेदन करे, तो राष्ट्रपति उस न्यायाधीशको पदच्युत कर सकेंगे। इस कार्य के लिये संसद् द्वारा प्रेषित आवेदन, उपस्थित सदस्य सख्या के दो तृतीयांश से पास (पारित) होना चाहिये।

सर्वोच्च न्यायालय के कोई भी न्यायाधीश, अवसर ग्रहण (पदमुक्ति) के पश्चात् किसी भी न्यायालय में कानून पेशा (विधिवृत्ति) नहीं कर सकेंगे। गवर्नर जनरल प्रधान न्यायाधीश को तथा उनकी अनुपस्थिति में कार्य सम्पादनार्थ किसी एक न्यायाधीश को नियुक्त करेंगे।

सर्वोच्च न्यायालय का स्थान तथा अधिकार—यों सर्वोच्च न्यायालय का स्थायी स्थान दिल्ली में होगा। किन्तु प्रधान न्यायाधीश, राष्ट्रपाल की सम्मति से किसी अन्य स्थान में भी इस न्यायालय के अधिवेशन का निर्देश कर सकेंगे। ऐसी स्थिति में सर्वोच्च न्यायालय का अधिवेशन निर्दिष्ट स्थल पर हो सकेगा।

सर्वोच्च न्यायालय में एक प्रारंभिक (आदिम) विभाग तथा एक अपील (पुनर्विचार प्रार्थना) विभाग होंगे।

सर्वोच्च न्यायालय

प्रारंभिक क्षेत्राधिकार विभाग			पुनर्विचार (प्रार्थना विभाग) या अपील विभाग		
भारत संघके साथ भारत संघके सदस्य राज्य या राज्यों में विरोध उत्पन्न होने पर उस विरोध का निर्णय	जिस विरोध में भारतसंघ तथा सघ के सदस्य एक वा एकाधिक राज्य एक पक्षमें तथा संघके सदस्य एक या एकाधिक राज्य अन्य पक्षमें हों, ऐसा विरोध का निर्णय	भारत के सदस्य दो या दो से अधिक राज्यों के विरोध का निर्णय	भारत संघ उच्च न्यायालयों (हाई कोर्ट) से आये हुए दण्ड विधि सवंधी(फौजदारी) मुकद्दमों की पुनर्विचार-प्रार्थना (अपील) पर विचार	भारत संघके उच्च न्यायालयोंसे आनेवाले व्यवहार (दिवानी) विधिसबन्धी मुकद्दमों को पुनर्विचार-प्रार्थना पर विचार	भारतसंघके उच्च न्यायालयोंसे आने वाले अन्य विषयक मुकद्दमों पर विचार

प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार विभाग

किसी प्रसंविदा (कान्ट्रैक्ट), सनद, या इस प्रकार के तर्कों को लेकर यदि कोई विरोध हो तो वह विरोध सर्वोच्च न्यायालय के प्रारंभिक क्षेत्राधिकार विभाग के निर्णय का विषय नहीं होगा। शासन विधान की व्याख्या के सम्बन्ध में उत्थित विरोध का निर्णय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जायगा।

पुनर्विचार-प्रार्थना (अपील) विभाग

(१) यदि किसी प्रान्त का उच्चन्यायालय प्रमाणित कर दे कि किसी मामले में इस विधान की व्याख्या संबन्धी कोई महत्वपूर्ण-प्रश्न अन्तर्भूत है तो उस मामले की पुनर्विचार-प्रार्थना (अपील) सर्वोच्च न्यायालय में हो सकेगी। यदि उच्चन्यायालय किसी मामले के संबन्ध में उपरोक्त रीति से प्रमाणित न करे किन्तु सर्वोच्च न्यायालय को सन्तोष हो जाय कि इसमें विधि संबन्धी महत्वपूर्ण प्रश्न अन्तर्भूत है तो वह अन्तिम आदेश की पुनर्विचार प्रार्थना के लिये विशेष अनुमति दे सकेगा।

(२) यदि उच्चन्यायालय किसी मामले के सम्बन्ध में कहे कि उस मामले से संम्बद्ध सम्पत्ति का मूल्य २०००० से कम नहीं है अथवा वह मामला पुनर्विचार प्रार्थना के योग्य है तो उच्चन्यायालय के अन्तिम आदेश (डिसीजन) की पुनर्विचार-प्रार्थना सर्वोच्च न्यायालय में की जा सकेगी।

(३) यदि उच्चन्यायालय किसी दण्ड विधि—सम्बन्धी (फौजदारी) मामले के विषय में पुनर्विचार होना न्याय-संगत कहे तो सर्वोच्च न्यायालयमें उस मामले की पुनर्विचार प्रार्थना को जा सकेगी।

जिस मामले में उच्च न्यायालय निम्न न्यायालय के निर्णय (डिसीजन) के विरुद्ध अभियुक्त को प्राण दण्ड का निर्णय करे उस मामले कीपुनर्विचार-प्रार्थना सर्वोच्च न्यायालय में हो सकेगी।

सर्वोच्च न्यायालय

भारत के किसी भी न्यायालय अथवा न्यायाधिकरण (ट्रिब्यूनल) के निर्णय की पुनर्विचार—प्रार्थना की विशेष अनुमति दे सकेगा ।

विधियों की व्याख्या

किसी राज्य के उच्चन्यायालय में यदि कोई ऐसा मामला चल रहा है जिसमें केन्द्रीय व्यवस्थापिका अथवा अन्य किसी राज्य की व्यवस्थापिका की किसी विधि की व्याख्या सम्बन्धी प्रश्न अन्तर्भूत है तो उच्चन्यायालय तत् सम्बन्धी प्रश्न, मीमांसा के लिये सर्वोच्च न्यायालय में उत्थापित करेगा तथा सर्वोच्च न्यायालय, उच्चन्यायालय को इस प्रकार के प्रश्न उत्थापित करने की अनुमति दे सकेगा ।

सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार की वृद्धि

संघ संसद् विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के अधिकारों की वृद्धि कर सकेगी ।

संघ संसद विधानके मूलभूत सिद्धान्तोंके साथ सामंजस्य रखते हुए विधि द्वारा सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार में वृद्धि कर सकेगी ।

राष्ट्रपाल द्वारा प्रश्न उत्थापन

जन-स्वार्थ-सम्बन्धी किसी प्रश्न पर विधि सम्बन्धी अस्पष्टता उपस्थित होनेपर राष्ट्रपाल उस विधि को स्पष्टीकरण एवं मीमांसा के लिये सर्वोच्च न्यायालय में उपस्थित कर सकेंगे ।

भारतके शासन विभागीय तथा न्याय विभागीय सभी अधिकारी सर्वोच्च न्यायालय की सहायता करेंगे । तथा सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों को कार्यरूप प्रदान करेंगे ।

राज्यों के न्याय विभाग-उच्चन्यायालय (हाई कोर्ट)

जिस प्रकार केन्द्र में सर्वोच्च न्यायालय या सुप्रीम कोर्ट रहेगा, उसी प्रकार विभिन्न राज्योंके उच्चन्यायालयोंमें एक मुख्य न्यायाधीश तथा कई अन्य न्यायाधीश रहेंगे। मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशोंकी नियुक्ति भारत-संघ के-राष्ट्रपति या प्रधान करेंगे। राज्यके मुख्य न्यायाधीश की नियुक्ति के समय राष्ट्रपति वा प्रधान, भारत के प्रधान न्यायाधीश तथा सम्बद्ध राज्यके शासक से तथा अन्य न्यायाधीशों की नियुक्तिके समय भारत के प्रधान न्यायाधीश, सम्बद्ध राज्यके शासक तथा मुख्य न्यायाधीश से परामर्श करेंगे।

उच्चतम पैंसठ वर्ष की आयु तक न्यायाधीश गण अपने पदों पर रह सकेंगे। पदमुक्ति के पश्चात् वे भारत के किसी भी न्यायालय में विधि-वृत्ति (कानून पेशा) नहीं कर सकेंगे।

अधिकार

उच्च न्यायालय के अधिकार क्षेत्रमें पड़नेवाले सभी न्यायालयों के ऊपर उच्च न्यायालय का अधिकार होगा। केन्द्रीय व्यवस्थापिका उच्च न्यायालयके इस अधिकार में वृद्धि अथवा कमी कर सकेगी।

न्यायाधीशों का वेतन

उच्चन्यायालय के मुख्य न्यायाधीशका वेतन मासिक ४०००) तथा अन्य न्यायाधीशों का ३५००) होगा। सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान न्यायाधीशका मासिक वेतन ५०००) तथा अन्य न्यायाधीशों का वेतन ४०००) होगा। न्यायाधीशोंका वेतन तथा अधिदेय संघके आगमों द्वारा प्रदत्त होगा।

उच्चन्यायालय के कर्तव्य तथा अधिकार

राज्यका उच्चन्यायालय अपने अधिकार क्षेत्र में पुनर्विचार प्रार्थना का सर्वोच्च न्यायालय है। कलकत्ता, मदास तथा बम्बई प्रांतोंके उच्च न्यायालयोंमें पुनर्विचार

प्रार्थना विभागके अतिरिक्त एक-एक प्रारंभिक विभाग भी है। प्रांतके छोटे अदालतों के निर्णयोंकी पुनर्विवेचना करने तथा उनके कार्यों का निरीक्षण करने का अधिकार उच्च न्यायालयों को है।

कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बई महाप्रांतों (प्रेसिडेन्सी) के उच्च न्यायालयोंमें जो प्रारम्भिक विभाग हैं उनमें इन महानगरों के कितने ही मामले सीधे-सीधे दायर हो सकते हैं। अर्थात् इस प्रारम्भिक विभाग से ही उपरोक्त मामलोंका प्रारम्भ होता है।

सभी उच्च न्यायालयोंमें पुनर्विचार प्रार्थना (अपील) विभाग होता है। प्रांतके किसी न्यायालय के निर्णय की पुनर्विचार प्रार्थना उच्च न्यायालय में की जा सकती है।

कितने ही बड़े मामलों में पुनर्विचार प्रार्थना न करने पर भी उच्च न्यायालय, उन मामलों की पुनर्विवेचना कर सकता है।

नीचे के सभी न्यायालयों को आज्ञा देने का अधिकार उच्चन्यायालय को है। उच्चन्यायालय, किसी निम्न न्यायालयमें चलनेवाले किसी मामलेको स्थानांतरित कर किसी दूसरे न्यायालयमें भेज सकता है। वह अपने अधिकार क्षेत्रगत न्यायालयोंसे कार्य विवरण मांग सकता है। वह निम्न न्यायालयों की कार्य प्रणाली निश्चित करता तथा नियमावली प्रस्तुत करता है।

मण्डलों (जिलों) का व्यवहार (दिवानी) न्यायालय

जिले के दण्ड तथा व्यवहार सम्बन्धी मामलोंके निर्णयके लिये प्रत्येक जिलेमें एक बड़ा न्यायालय होता है जिसे मण्डल न्यायाधीश और दौरा जज का न्यायालय कहते हैं। जिले के सभी मजिस्ट्रेट और व्यवहार तथा दण्ड विषयक न्यायाधीश मंडल न्यायाधीश (डिस्ट्रिक्ट जज) के अधीन होते हैं। मंडल न्यायाधीश के न्यायालयमें इनके निर्णय की पुनर्विचार प्रार्थना हो सकती है।

मंडल न्यायाधीशके अधीनस्थ व्यवहार न्यायालय

व्यवहार सम्बंधी मामलोंके विचारार्थ मंडल न्यायाधीश (जिला जज) के अधीन कई न्यायाधीश तथा मुन्सिफ रहते हैं। मंडल न्यायाधीश इनके कार्यों का निरीक्षण करते हैं तथा निर्णयों पर पुनर्विचार प्रार्थना (अपील) ग्रहण करते हैं।

अवर न्यायालय (लोअर कोर्ट)

छोटे मोटे दिवानी (व्यवहार) मामलों के विचारार्थ महाप्रांतों के महानगरों में एक एक अवर न्यायालय हैं। मुफस्सिल में भी अवर न्यायालय हैं पर वे भिन्न प्रकारके हैं। साधारणतः इन छोटे न्यायालयों के निर्णयों की पुनर्विचार प्रार्थना नहीं होती है।

संघीय समिति न्यायालय (यूनियन बोर्ड)

बङ्गालके बड़े-बड़े कस्बोंमें (यूनियन बोर्ड) की स्थापना हुई है (१९४०)। इन समितियों का एक न्याय विभाग पंचायत के ढङ्ग का होता है इसमें कस्बेमें होनेवाले छोटे छोटे दिवानी और फौजदारी मामलों की सुनवाई होती है। इन छोटे मुकद्दमों के निर्णय संबन्धी थोड़े से अधिकार संघ समितियों को प्रांतीय व्यवस्थापिका द्वारा दिया गया है। संयुक्त प्रांत, मद्रास और मध्य-प्रांतमें पंचायती न्याय निर्णय की व्यवस्था की गई है। भारतके अन्य प्रांतोंमें भी पंचायती न्याय व्यवस्थाके पुनरुद्धार की चेष्टा हो रही है।

जिलेके दंड विषयक मामले का विचार

दौरा जज—फौजदारी (दंड विषयक) मामलोंके विचारार्थ एक वा एकाधिक न्यायाधीश रहते हैं, इन्हें दौरा जज कहते हैं। पहले कहा जा चुका है कि एक ही व्यक्ति दौरा जज तथा जिला जजका काम करते हैं। दौरा जज जूरी (५, ७, अथवा विचारशील नागरिकों की एक समष्टि) की सहायता से बड़े बड़े अभियोगों पर विचार करते हैं। वह जिले के सभी न्यायालयोंके फैसले की पुनर्विचार प्रार्थना

सुनते हैं। तथा विधि द्वारा विहित सभी प्रकार का दंड दे सकते हैं। किन्तु दौरा जज द्वारा दिये गये मृत्यु दंड को कार्य रूप प्रदान करनेके पहले उच्च न्यायालय से दंडादेश की पुष्टि करानी पड़ती है। दौरा जजके न्यायनिर्णय की पुनर्विचार प्रार्थना केवल उच्च न्यायालयमें हो सकती है।

प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट (महाप्रांतीय विचार पति)

महाप्रांतोंके महा नगरमें एक विशेष न्यायाधीश होते हैं। इनके निर्णयों की पुनर्विचार प्रार्थना केवल उच्चन्यायालयमें हो सकती है।

नीचे के मैजिस्ट्रेट

प्रत्येक जिले (मंडल) में प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी की शक्तियों से युक्त कई मैजिस्ट्रेट (विचार पति) होते हैं। इनमें से कोई-कोई अवैतनिक भी होते हैं। ये सभी दौरा जजके अधीन हैं। इनके निर्णयों पर दौरा अदालत (न्यायालय) में पुनर्विचार प्रार्थना हो सकती है। दौरा जज इनके कार्यों का निरीक्षण करते हैं। छोटे छोटे फौजदारी मामलोंके विचारार्थ लघुन्यायालय बेंच कोर्ट होता है।

जूरी द्वारा न्याय साहाय्य – भारत देशमें केवल दौरा जजोंके न्यायालयोंमें जूरी द्वारा न्याय कार्य होता है। दिवानी मामलोंमें, तथा उन मामलोंमें जिनकी कार्यवाही दौरा न्यायालयमें नहीं होती, जूरी द्वारा न्याय कराने का नियम नहीं है। देशके अपेक्षाकृत विकसित प्रदेशोंमें जूरीके बदले असेसर (सहायक) नियुक्त किया जाता है। किंतु न्यायाधीश असेसरके निर्णय को माननेके लिये बाध्य नहीं है। अन्य देशों की तुलना में भारत की जूरीका न्याय क्षेत्र बहुत सीमित है।

जिलाके दौरा अदालत में न्यायाधीश जूरी की सहायता से न्याय करते हैं। जूरी के सदस्यों की संख्या पांचसे कम तथा नौ से अधिक नहीं होती। अधिकतर जूरीके न्याय निर्णय को मानने के लिये दौरा जज बाध्य होते हैं किंतु यदि जज को विश्वास हो कि अमुक मामले में जूरी का निर्णय न्याय सगत नहीं है तो वे उस मामले का अन्तिम निर्णय के लिये उच्च न्यायालयमें भेज सकते हैं।

उच्च न्यायालय या हाई कोर्टमें जूरीके सदस्योंकी संख्या नौ होती है। यदि जूरी सर्व सम्मति से निर्णय करे तो उस निर्णय को माननेके लिये न्यायाधीश बाध्य होते हैं। यदि जूरीका निर्णय सर्वसम्मति से न होकर बहुमत का निर्णय हो तो न्या

निर्णयको माननेको न्यायाधीश बाध्य नहीं है। जूरी तथा न्यायाधीशके निर्णयमें मत-भेद होने पर प्रायः न्यायाधीश उस जूरीको भंग कर किसी अन्य न्यायाधीश को लेकर एक नयी जूरीका संघटन करते हैं। उस जूरी की सहायता से उक्त मामले पर पुन-र्विचार किया जाता है। किंतु किसी भी हालतमें जूरीके विरुद्ध निर्णय नहीं किया जा सकता है।

साधारण न्याय क्षेत्रके बाहर विशेष सुविधा प्राप्त व्यक्ति

भारतके राष्ट्रपाल राज्य शासक और प्रांत शासक अपने पदकारणात् जो कर्त्तव्य करते हैं उसके सम्बन्धमें किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण में कोई अभियोग उत्थापित नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार उच्चन्यायालयके मुख्य न्यायाधीश तथा अन्य न्यायाधीशों पर उनके पदकारणात् किये जाने वाले कर्तव्योंके विषय में किसी भी न्यायालयमें कोई मामला नहीं चल सकेगा।

विभिन्न न्यायालयों की तालिका

व्यवहार (दिवानी) न्यायालय	दण्ड (फौजदारी न्यायालय
(१) सर्वोच्च न्यायालय या सुप्रीम कोर्ट।	(१) सर्वोच्च न्यायालय या सुप्रीम कोर्ट।
(२) उच्च न्यायालय या हाई कोर्ट अथवा मुख्य न्यायालय या चीफ कोर्ट।	(२) उच्चन्यायालय या हाई कोर्ट अथवा मुख्य न्यायालय या चीफ कोर्ट।
(३) मंडल न्यायाधीशका न्यायालय या डिस्ट्रिक्ट जज कोर्ट।	(३) दौरा न्यायालय या सेशन कोर्ट।
(४) उपन्यायाधीश का न्यायालय या सब जज कोर्ट (प्रथम श्रेणी)	(४) महाप्रांतीय न्यायालय या प्रेसिडेंसी मेजिस्ट्रेट कोर्ट।
(५) उपन्यायाधीश का न्यायालय या सब जज कोर्ट (द्वितीय श्रेणी)	(५) प्रथम श्रेणीके मेजिस्ट्रेटका न्यायालय
(६) लोअर कोर्ट।	(६) द्वितीय श्रेणीके मेजिस्ट्रेटका न्याया-लय।
(७) मुंसफों का न्यायालय।	(७) तृतीय श्रेणी के मेजिस्ट्रेट का न्या-यालय।
(८) संघीय समिति न्यायालय या यूनि-यन कोर्ट (केवल बङ्गाल में)	(८) अवैतनिक मेजिस्ट्रेट का न्यायालय (प्रथम, द्वितीय या तृतीय श्रेणी)
(९) ग्राम पंचायत (संयुक्त प्रांत, मद्रास तथा मध्य प्रांत में)	(९) बेंच कोर्ट (लघुन्यायालय)
	(१०) ग्राम पंचायत (संयुक्त प्रांत मध्य-प्रांत तथा मद्रास में)

अध्याय १६

शासन की नौकरियों सम्बन्धी व्यवस्था

भारत में सरकारी नौकरी के कितने ही पदों पर भारत सरकार तथा कितने ही पदों पर प्रान्तीय सरकार लोगों को नियुक्त करती है।

देश रक्षिका-सेना

भारत के रक्षा मंत्री पर देश-रक्षा का समस्त भार है। भारत सुरक्षा मंत्री के सिवा भारत के प्रधान सेनापति भी होते हैं वरना वे भारतीय सैन्य विभागों के सर्वोच्च अधिनायक होते हैं। वे युद्ध नीति युद्ध-सज्जा तथा युद्ध संचालन के विषय में राष्ट्रपति (प्रेसिडेंट) को परामर्श देते हैं। उनके सिवा भारत की नौ सेना विभाग तथा जल सेना के लिये एक एक विभागीय सेनापति होते हैं।

अब जाति-धर्म की सहूलियतों के बिना ही सभी भारतीय भारतीय-सैन्य दलों में योगदान कर सकते हैं। रक्षा विभाग (डिफेंस डिपार्टमेंट) में लोगों की नियुक्ति के अब निर्णय (शर्त तय करने) का अधिकार भारत शासन (इण्डिया गवर्नमेंट) को है।

केन्द्रीय शासन की नौकरियां (सेन्ट्रल गवर्मेंट सर्विसेज)

लेखापालन (हिसाब रखना) तथा अंकेक्षण (आडिटिंग), शुल्क, आयकर अयोमार्ग (रेलवे) तथा डाक और तार विभाग की नौकरियां केन्द्रीय शासन के नियंत्रण में हैं। इनके सिवा अखिल भारतीय अन्य सेवा विभागों में बहुत से लोग नियुक्त हैं।

अन्य नौकरियां

अन्य बहुतेरी शासन सेवायें हैं जिनका नियंत्रण प्रान्तीय शासन करता है।

इस प्रकार की नौकरियों के तीन विभाग हैं—अखिल भारतीय नौकरियां, प्रांतीय नौकरियां तथा निम्न नौकरियां।

नवीन शासन विधान में सिविल सर्विस (सिविल सर्विसेज)

भावी भारत संघ में राष्ट्रपति या प्रधान केन्द्रीय नियंत्रण के पदों पर तथा प्रांत शासक प्रांतीय नियंत्रण के पदों पर लोगों को नियुक्त करेंगे। स्वाधीनता के पहले नियुक्त सिविल सर्विस के सदस्यों की सुविधायें तथा विमुक्तियां पूर्ववत् रहेंगी।

भारतीय संघ राज्य में पब्लिक सर्विस कमीशन के अभिस्ताव (सिफारिश) से भारत सरकार, इंडियन एडमिन्सट्रेटिव सर्विस, भारतीय इंडियन आडिट एण्ड एकाउटेन्ट सर्विस, इंडियन स्टेट रेलवे, डाक और तार विभाग, भारतीय (कस्टम) तथा भारतीय आरक्षी (पुलिस) में लोगों को नियुक्त करेगा। फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन सब नौकरियों के प्रार्थियों की परीक्षा करेगा तथा उन्हें व्यक्तिगत रूप से साक्षात्कार के लिये बुलायेगा।

अखिल भारतीय नौकरियां

पहले सभी अखिल भारतीय नौकरियों में लोगों की नियुक्ति भारत मन्त्री के द्वारा होती थी। भारतीय सिविल सर्विस में जिन्हें नियुक्त करना होता था भारत सचिव उनसे सेवा सम्बन्धी सभी शर्तों का निश्चय एक संप्रतिज्ञा (कानवेन्शन) कराते थे। इसलिये इन सभी नौकरियों को कावेनेण्टेड सर्विस कहा जाता था। इन नौकरियों में नियुक्त होने वाले जिस प्रांत में नियुक्त होते थे उन्हें प्रायः उसी प्रान्तमें आजीवन सेवा करनी पड़ती थी। किन्तु भारतके किसी भी प्रांतमें उनकी बदली हो सकती थी। भारतीय वन-सेवा (फारेस्ट सर्विस), (इंडियन सर्विस आव इन्जिनीयर्स) इण्डियन एजुकेशनल सर्विस आदि भी अखिल भारतीय नौकरियां थीं। ई० सन् १९३७ से इन सब नौकरियोंमें प्रांतीय शासन लोगोंको नियुक्त करता है।

केन्द्रीय शासन की नौकरियां

भारतीय आडिट एण्ड एकाउन्ट सर्विस, भारतीय रेलवे, भारतीय डाक और तार विभाग, भारतीय कस्टम आदि को केन्द्रीय नौकरियां या सेन्ट्रल सर्विस कहा जाता है। भारत-शासन पब्लिक सर्विस कमीशन 'लोक सेवा आयोग' के मतानुसार उपरोक्त सभी केन्द्रीय नौकरियोंमें आदमी बहाल करता है। तथा इस प्रकार नियुक्त सभी कर्मचारी प्रत्यक्ष रूप से भारत-शासन के नियंत्रणाधीन होते हैं।

पहले अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय नौकरियोंमें योरोपियन लोगोंका बाहुल्य था। अब इन सभी नौकरियोंमें प्रायः भारतीय ही हैं। थोड़े से योरोपियन अभी भी कुछ पदों पर हैं।

प्रान्तीय शासन की नौकरियां

प्रांतीय नौकरियों में 'प्रांतीय पब्लिक सर्विस कमीशन' के परामर्शानुसार लोग नियुक्त किये जाते हैं। प्रांतीय नौकरियोंकी दो श्रेणियां या दो स्तर (ग्रेड) हैं।

प्रथम श्रेणीके प्रांतीय कर्मचारियों की संख्या कम है। शिक्षा, सिंचाई, वन तथा स्वास्थ्य विभागोंमें ही प्रायः प्रथम श्रेणीके प्रांतीय नौकर हैं।

प्रान्तीय पब्लिक सर्विसका गठन प्रधानतः द्वितीय श्रेणीके प्रान्तीय नौकरी द्वारा हुआ है। प्रांतीय मेडिकल सर्विस, पुलिस सर्विस, सिविल सर्विस, एजुकेशनल सर्विस एग्रीकल्चरल सर्विस, फारेस्ट सर्विस, तथा इनजिनियरिंग सर्विस आदि प्रांतीय पब्लिक सर्विसके अन्तगत हैं।

प्रांतीय शासन साधारणतः प्रांतके लोगों में से इन सब विभागोंमें लोगोंका नियोग करता है। उच्च शिक्षित, सच्चरित्र तथा स्वस्थ युवकोंमें से चुनकर इन सब पदों पर लोग नियुक्त किये जाते हैं। वेतन तथा शासकीय पद मर्यादा की दृष्टि से ये लोग अखिल भारतीय तथा केन्द्रीय सर्विसके कार्यकर्त्ताओंसे नीचे होते हैं।

सबार्डिनेट सर्विस

प्रान्तीय शासनमें नीचेके पदों को सबार्डिनेट सर्विस कहा जाता है। प्रान्तीय शासन, प्रान्तीय नौकरियोंके समान सबार्डिनेट सर्विस में लोक-नियोग करता है। किन्तु इन पदों पर अपेक्षाकृत कम योग्यतावाले लोगोंमें से चुनकर नियुक्ति होती है।

सरकारी नौकरी संबन्धी समस्यायें

शासकीय विभागों की कार्य दक्षता की वृद्धि तथा निर्वाहके लिये कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है। यथा:—

(१) लोक संग्रह—प्रतियोगिता मूलक परीक्षाओंके आधार पर लोक संग्रह करना उचित है। ऐसा करनेसे नौकरी पार्थियोंमें से सर्वाधिक योग्य व्यक्ति चुना जा सकता है।

(२) पदोन्नति—पदोन्नतिके समय व्यक्तिकी योग्यता तथा सेवा काल दोनों पर विचार करना उचित है। आधुनिक देशोंमें पदोन्नति के समय व्यक्ति की योग्यता का ही ध्यान रखा जाता है। वहां योग्य युवक भी वयस्क व्यक्तियों से उच्च-पदों पर नियुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार इन देशों की शासन व्यवस्था की बड़ी उन्नति हुई है।

(३) वेतन—शासन को इम्प्लायर के हिसाब से सर्वोत्तम होना चाहिये। सभी देशोंमें सरकारके नौकरोंको अच्छा वेतन दिया जाता है। किन्तु भारत में उच्चपद पर स्थित कर्मचारियों को जितना अधिक वेतन तथा अधिदेय दिया जाता है, वह युक्ति संगत नहीं है।

(४) अनुशासन। डिसिप्लिन—प्रत्येक आधुनिक देशों का यह निर्णीत मत है कि शासन कर्मचारियों को राजनीति से अलग रखना उचित है। उनके लिये ऐसी सुव्यवस्था आवश्यक है, जिससे वे निर्विघ्न तथा अच्छी तरह काम कर सकें। किसी प्रकार भय या प्रलोभन देकर उनके कार्य में विघ्न उपस्थित करना या उन्हें

कर्तव्यच्युत करना अनुचित है। इसीलिये सरकारी नौकरियों को उच्चपदस्थ व्यक्तियों द्वारा गठित पब्लिक सर्विस कमीशन के अधीन रखा गया है।

चाहे किसी भी पक्ष (पार्टी) का शासन हो, सरकारी कर्मचारियों को सर्वदा उस पक्ष के मन्त्रिमण्डल का विश्वसनीय बनकर कार्य करना पड़ेगा तथा सत्ताप्राप्त पक्ष की नीति को अनुसरण करना पड़ेगा।

लोक-सेवा-आयोग (पब्लिक सर्विस कमीशन)

भारत शासन विधान में भारत संघ के लिये फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन से भिन्न राज्योंमें भी प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन के गठन की व्यवस्था की गई है। प्रान्तीय सरकार आवश्यकता पड़ने पर फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन का उपयोग कर सकेगा। दो या अधिक प्रान्तों या राज्यों (स्टेट) के लिये एक ही प्रांतीय पब्लिक सर्विस कमीशन का संगठन भी किया जा सकता है।

पब्लिक सर्विस कमीशन

पब्लिक सर्विस कमिशन का काम है सरकारी नौकरी की नियुक्ति, नियंत्रण पदोन्नति, तथा दण्ड विधानके सम्बन्धमें सरकारको परामर्श देना। वेतन, अधिदेय (एलाउन्स) पेन्सन आदि का यथोचित रूप से चलने देना तथा इनका निरीक्षण करना भी इसका कर्तव्य है। यदि किसी पदधारी (आफिसर) को पद सम्बन्धी कठिनाई हो तो उसे पूरा करने के लिये वे पब्लिक सर्विस कमीशन से प्रार्थना कर सकते हैं।

पब्लिक सर्विस कमीशन की उपयोगिता

पब्लिक सर्विस कमीशन (लोक सेवा योग) को कायम रखने में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि इसके द्वारा शासन विभागका कार्य सुचारु रूपसे (अविच्छिन्न रूपसे) चलता रहता है तथा शासन कर्मचारियों (सेवकों) के कार्योंमें शासन विभाग या विधि विभागके अनुचित हस्तक्षेपका भय नहीं रहता।

———

अध्याय १७

आरक्षा और कारागार

भारतीय पुलिस (आरक्षी) तथा कारागारमें सुधार की आवश्यकता बहुत दिन से अनुभव की जा रही है।

आरक्षी (पुलिस)

सच कहा जाय तो भारतीय आरक्षी (इंडियन पुलिस) नाम की कोई चीज नहीं है। १८६७ ई० के *'ब्रिटिश भारतीय आरक्षी अधिनियम'* के अनुसार प्रांतीय आधार पर संगठित प्रांतीय सरकारों (शासनों) का पुलिस फोर्स है। वह पूर्णरूपेण प्रान्तीय शासनों के नियंत्रणोंमें है।

प्रान्तोंके प्रत्येक जिले (मण्डल) में पुलिस फोर्स (आरक्षी बल) का संघटन है। जिले की पुलिस (आरक्षी) का प्रधान अधिकारी या डिस्ट्रिक्ट पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट है। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट द्विविध नियंत्रणोंके अधीन हैं। (१) जिले की शान्ति व्यवस्था की रक्षाके लिये वह जिला मैजिस्ट्रेट के प्रति उत्तरदायी है। इस कार्यमें वह जिला मैजिस्ट्रेट की आज्ञाका अनुसरण करता है। (२) पुलिस फोर्स के भीतरी संघटन और आदेशोंके विषयमें डिस्ट्रिक्ट पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट (जिला आरक्षी अधीक्षक) डिपुटि इन्सपेक्टर जनरल तथा इन्सपेक्टर जनरल और प्रान्तीय मंत्रिमंडल के पुलिस विभाग के मंत्री के अधीन है।

पुलिस का काम है—विधि और आदेशों की रक्षा करना, शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना, अपराधों को रोकना, अपराधीको गिरफ्तार कर न्यायालय में उपस्थित करना।

भारत की पुलिस में सुधार की बड़ी जरूरत है। प्रांतीय पुलिस का सबसे बड़ा अधिकारी इन्सपेक्टर जनरल (आई० जी) है। कलकत्ता, मद्रास तथा बम्बईके

प्रेसिडेन्सी नगरोंमें स्वतंत्र पुलिस फोर्सका संघटन है। इसका अधिकारी पुलिस-कमिश्नर होता है।

आरक्षीके कार्य की सुविधा के लिये प्रत्येक प्रांतको कई रेंजोंमें बांटा गया है। साधारण पुलिसके अतिरिक्त रेलवे पुलिस सशस्त्र पुलिस (आर्म पुलिस), तथा रिजर्व पुलिस भी हैं। प्रत्येक रेंज के लिये एक एक प्रधान डि० आई० जी० होता है। कई जिलोंका एक रेंज होता।

पीछे कहा गया है कि जिले की पुलिस का अधिकारी डिस्ट्रिक्ट पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट होता है। उसकी सहायताके लिये मुख्य मुख्य उपविभागों में एक एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट होता है। इन्हें सबडिविजनल पुलिस आफिसर कहा जाता है। प्रत्येक सबडिविजनमें एक या दो सर्किल होती है। इनमें एक सर्किल इन्सपेक्टर होता है। प्रत्येक सर्किलके अन्तर्गत कई थाने होते है। थानों में एक या दो दारोगा एस० आई० पुलिस) रहते हैं।

भारतीय पुलिसमें नियुक्त होनेवाले लोगोंकी परीक्षा पब्लिक सर्विस कमीशन द्वारा होती है। एस पी० तथा डी० प्राविन्सियल सर्विस के लोग होते हैं। दारोगा अपने पदों में उन्नति करने पर डी० एस० पी० हो सकते हैं। इसके विपरीत नये आदमी को भी पब्लिक सर्विस कमीशन प्रतियोगिता मूलक परीक्षा लेकर डी० एस० पी० के पद पर नियुक्त कर सकता है। इन्सपेक्टर, सबइन्सपेक्टर तथा एसिस्टेन्ट सबइन्सपेक्टर आदि पुलिस आरक्षी बल के अधीनस्थ अधिकारी होते हैं। गावों में चौकीदार पुलिस का काम करते हैं। चौकीदारोंके मुखियाको दफादार कहते हैं। पंचायत तथा संघ-समिति (यूनियन बोर्ड) द्वारा चौकीदार तथा दफादार नियुक्त किये जाते हैं।

कारागार

यदि कोई व्यक्ति किसी अपराधमें गिरफ्तार किया जाता है तो पुलिस उसे न्यायालय के समक्ष उपस्थित करती है। न्यायनिर्णय के द्वारा यदि उसे कारावास

दण्ड दिया जाता है तो उसे कारागार (जेल) में रखा जाता है। इसलिये एक स्वतंत्र विभाग होने पर भी कारागार का पुलिस तथा न्यायालयसे घनिष्ठ संपर्क है।

प्रांत के कारागारों की देख-रेख के लिये प्रत्येक प्रांत में एक कारागार के प्रधान निरीक्षक (आ० जी०) होते हैं। कारागार विभाग के मंत्रीके अधीन ये सबसे बड़े अधिकारी हैं। बन्दियों के काम, स्वास्थ्य व्यवस्था एवं शृंखला का निरीक्षण करना प्रधान निरीक्षक का काम है।

कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास प्रेसिडेंसी के (महाप्रान्तीय) नगरों में एक-एक प्रेसिडेंसी कारागार भी हैं। प्रत्येक विभाग (कमिश्नरी) में एक सेन्ट्रल जेल या केन्द्रीय कारागार होता है। केन्द्रीय कारागारों में प्रायः बड़े अपराधोंके दंडित अपराधी रखे जाते हैं। साधारणतः कोई सुयोग्य चिकित्सक (डाक्टर) केन्द्रीय कारागार का अधीक्षक (सुपरिन्टेन्डेन्ट) बनाया जाता है। प्रत्येक जिले में एक एक जिला जेल या मण्डल कारागार होता है। जिले का सिविलसर्जन (व्यवहार-चिकित्सक) जिला जेल का सुपरिन्टेन्डेन्ट होता है। जिला मैजिस्टेट जिले के कारागार का प्रधान परिदर्शक होता है। इन दोनों के द्वारा जिला कारागार का नियंत्रण होता है।

स्त्री-बंदी (बंदिनी) के रखने के लिये कारागार के भीतर पृथक्-पृथक् व्यवस्था होती है।

अल्प वयस्क अपराधियोंके लिये अलग कारागार होता है। ऐसे अपराधी भविष्य में अपराध छोड़कर अच्छे नागरिक का जीवन अपनायें तथा समाज को हानि न करें। एतदर्थ कम उम्र के बंदियों को कला कारीगरी की शिक्षा देने के लिये थोड़ी बहुत व्यवस्था की गई है। इस प्रकार कला कारीगरी सीखकर छूटने वाले अपराधियों की कारागार से छूटने पर भी देख-रेख की जाती है। जो अपराधी दुष्क्रिया (अपराध) में पटु नहीं हो चुके हैं। उनके सुधार के लिये बोरस्टल शिक्षणालय स्थापित किया गया है।

कारागार में बीमार होनेवाले के लिये अस्पताल या चिकित्सालय होता है। अत्यन्त गर्हित अपराधों के दण्डितों को अन्य बन्दियों से बहुत कम मिलने जुलने दिया जाता है। उन्हें यथासम्भव अलग रखने की व्यवस्था की जाती है।

—०—

अध्याय १८

स्थानीय स्वशासन

हाट-बाजार, पीने का पानी, रास्ता, घाट, प्राथमिक शिक्षा आदि स्थानीय प्रयोजन के विषयों की विवेचना कर इनकी व्यवस्था की जाती है। साधारणतः अपने-अपने अंचलों के निवासी मिल कर इन सब की व्यवस्था स्वयं कर लेते हैं। इसी को स्थानीय स्वशासन कहा जाता है।

देश के विभिन्न वर्गो के लिये स्वशासन की अलग-अलग संस्थायें हैं। देश के प्रत्येक अधिवासी किसी न किसी स्वायत्तशासी सस्था के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत हैं। स्थानीय स्वशासन संस्थाओ का अधिकारी वर्ग किसी न किसी रूप में उनके दिन प्रतिदिन की जीवन-यात्रा की व्यवस्था का नियन्त्रण करता है।

गाव के लोग आपसी सहयोग द्वारा पचायत वा सघ-समिति (यूनियन बोर्ड) का सघटन करते हैं। पचायत तथा सघ-समिति स्थानीय, गण (लोकल बोर्ड) के अधीन होती है। इसी प्रकार स्थानीय गण मण्डल-गण (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड) के अधीन होता है। मण्डल-गण, जिले के सभी स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं का नियन्त्रण करता है।

महानगरो के निवासियों की सुव्यवस्था के लिये कारपोरेशन (निगम) तथा नगर की प्रवन्ध-व्यवस्था के लिये नगर समिति (म्युनिसिपैलिटी) होती है।

सन् १९१९ ई० के शासन सुधार अधिनियम में स्थानीय स्वशासन विभाग का भार एक मन्त्री के हाथ में सौप दिया गया था। तभी से आज तक मन्त्रिगण इस व्यवस्था की उन्नति के लिये यथेष्ट चेष्टा करते आ रहे हैं।

विभिन्न प्रकार तथा स्तर की स्थानीय स्वशासन संस्थाओं की एक तालिका यहां दी जाती है :—
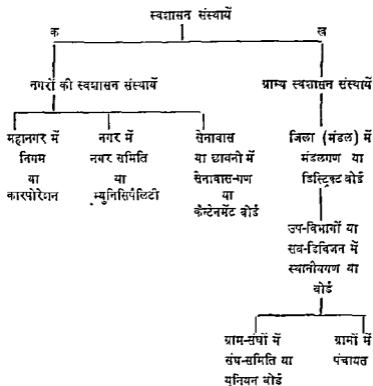
स्थानीय स्वशासन का इतिहास

अपने देश में प्रागैतिहासिक काल से पंचायत की प्रथा चली आ रही है। प्रधानतः सामाजिक व्यवहारों की व्यवस्था करने के लिये तथा स्थानीय लड़ाई झगड़ों का बीच-बचाव करने के लिये पंचायतों का संघटन किया जाता था। इस देश में अत्यन्त प्राचीन काल से पंचायतों द्वारा ग्राम तथा नगरों के लोक-जीवन का

नियंत्रण होता था, इसमें किसी को सन्देह नही है। सभी प्रौढ़ (बालिग) पुरुष मिलकर ऐसी संस्था का निर्वाचन करते थे।

अंग्रेजी राज्य काल में कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास नगरों में आधुनिक स्वशासन व्यवस्था की शुरुआत हुई।

इसके पश्चात् १८८२ ई० में लार्ड रिपन की सरकार ने स्थानीय स्वशासन के प्रसार का प्रयत्न किया। उनके इस प्रयत्न का उद्देश्य स्थानीय स्वशासन के द्वारा देश की शासन व्यवस्था में उन्नति करना तथा जन साधारण में स्वशासन की रुचि तथा योग्यता का प्रसार करना था। उपरोक्त उद्देश्य की सिद्धि के लिये स्वशासन संस्था बहुत बड़ा शिक्षणालय होती है। यदि देश की जनता स्वयं अपने इलाकों के शासन में भाग न ले तो देश की शासन व्यवस्था की उन्नति असंभव होगी। इसके अतिरिक्त अपना काम अपने आप करने से स्वावलम्बन प्राप्त होता है। *जनता गण तन्त्रात्मक पद्धति के शासन सचालन की शिक्षा प्राप्त करती है।*

हमारे देशके राष्ट्रीय जीवन की धारा सदा गावों में प्रवाहित होती रही है। आज भी देश के अधिकाश निवासी गावो में रहते है तथा उनके चिन्तन का प्रमुख विषय गाव ही होता है। परन्तु इधर कुछ वर्षों से नगरवासी ही देश के सभी क्षेत्रों का नेतृत्व कर रहे हैं। परिणाम स्वरूप गावों की उपेक्षा हो रही है। आज गावों के स्वशासन का अधिकाधिक विस्तार करना अत्यावश्यक है, अन्यथा राष्ट्र की जीवन धारा के सूख जाने का भय है।

स्थानीय स्वशासन विभाग

प्रान्तीय शासन का जो विभाग प्रान्त के स्थानीय स्वशासन की देख रेख करता है उसे स्थानीय स्वशासन विभाग कहते हैं। १९१९ ई० से स्थानीय स्वशासन विभाग एक मंत्री के अधीन सचालित होता है। अर्थात् प्रान्त के मन्त्रि-मण्डल में एक मंत्री इस विभाग का अधिकारी होता है।

स्थानीय स्वशासन संस्थाएं

कुछ मुख्य स्वशासन संस्थायें ये हैं:—

(क) नगर क्षेत्रों में—(१) (निगम) या कारपोरेशन, (२) नगर समिति या म्युनिसिपैलिटी (३) सेनावास-गण छावनी या कैन्टेनमेंट बोर्ड।

(ख) ग्राम्य क्षेत्रों में— (१) मण्डल-गण या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, (२) स्थानीय गण या लोकल बोर्ड, (३) संघ समिति और ग्राम पंचायत।

स्थानीय स्वशासन की सफलता के पथ की बाधाएं

समाज के दिन-प्रति-दिन की समस्याओं के समाधान के लिये जनता जितना अधिक आग्रह प्रकट करेगी, स्थानीय स्वशासन को उतनी अधिक सफलता प्राप्त होगी।

दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश की जनता अपने ग्राम तथा नगरों के शासन विषय में प्रायः उदासीन रहती है। यह उदासीनता अत्यन्त हानिकारक है क्योंकि जनता की उदासीनता से शासकवर्ग दुर्विनीत, दुर्नीतिपरायण एवं अकर्मण्य हो जाते हैं।

स्थानीय स्वशासन की सफलता कैसे हो ?

यदि देश में सर्वत्र स्वशासन व्यवस्था को सफल बनाना है, और यदि राष्ट्रीय जीवन के प्रधान कर्म-क्षेत्र के रूप में इसकी प्रतिष्ठा करनी हो तो ऐसा प्रयत्न होना आवश्यक है जिससे स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थायें स्वतंत्र एवं सुचारु रूप से चल सकें। इस उद्देश्य को सामने रखकर देश के सर्वश्रेष्ठ योग्य व्यक्तियों को इन संस्थाओं का कार्य अपने हाथ में लेना चाहिये। इन संस्थाओं को प्रचुर अर्थ-साहाय्य दिलाना चाहिये। संस्था के कार्यों को दक्षता से चलाने के लिये सुयोग्य वैतनिक

कर्मचारियों को नियुक्त करना चाहिये। उपयुक्त प्रतिनिधि चुनने के लिये जनता का शिक्षित होना आवश्यक है। इसलिये शिक्षा-प्रचार पर अधिक ध्यान देना चाहिये। स्वशासन संस्थाओं की प्रचलित व्यवस्था तथा कार्य पद्धति के प्रति जनता की सतर्कता भी अत्यावश्यक है। यदि उपरोक्त साधनों की वृद्धि तथा व्यवस्था हो तो इनके उपयोग से भारत-संघ के नागरिकों का जीवन सुखी एवं समृद्ध हो सकेगा।

—०—

अध्याय १९
नगर क्षेत्रों में स्वशासन

हमारे आज के राष्ट्रीय जीवन में नगरों को अधिक महत्व प्राप्त है। इसलिये नगरों में शासन की ओर लोगों का ध्यान क्रमशः अधिक हो रहा है।

भारत के सभी नगरों में एक सी स्वशासन व्यवस्था नहीं है। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास तथा बंगलौर नगरों में कार्पोरेशन (निगम) हैं। हाल में संयुक्त प्रान्त के पाच बड़े नगरों में कार्पोरेशन की स्थापना हुई है। इन नगरों में एक एक वैतनिक मेयर (महानागरिक) नियुक्त किये जायेंगे। सेनावासों में बहुत मामूली स्वशासन की व्यवस्था है जिसे सेनावास-गण या कैन्टनमेन्ट बोर्ड कहते हैं।

नगर समिति के कार्य

नगर समिति (म्युनिसिपैलिटी) को दो प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं:—

(१) बाध्यतामूलक (अनिवार्य), (२) ऐच्छिक।

प्रत्येक नगर समिति 'नगर समिति अधिनियम' के अनुसार थोड़े से कार्यों को करने के लिये बाध्य है। यथा—मार्गों पर प्रकाश का प्रबन्ध करना, सड़कों पर छिड़काव करना, गली तथा मार्गों की सफाई करना, आदि। कुछ काम ऐसे हैं जिनका करना नगर समिति की शक्ति, योग्यता तथा इच्छा पर निर्भर करता है। इन्हें ऐच्छिक कार्य कहते हैं। यथा—पार्क (उपवन) तथा क्रीड़ांगन की व्यवस्था करना, म्यूजियम तथा पुस्तकालय स्थापित करना आदि।

कार्पोरेशन, नगर-समिति, कस्बा (टाउन) समिति आदि की नागरिक स्व-शासन संस्थाओं के काम बहुत-कुछ एक ही तरह के हैं। अंतर केवल उनकी आयतन तथा संगठन के सम्बन्ध में है। कार्पोरेशन में समय-समय पर ऐसी समस्यायें

उठ खड़ी होती है जिनकी छोटे-छोटे नगरों में कोई सम्भावना नहीं है। इसीलिये कार्पोरेशन को नगर-समितियों से अधिक शक्ति दी जाती है। इसी प्रकार नगर-समिति को कस्बा समिति से अधिक शक्ति दी जाती है।

निगम (कार्पोरेशन)

कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास इन तीन नगरों की स्थानीय स्वशासन संस्था कार्पोरेशन है। इन तीनों नगरों के कार्पोरेशन (निगमों) का संघटन अलग-अलग अधिनियमों द्वारा हुआ है। इनके सदस्यों (काउन्सिलर) की संख्या भी समान नहीं है। बम्बई कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या ११६ है जब कि मद्रास की ६१। कुछ थोड़े से शासन द्वारा मनोनीत सदस्यों के सिवा शेष जनता द्वारा निर्वाचित होते हैं। बम्बई नगर के निवासियों को अपने नगर के स्वशासन में बहुत अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। कार्पोरेशन के ऊपर प्रान्तीय शासनों की नियन्त्रण-शक्ति सर्वत्र समान नहीं है। उदाहरण स्वरूप कलकत्ता कार्पोरेशन के मेयर (महा-नागरिक) तथा एग्जीक्यूटिव आफिसर दोनों ही निर्वाचित होते हैं। किन्तु मद्रास कारपोरेशन के एग्ज्यूटिव आफिसर प्रान्तीय शासन द्वारा नियुक्त किये जाते हैं।

नगर समिति (म्युनिसिपैलिटी)

गठन-विधि

भारत में ७८० नगर समितियां हैं। पहले नगर समितियों के सदस्यों में तीन चौथाई सदस्य निर्वाचित होते थे। अब सभी सदस्य निर्वाचित होने लगे हैं। नगर समितियों में बालिग मताधिकार से निर्वाचन होगा। किन्तु अभी तक सभी जगह बालिग मताधिकार का प्रसार नहीं हो पाया है। एक सीमित सख्या में कर-दाताओं को मतदान का अधिकार है।

नगर समितियों के मुख्य-मुख्य कार्य ये हैं:–

नागरिकों से गृह-निर्माण के कानूनों का पालन कराना, इसका निरीक्षण करना, रास्ता-घाट, गलियों तथा अन्य स्थानों की सफाई और स्वास्थ्य सम्बन्धी अन्य कार्यों की व्यवस्था करना, पीने के पानी (वाटर सप्लाय) का प्रबन्ध करना, मार्गों तथा गलियों में प्रकाश करना, अन्न (फूड) तथा औषधि विक्रय का नियंत्रण करना, बाजारों की देख-रेख करना, समाधिस्थल (कब्रगाह) तथा श्मशानों की व्यवस्था करना, जन्म तथा मृत्यु की लेखा रखना और आग बुझाने की व्यवस्था करना।

नगर समितियों का कार्य संचालन

नगर समिति के कमिश्नर की ओर से सभापति (चेयरमेन) नगर समिति का कार्य सम्हालते हैं। उनके सहायतार्थ कहीं कहीं एक उपसभापति होते हैं। उन्हें भी कुछ अधिकार प्राप्त होते हैं।

सभापति तथा उपसभापति (वाइस-चेयरमेन) वेतन पाते हैं। नगर समिति के अन्य सभी कर्मचारी वेतन भोगी होते हैं। जिनमें कुछ प्रमुख कर्मचारी ये हैं:– सचिव (सेक्रेटरी), अभियान्त्रिक (इंजिनीयर), स्वास्थ्य-अधिकारी (हेल्थ-आफिसर), असेसर तथा कलेक्टर। नगर-समिति की आय एक लाख रुपये से अधिक होने पर प्रान्त शासक वहां एक प्रधान अभिकर्त्ता या (एग्जिक्यूटिव आफिसर) नियुक्त करने की आज्ञा दे सकता है।

नगर समिति की आय

नगर समिति की आय के प्रमुख विषय ये हैं:–मकानों पर कर, जीव जन्तुओं तथा सवारियों पर कर, सड़कों, रास्तों, पुलों तथा घाटों पर कर आदि। इनके सिवा नगर समिति की अपनी सम्पत्ति से थोड़ी आमदनी होती है। प्रांतीय सरकार से कुछ आर्थिक सहायता मिलती है तथा अन्य कई सूत्रों से भी कुछ आमदनी हो

जाती है परन्तु यह सब मिलाकर समस्त आय के एक तृतीयांश से अधिक नहीं होता। १९३८–३९ ई० में भारत की सभी नगर-समितियों की वार्षिक आय ४१ करोड़ रुपये थी।

मध्य प्रान्त तथा मद्रास की नगर समितियां

मध्यप्रान्त की प्रत्येक नगर-समिति में कम से कम पांच सदस्य होते हैं, इनमें अधिकांश सदस्य निर्वाचित होते हैं। ये निर्वाचित सदस्य ही अन्य सदस्यों को मनोनीत करते हैं। मनोनीत सदस्यों में एक मुसलमान, एक हिन्दू तथा एक स्त्री होना चाहिये। मद्रास के सदस्य निर्वाचित होते हैं।

बम्बई की नगर समितियां

बम्बई की नगर-समितियों के सभी सदस्य निर्वाचित होते हैं जिनमें हरिजनों तथा स्त्रियों के लिये सुरक्षित स्थान हैं। अभी तक पृथक निर्वाचन की व्यवस्था है परन्तु मुसलमानों का समर्थन प्राप्त होने पर पृथक् निर्वाचन का अन्त कर दिया जायगा।

बङ्गाल की नगर समितियां

बंगाल की नगर-समितियां सन् १९३२ ई० के बंगीय नगर समिति अधिनियम के अनुसार जिसका पुन संशोधन हुआ है, संचालित होती हैं। इनके समस्त सदस्यों में तीन चतुर्थांश निर्वाचित सदस्य होते हैं, शेष (एक चतुर्थांश) सदस्य मनोनीत किये जाते हैं।

सेनावास-गण (कन्टोन्मेंट बोर्ड)

जहां नगर के किसी भाग में सैनिकों के शिविर तथा स्थायी आवास हैं वहां पर नगर के उस भाग की स्वच्छता आदि की व्यवस्था के लिये सेनावास-गण (कैन्टून्मेंट बोर्ड) है। यह संस्था वहां के स्वायत्त-शासन की अधिकारिणी होती है।

गण में अधिकांश निर्वाचित सदस्य होते हैं। किन्तु गण का सभापति कोई सरकारी कर्मचारी होता है। सेनावास-गण के सिद्धान्तों का सर्वश्रेष्ठ निर्णायक भारत शासन का देशरक्षा-विभाग होता है।

नगर समितियों की कार्य प्रणाली

नगर समितियों की कार्य प्रणाली का तथा इनके मुख्य-अमुख्य कार्यों का उल्लेख नगर-समिति अधिनियम (म्युनिसिपल ऐक्ट) में रहता है। पीने का पानी आदि कुछ कार्य नगर-समितियों के अवश्य-कर्त्तव्य हैं। शिशु-कल्याण, प्रसूति-कल्याण, नागरिकों के आमोद प्रमोद की व्यवस्था, म्युजियम (कौतुकालय) की स्थापना, उपवन तथा क्रीड़ांगन निर्माण आदि कार्य नगर समिति की इच्छा तथा शक्ति के ऊपर निर्भर हैं। अतः अमुख्य हैं।

नगर-समितियों में प्रायः निर्वाचित सदस्य होते हैं। वे अपने में से किसी एक व्यक्ति को सभापति निर्वाचित करते हैं। सदस्य वेतन नहीं पाते हैं। इगलैंड के मेयरों के समान ही भारत के मेयर (महानागरिक) तथा चेयरमेन (सभापति) विशेष सम्मान पाते हैं किन्तु इन्हें अमरीका के मेयर या सभापति के समान शक्ति तथा अधिकार नहीं हैं।

नगर-समितियों के अन्तर्गत सदस्यों द्वारा गठित कई स्थायी समितियां (स्टैंण्डिग कमिटि) होती हैं। ये समितियां विभिन्न विभागों का संचालन, नियन्त्रण तथा नीति निर्देशन करती हैं। सभी सदस्य मिलकर काम नहीं करते हैं। यदि ये स्थायी समितियां न रहें तो किसी दूसरी तरह से अर्थ संचय, शिक्षा, स्वास्थ्य, जल-व्यवस्था, बाजार तथा रास्ता-घाट आदि का प्रबंध करना असम्भव हो जायगा। सच तो यह है कि आधुनिक युग में शासन-प्रणाली का आधार यही समिति-प्रथा है।

नगर-समितियों के कर्मचारियों तथा विशेषज्ञों के कार्य बड़े ही उत्तरदायित्व के हैं। कर्मचारियों में सर्व प्रमुख स्थान कार्य सचिव (सेक्रेटरी) का होता है।

नगर-समिति की समस्त अधिशासी शक्ति कर्म-सचिव के हाथ में है। उनकी योग्यता, ज्ञान तथा पद-मर्यादा के कारण प्रायः सभी कार्यों में उनसे परामर्श लिया जाता है। मेयर (महानागरिक) सभापति, सदस्यों तथा अन्य प्रमुख वैतनिक कर्मचारियों के अतिरिक्त, गन्दी मोरियों की निकासी, व्यवस्था आदि कार्यों के लिये भी कई विशेषज्ञ वैतनिक कर्मचारी रखे जाते हैं। वे लोग अपने-अपने विषयों में सदस्यों की सहायता करते हैं।

सदस्य लोग केवल कार्य सचालन की नीति स्थिर करते हैं।

अध्याय २०

ग्रामीण क्षेत्रोंमें स्वशासन

नगर क्षेत्रों में कार्पोरेशन अथवा नगर-समिति जो कार्य करती हैं, वे ही कार्य ग्रामीण क्षेत्रों में मण्डलगण (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड), स्थानीय गण (लोकल बोर्ड), संघसमिति-गण (युनियन बोर्ड) ग्राम पंचायत आदि संस्थायें करती हैं। किन्तु नगर-क्षेत्रों के सीमित तथा ग्रामीण क्षेत्रों के सुविस्तृत होने के कारण इनकी कार्य पद्धति में बहुत अन्तर है। तथापि दोनों क्षेत्रों की समस्यायें प्रायः एक सी ही हैं। कितनी ही समस्यायें केवल शहरों में है, गांवों में नहीं। इसके विपरीत ग्राम क्षेत्रों की कितनी ही समस्याओं का सामना नगर समितियों को नहीं करना पड़ता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में स्वशासन की उन्नति आवश्यक है

अपने देश के गावों की सामाजिक संस्थाओं के नष्ट हो जाने के कारण ग्रामीण जन अत्यन्त निराश, दुखी तथा दुर्दशाग्रस्त हो गये हैं। नौकरशाही शासन के जो प्रतिनिधि गावों में रहते हैं, वे बहिर्जगत से कुछ भी सम्पर्क नहीं रखते। जमीन्दार भी प्रायः अपनी जमीन्दारी में न रह कर शहरों में बंगले बना कर रहते हैं। शिक्षित तथा सुयोग्य व्यक्ति भी गाव छोड़ कर नगरों में रहने लगे हैं, जिससे दरिद्र एवं अशिक्षित ग्रामीण व्यक्ति ही गावों में बचे रहते हैं।

आज देश स्वाधीन हो गया है। अपना देश ग्राम प्रधान है। अतएव देश की उन्नति के लिये ग्रामों की उन्नति आवश्यक है। सबसे अधिक आवश्यक काम है ग्रामीणों को संघ-बद्ध करना। हमारे ग्रामीणों को शिक्षा और खाद्य

की बड़ी जरूरत है। ये दोनो वस्तुयें मिलने पर ही उनकी राजनैतिक चेतना जगेगी।

आज राष्ट्र की सहायता तथा विधियों के द्वारा हमें अपनी ग्रामीण-सभ्यता तथा समाज की पुनः प्रतिष्ठा करनी चाहिये।

ऐसा करने से संघबद्ध ग्रामीण समाज तथा नागरिक चेतना हमारे राष्ट्र गठन में *बड़ा सहायक होगी। ग्रामीण स्वशासन संस्थाओं की उन्नति द्वारा ही* इस चेतना का प्रादुर्भाव संभव है।

ग्रामीण क्षेत्रों की स्वशासन प्रणाली

ग्रामीण क्षेत्रों की स्वशासन संस्थाओं में मण्डल-गण सबसे बड़ी तथा ग्राम-पंचायत सबसे छोटी संस्था है। मण्डल-गण (जिला बोर्ड) के अन्तर्गत कई स्थानीय-गण (लोकल बोर्ड) होते हैं। स्थानीय-गण (लोकल बोर्ड) उपविभागों (सब-डिविजन) की स्वशासन संस्था है। मण्डल-गण ग्रामीण स्वशासन सस्थाओ में सब से मुख्य है। नगर क्षेत्रों को छोड़ कर सम्पूर्ण जिले के स्वशासन की शक्ति मण्डल-गण (जिला बोर्ड) को उपलब्ध है। हिसाब से देखा गया है कि जिला बोर्डों की आय हर आदमी १० आना है इतने कम धन से देश की शिक्षा-स्वास्थ्य तथा अन्य उन्नति का कार्य ये स्वशासन संस्था कैसे कर सकेगी। अतएव सरकार का कर्त्तव्य है कि इन संस्थाओं की आर्थिक सहायता करके लोक-जीवन को ऊपर उठाये।

मंडल गण (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड)

आसाम को छोड़ कर भारत के प्रायः सभी जिलों में एक-एक मण्डल-गण है। नगर-समिति की तरह मण्डल-गणों मे भी अधिकांश सदस्य निर्वाचित होते है। इनके सभापति भी प्रायः सदस्यों द्वारा ही निर्वाचित होते है।

प्रान्तीय शासन (प्रोविन्सियल गवर्मेंट) को नगर-समितियों की तरह मण्डल गण को नियंत्रित करने की शक्ति प्राप्त है। गण के कार्यों में अधिक अव्यवस्था उत्पन्न होने पर प्रान्त-शासन जिला बोर्ड को भंग कर दे सकता है।

बंगाल में सरकार जिला बोर्ड की सदस्य-संख्या स्थिर करती है। किसी भी गणकी सदस्य संख्या नौ से कम नहीं होती है। प्रायः गणों की सदस्य संख्या १० से ३३ तक है। सदस्यों में अधिकांश निर्वाचित तथा शेष मनोनीत होते हैं। पर आशा है कि अब सभी सदस्य निर्वाचित होंगे।

बम्बई के मंडलगण (डिस्ट्रिक्ट बोर्ड)

बम्बई के जिला बोर्ड में सभी निर्वाचित सदस्य होते है। प्रान्तीय व्यवस्थापिका सभाओं के निर्वाचन में जिन्हें मतदान का अधिकार प्राप्त है, वे सभी मण्डल-गण के निर्वाचन में मतदान कर सकते है।

आगे चलकर सभी बालिग व्यक्तियो को मतदान का अधिकार मिल जायगा। यहां के जिला बोर्ड का कार्य काल ३ वर्ष है।

मध्य प्रान्त के जिला-बोर्ड

प्रान्तीय सरकार मध्यप्रान्त के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्य संख्या स्थिर करती है। मण्डल-गणों की समस्त सदस्य सख्या का ४/५ चार-पचमांश अधीनस्थ लोकल बोर्ड द्वारा निर्वाचित होता है तथा १/५ एक पचमांश सदस्य सख्या का निर्वाचन जिले के लोगो द्वारा प्रत्यक्ष मतदान पद्धति से होता है। मण्डल गण अपने लिये अपने किन्ही दो सदस्यो को सभापति तथा उपसभापति पद के लिये निर्वाचित करता है।

मंडल गण के कार्य

जिले की स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति का भार मण्डल-गण को उठाना पड़ता है। मण्डल-गण के कर्त्तव्यों का हम निम्न-लिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) शिक्षा (प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय) (२) चिकित्सा (औषधालय तथा चिकित्सालय), (३) यातायात (रास्ता-घाट तथा सड़कों की उन्नति, जीर्णोद्धार तथा आवागमन की सुविधा आदि), (४) जन-स्वास्थ्य व्यवस्था, (ग्रामो मे पीने के पानी की व्यवस्था सहित) (५) टीका दिलाना, (६) जन-गणना, (७) दुर्भिक्ष में साहाय्य करना, (८) बाजार तथा मेलों का नियंत्रण करना।

संयुक्त प्रान्तमें डिस्ट्रिक्ट बोर्ड

संयुक्त प्रान्त में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का संघटन १९२२ के अधिनियम के अनुसार हुआ है। प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड (मंडल-गण) में सदस्य की संख्या कम-से-कम १५ और अधिक-से-अधिक ४० होती है सदस्य सख्या का निर्धारण प्रान्तीय शासन करता है। इनमें ३ सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य भी होते है। जिनमें एक स्त्रियों का प्रतिनिधि एक दलित जातियो का प्रतिनिधि होता है। चुनाव साप्रदायिक आधार पर होता था। परन्तु अब निश्चित स्थानो के साथ सयुक्त निर्वाचन होता है। सयुक्त प्रात में समस्त ४८ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड है। बोर्ड के पहले अधिवेशन मे चार-चार सदस्यों की कई उपसमितिया (सब कमिटि) बना दी जाती है। जो विभिन्न विभागों का काम सम्हालती है। हर उपसमिति का सभापति होता है। शिक्षा-उप-समिति के सभापति का दर्जा सब में बड़ा माना जाता है। उन्हे शिक्षा विभाग का चेयरमैन कहा जाता है। विहार प्रान्त के मडल-गण का सघटन भी सयुक्त प्रान्त के ऐसा ही है।

मंडल गण (जिला बोर्ड) का आय-व्यय

पहले भूमि-कर, विविध दण्ड-कर, सड़क-कर और घाटो के कर से मण्डल-गण को आमदनी होती थी। किन्तु वर्तमान काल मे इन सभी करो की वसूली प्रान्तीय सरकार करती है तथा वह मडल-गणो को इसके बदले एक निश्चित रकम

अतः मण्डल-गणों को सम्पूर्णतया प्रांतीय सरकार द्वारा प्रदत्त साहाय्य (ग्रांट) पर निर्भर करना पड़ता है। गणों को केन्द्रीय शासन के यातायात विभाग से भी कभी-कभी सहायता मिलती है परन्तु यह सहायता प्रान्तीय सरकार के द्वारा ही प्राप्त होती है। मण्डल-गण ऋण-लेकर भी थोड़ा बहुत धन प्राप्त कर सकता है।

प्रधानतः निम्न विषयों पर व्यय होता है :—

(१) प्राथमिक शिक्षा, (२) जल की व्यवस्था, (३) सड़कों तथा रास्ता घाट की व्यवस्था और जीर्णोद्धार, (४) गृह निर्माण, (५) पुल इत्यादि का निर्माण तथा जीर्णोद्धार, (६) जन-स्वास्थ्य सरक्षण, (चिकित्सा) आदि।

शासन समय-समय पर मण्डल-गण के हिसाबों का परीक्षण (अंकेक्षण) करता है। विभाजन के पहले बंगाल के २६ गणों की समस्त वार्षिक आय १६० लाख रुपये की थी। अर्थात् प्रति व्यक्ति पाच आने से भी कम। उन दिनों गणों का वार्षिक व्यय था १५० करोड़। व्यय का $\frac{1}{3}$ शिक्षा पर, $\frac{1}{2}$ जनस्वास्थ्य तथा चिकित्सा पर खर्च हुआ था।

लोकल बोर्ड तथा तालुका या सर्किल बोर्ड

सरकारी विज्ञप्ति द्वारा उपविभागों के लिये लोकल बोर्ड का संघटन किया जाता है। जिला बोर्ड जिन कर्त्तव्यों को संपादन करने का भार स्थानीय गण को देता है उन्हें स्थानीय-गण सम्पन्न करते हैं। स्थानीय-गणों के कुछ प्रमुख कार्य ये हैं:—(१) अपने उपविभाग के रास्तों तथा सड़कों की देखरेख करना तथा इनके सुधार तथा संरक्षण का यत्न करना, (२) घाटों का प्रबन्ध करना। *स्थानीय-गण, तालुका-गण या सर्किल-गण आदि संस्थायें मण्डल-गण के विभागीय* प्रतिनिधि के रूप में काम करती हैं। मण्डल-गण के समान स्थानीय-गणों में एक निर्वाचित सभापति होते हैं। इनके अधिकांश सदस्य भी निर्वाचित होते हैं।

स्थानीय गणों को अर्थागम का कोई स्रोत नहीं है। इन्हें मण्डल-गण की सहायता पर अवलम्बित रहना पड़ता है।

पंजाब तथा सयुक्त प्रान्त में स्थानीय या तालुका गण नहीं होते। आसाम मे मण्डल-गणों का काम स्थानीय-गण ही करते हैं। यहां मण्डल-गण नहीं है।

बंगाल में सरकार, स्थानीय-गणों की सदस्य संख्या स्थिर करती है। स्थानीय गण की न्यूनतम सदस्य संख्या ६ है, जिनमें ⅔ निर्वाचित और शेष मनोनीत होते हैं। पहले कहा गया है कि बंगाल में संघ समिति-गण भी हैं। इन गणों के निर्वाचन में मतदान का अधिकार प्राप्त व्यक्ति स्थानीय-गण के निर्वाचन में मतदान का अधिकारी माना गया है।

यूनियन बोर्ड

अविभक्त बंगाल में इस समय समस्त २०४६ संघ समितियां या यूनियन बोर्ड (कई ग्रामों का एक सम्मिलित पंचायत जिसे स्वशासन तथा न्याय विभाग के थोड़े से अधिकार प्रान्तीय सरकार द्वारा दिये गये है, यूनियन बोर्ड कहलाता है।)

मध्यप्रान्त तथा बम्बई प्रान्तोंके ग्राम पंचायत

मध्यप्रान्त ग्राम पचायतों की न्यूनतम सदस्य संख्या ९ तथा अधिकतम १५ है। ग्राम पंचायतों को स्वशासन तथा न्याय संबन्धी कुछ अधिकार दिये गये हैं। बम्बई प्रान्त के पञ्चायतों के सभी सदस्य निर्वाचित होते है। सदस्यों का निर्वाचन बालिग (प्रौढ़) मताधिकार के आधार पर होता है। मुसलमान, हरिजन तथा स्त्रियों के लिये सुरक्षित स्थान हैं। सदस्य संख्या न्यूनतम ७ और अधिकतम ११ होती है। इनका संगठन एक या एकाधिक ग्रामो द्वारा होता है। इनका कार्य-काल ३ वर्ष है।

संयुक्त प्रान्त में ग्राम पंचायत

१९२० ई० के ग्राम पचायत अधिनियम द्वारा सयुक्त प्रान्तमें ग्राम पंचायतों की स्थापना हुई थी। इस अधिनियम के अनुसार कुछ दिवानी और फौजदारी

अधिकार दिये गये थे। पंचों की संख्या ५ से ७ तक रखी गई थी। पंचों की नियुक्ति कलेक्टर द्वारा होती थी। पंचायत दिवानी मामले में २५ रु० तक फौजदारी तथा चोरी में १०) रु० तक तथा मवेशियों के मामले में ५) रु० तक जुर्माना कर सकती थी। १९४७ ईस्वी में सरकार ने नया पंचायत अधिनियम पास किया है। इस अधिनियम के अनुसार प्रायः समूचे प्रान्त में बालिग मताधिकार के आधार पर पंचायतों का संघटन किया गया है। ग्राम सभा के सदस्य ३ वर्ष के लिये निर्वाचित होते हैं। इस सभा को न्याय, शासन तथा ग्रामोत्थान विषयक बहुत से अधिकार दिये गये हैं। ग्राम सभा पंचायती अदालत का निर्वाचन करती है जिसके ५ पंच होते हैं। १९४९ के अन्त तक सारे प्रान्त में पंचायतों के संघटन का काम समाप्त हो जायगा। इससे गावों की सत्ता में वृद्धि होगी। मुकद्दमेबाजी कमेगी। न्याय सुलभ होगा। गाव की आय का एक हिस्सा उनकी उन्नति पर खर्च होगा। गांवों के उद्योग-धन्धो का विकास होगा। तथा छोटे मोटे सरकारी कर्मचारियो का अत्याचार बन्द होगा।

बिहार की ग्राम-पंचायतें

१९२० में सयुक्त प्रान्त की तरह ही बिहार ग्राम पंचायत अधिनियम (एक्ट) पास हुआ था। परन्तु हर बात में कलेक्टर के नियन्त्रण में रहने के कारण इसे कुछ सफलता नहीं मिली। बिहार सरकार ने नया पंचायत अधिनियम पास किया है। आशा है गांवों में पंचायतों की स्थापना हुई है और हो रही है। बिहार के पंचायतों का संघटन प्रायः संयुक्त प्रान्त के पंचायतों के समान ही है। इसके द्वारा जनता में उत्साह तथा आशा का सचार होगा। जनता अपने हितों को पहचान सकेगी। इस प्रकार नागरिकता के विकास के साथ गणतंत्र का विकास हो सकेगा।

अध्याय २१

नगर और ग्राम सम्बन्धी कुछ समस्यायें

नगरों तथा गांवों की स्वशासन संस्थाओं को जिस तरह के काम करने पड़ते हैं उसका वर्णन हम पिछले तीन अध्यायों में कर चुके हैं। इन सस्थाओं का कार्य जितना महत्वपूर्ण है, हम उसका अनुभव ठीक ठीक नही करते। किन्तु वास्तव में हमारी दैनिक जीवन-यात्रा की छोटी-मोटी व्यवस्थाओं का भार इन्ही स्वशासन संस्थाओं पर है। ये हमारे पीने के जल, खाने की वस्तुओ तथा रहने के स्थानों की स्वच्छता तथा उत्तमता की व्यवस्था करती हैं।

हम प्रायः भूल जाते है कि राष्ट्र का भविष्य, वर्तमान काल के शिशुओं पर अवलंबित है। हम देखते है कि आजकल हमारे देश के बच्चे स्वास्थ्य तथा उल्लास का सुयोग नही पाते है। इन्हे न भरपेट पौष्टिक भोजन मिलता है न पहनने के कपडे, फिर शिक्षा की तो बात ही क्या! इन अभावग्रस्त अस्वस्थ तथा अशिक्षित बच्चों के द्वारा स्वस्थ, सबल तथा उन्नतिशील राष्ट्र का निर्माण असभव है। अत. अब वह समय आ गया है जब हमें राष्ट्रोन्नति के लिये नगर तथा ग्राम संबन्धी कुछ समस्यायो पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना है।

नगर-समिति

सभी उन्नतिशील देशो मे राष्ट्र का सबसे बड़ा कर्त्तव्य होता है, प्रजाकी स्वास्थ्य-रक्षा। किन्तु हमारे देश मे नगर इस प्रकार अवस्थित है कि उनमें जनता की रक्षा के लिये विशेष सतर्कतामूलक व्यवस्था करना सभव नही है। नगरों के मार्गों तथा आवास-निवासों की सफाई के लिये विभिन्न प्रकार के यत्न किये जाते है। इसी उद्देश्य से कई नगर समितियो जन-स्वास्थ्य-अधिनियम बना रखे है। इन सब अधिनियमों मे, नाली-नालो का निर्माण, जल की व्यवस्था, खाद्यों तथा औषधियोंकी परीक्षा तथा मूल्य नियत्रण, कूड़ोकी सफाई, और आपत्तिजनक व्यवसायो तथा सक्रामक रोगों का नियत्रण आदि के सम्बन्ध में विधिया बनाई गई है। इनमें मार्ग, बाजार, कसाईखाना, उपवन (पार्क) तथा क्रीड़ागन, (प्ले-ग्राउण्ड) कारखाने (निर्माणियों) आदि की सुव्यवस्था सबन्धी विधिया दी गई हं।

आज अपने देश में सुपरिकल्पित (वेलप्लान्ड) नगरों तथा पत्तनों (बन्दरगाहों) की बड़ी आवश्यकता है। शहरों की स्वास्थ्य-समस्या के साथ ही नगरवासियों के निवास-स्थान की समस्या जुड़ी हुई है। सच तो यह है कि नगरवासियों के स्वास्थ्य की द्रुत-अवनति का सबसे बड़ा कारण वासस्थान का अभाव है।

आवास की समस्या

लोक-आवास की समस्या आज देश की बड़ी समस्या है जिसका स्थान अन्न-समस्या के समान ही महत्वपूर्ण है। देश विभाजन के फलस्वरूप लाखों व्यक्तियों के शरणार्थी रूप में आ जाने के कारण यह समस्या और भी जटिल हो गई है। इससे पहले भी हमारे देशके नगरों में आवास-स्थान की कमी थी। मध्यवर्ग तथा गरीबवर्ग के लोगों को एक उपयुक्त स्वास्थ्यकर वासस्थान प्राप्त करने की शक्ति नहीं है। ऐसा कहा जा सकता है कि कलकत्ते के प्रायः दस लाख घरों में जगह की अपेक्षा बहुत अधिक लोग रहते हैं। स्थानाभाव की इस कठिनाई को दूर करने के लिये दस लाख नये भवन बनने चाहिये। इस विषय में बम्बई की अवस्था और भी खराब है। स्वास्थ्य-सबन्धी सभी नियम-कानूनों को ताक पर रखकर घरों में लोग ठुसे पड़े हैं। नागपुर, अहमदाबाद, कानपुर आदि औद्योगिक नगरों की अवस्था भी कुछ अच्छी नहीं है।

औद्योगिक क्षेत्रों में प्रायः श्रमिक तथा अल्पवित्त श्रेणी के लोग कच्ची बस्तियों में रहते हैं। इन बस्तियों की गन्दगी तथा दुरवस्था वर्णनातीत है। यह मनुष्यता का कलंक है। यहां के छोटे छोटे घरों में हवा तथा प्रकाश का अभाव रहता है। खुली, सँड़ाध से भरी नालियों की सफाई कभी नहीं की जाती है। पानी का प्रबन्ध तो और भी अपर्याप्त है। प्रायः सड़कों पर दूर-दूर में पानी का नल रहता है जिनमें से अनेक घरों को पानी लेना पड़ता है।

इन सारी बुराइयों को हटाने के लिये अपने देश में सुपरिकल्पित नगरों की आवश्यकता है। अन्यथा जन स्वास्थ्य की उन्नति नहीं हो सकेगी।

नगर परिकल्पना (सिटि प्लानिंग)

नगरों में लोकावास तथा जनस्वास्थ्य संबन्धी समस्याओं का समाधान नगर परिकल्पना (प्लानिंग आव द सिटि) के द्वारा हो सकती है। जब कोई नगर

बढ़ रहा हो उस समय यदि नगर-समिति सुचिन्तित परिकल्पना प्रस्तुत कर उप-नगर बसावें तो प्रचुर मात्रा में रोशनीवाले हवादार भवन बनाये जा सकते हैं। इतना ही नहीं, व्यापारिक क्षेत्रों तथा आवास क्षेत्रों को अलग रखकर जगह-जगह उपवन, खुला मैदान (क्रीड़ांगन) आदि की व्यवस्था द्वारा सम्पूर्ण नगर सुन्दरता से सजाया जा सकता है। स्वास्थ्य के ऊपर ध्यान देना अत्यावश्यक है। "हमें यथा-संभव रोगों का निवारण करना चाहिये, मनुष्यों की आयुवृद्धि का प्रयत्न करना चाहिये, मनुष्यों के जीवन को अधिक सुखी तथा अधिक कार्यक्षम बनाने का यत्न करना चाहिये।" आवास-निवास के सम्बन्ध में हमें ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक परिवार को कुछ न्यूनतम सुख की सुविधायें प्राप्त करने का जन्मसिद्ध अधिकार है।"

हर स्वास्थ्य-अधिकारी (हेल्थ आफिसर) का कर्तव्य है कि वह अपने क्षेत्रों में अन्न तथा जल पर सतर्क दृष्टि रखे। इतना ही नहीं, बल्कि कूड़ों की सफाई, हैजा, यक्ष्मा, चेचक, टाइफाइड, यौन-व्याधि आदि सक्रामक रोगों को रोकना तथा इन रोगों से पीड़ितों की चिकित्सा करना भी स्वास्थ्य-अधिकारी का अन्यतम कर्तव्य है। थोड़े दिनों में हमारे देश के स्वास्थ्य-अधिकारियों का ध्यान प्रसूति-कल्याण तथा शिशु-कल्याण की ओर गया है। प्रत्येक नगर समिति जनजीवन की उन्नति के इन सभी कार्यों का उत्तरदायित्व पूण ढंग से निबाह करें; इसके लिये पर्याप्त जन आन्दोलन की आवश्यकता है। हर्ष का विषय है देश की बहुत सी नगर समितिया माताओं के कल्याणार्थ, जो कि राष्ट्र का वास्तविक कल्याण कार्य है, प्रयत्नशील है।

नगर की उन्नति

कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली आदि प्रमुख नगरों में नगर की उन्नति के लिये एक-एक सिटि इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट का सघटन हुआ है। पुराने नगरो को सुधार कर नया नये ढग का नगर बनाने का कार्य बड़ी तेजी से चल रहा है। इसके साथ नये बसनेवाले नगरों के लिये, स्वास्थ्य सौन्दर्य दोनों को दृष्टिगत रखकर परिकल्पनायें प्रस्तुत की जाती है।

कलकत्ता इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट

कलकत्ता महानगर की उन्नति के लिये, नगर विस्तार को बढ़ाकर अधिक जनाक्रांत भाग की जनसंख्या कम करने के लिये, नये राजमार्गों (सड़कों) के निर्माण के लिये तथा उपवन, उद्यान, क्रीड़ांगन आदि के निर्माण के द्वारा नगर के सौन्दर्य एवं जन-स्वास्थ्य की उन्नति के लिये १९१२ ई० में विधि बनाकर कलकत्ता इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट (उन्नति-प्रन्यास) का संघटन किया गया था। बम्बई में इससे पहले ही ट्रस्ट स्थापित हुआ था। पुराने भवनों को तोड़कर नये भवनों के निर्माण कराने का अधिकार ट्रस्ट को दिया गया है। ट्रस्ट गरीब तथा मजदूर वर्ग के लोगों को सस्ते किराये में रहने देने के लिये, प्रन्यास भवनों का निर्माण कर सकता है। प्रन्यास, कच्ची बस्तियों के सुधार के साथ-साथ मजदूर श्रेणी के लिये घरों का निर्माण भी कर रहा है।

बम्बई इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट

बम्बई इम्प्रूवमेन्ट ट्रस्ट (उन्नति-प्रन्यास) अधिक प्राचीन है। बम्बई तट की बालुका राशि के कारण ट्रस्ट को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। अब तो वहां के तटों पर समुद्रगर्भ से भूमि का उद्धार किया गया है। फल स्वरूप बम्बई पूर्वीय देशों का सबसे सुन्दर नगर बनाने का प्रयत्न चल रहा है। १९३३ ई० में बम्बई इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट को वहां के कार्पोरेशन में सम्मिलित कर दिया गया है।

नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट

नागपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने भी नगर की उन्नति में विशेष योगदान किया है। एक उन्नतिशील प्रान्त की राजधानी होने के कारण बड़ी उन्नति हो रही है तथा नये-नये उद्योग-धंधों का विकास हो रहा है। अतः औद्योगिक नगर की आवश्यकता को लक्ष्य में रखकर ट्रस्ट नगरोन्नति के कार्य में बहुत प्रयत्न कर रहा है।

पोर्ट ट्रस्ट (पत्तन प्रन्यास)

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास आदि भारतीय पत्तनों (बन्दरगाहों) की सु-व्यवस्था के लिये एक-एक पोर्टट्रस्ट है। शासकीय प्रतिनिधि, योरोपीय वाणिज्य

प्रतिनिधि, भारतीय वाणिज्य मण्डल के प्रतिनिधि तथा स्थानीय कार्पोरेशन या नगर-समिति के प्रतिनिधि तथा पोर्ट से सम्पर्कित रेलवे के प्रतिनिधियों को लेकर पोर्टट्रस्ट का सघटन होता है।

पोर्ट ट्रस्ट के काम हैः—पत्तन का कार्य सचालन (माल जहाजों पर चढ़ाना, उतारना आदि) बाहर जानेवाले तथा बाहर से आनेवाले जहाजो (पोतों) को सुविधा प्रदान करना तथा वाणिज्य वस्तुओ तथा अन्य वस्तुओं के लिये गोदामों की व्यवस्था करना। जहाजो (पोतो) तथा गोदामों के भाड़े (भाटक) से पोर्ट-ट्रस्ट को प्रचुर आय होती है।

खाद्य प्रदाय (फूड सप्लाई)

नगरो मे पर्याप्त मात्रा में अन्न पहुँचाना अन्न की परीक्षा द्वारा उसकी विशुद्धता का निश्चय करना नगर-समितियों का प्रमुख कर्त्तव्य है।

दुग्ध-प्रदाय

हमारे देश के नगरों मे खासकर बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, नागपुर, पटना, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ आदि बडे नगरो में दुग्ध (मिल्क सप्लाय) की समस्या बहुत जटिल रूप धारण कर रही है। इन नगरो में शुद्ध दूध तो दुष्प्राप्य *सा हो गया है। जो दूध मिलता है वह रोगाणुओं से पूर्ण तथा अत्यन्त अस्वास्थकर* होता है। अतएव नगर समितियोको ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे सस्ते दाम में प्रचुर दूध मिल सके।

घी और तेल

दूध के सम्बन्ध में जो बातें कही गई हैं, अन्य भोज्य वस्तुओ, विशेषकर घी तथा तेल के सम्बन्ध में वे ही बातें कही जा सकती हैं। अमिश्रित तेल या घी बाजारो मे अप्राप्य है। ये वस्तुये लोक-आहार के आवश्यक अग हैं। इनकी अशुद्धि का फल हमारे लोक-जीवन को रोगी बना रहा है। इसके चलते अतिसार, आव तथा यक्ष्मा आदि बीमारियों का प्रसार बढ रहा है।

अन्य वस्तुयें

उपरोक्त वस्तुओं के अतिरिक्त हरी ताजी शाक-भाजी का मिलना अत्यावश्यक है। हमारे देश में बहुत से लोग मांस-मछली भी खाते हैं। उनके लिये ये वस्तुयें आवश्यक अन्न हैं।

ग्राम समस्यायें

गांवों की प्रधान समस्या ये हैं :-पीने के लिये पीने का पानी, नाली-मोरी की सफाई, नहरें निकालना, स्वास्थ्य तथा शिक्षा की उन्नति तथा *ग्रामोद्योग का उत्थान, यातायात की सुविधायें आदि।*

पीने का पानी

हमारे देश के किसी-किसी भाग में जल समस्या बड़ी विकराल है। ऐसे अनेक गाव हैं जहा ग्रीष्मकाल में पीने भर को जल नहीं मिलता। ग्रामीणों को बहुत दूर से पीने का जल लाना पड़ता है।

इसलिये ग्रामीण क्षेत्रों में पीने के जल की व्यवस्था अत्यावश्यक है। तालावों की खुदाई में अधिक व्यय होता है। साथ ही तालावों के जल के दूषित हो जाने का भय हरदम बना रहता है। इसलिये ऐसे स्थानों में नलकूपों (ट्यूबवेल) का निर्माण अधिक सस्ता तथा उपयोगी होता है।

पहले कहा जा चुका है कि हमारे देश की स्वशासन संस्थायें बहुत गरीब हैं। उनके पास धन कम तथा काम बहुत अधिक हैं। यद्यपि वे अपनी सीमित शक्ति से कुछ काम करती हैं तथापि इसमें बहुत अधिक तरक्की की जा सकती है।

ग्रामोद्योग

ग्रामोद्योग के विकास के बिना गावों की उन्नति असभव है। गाव के लोग अधिकतर कृषिजीवि हैं। भूमि का भार बहुत बढ गया है। अतः यह आवश्यक है कि दस्तकारी तथा दूसरे उद्योग-धधों का प्रचार किया जाय। इस दिशा में सर्वोदय समाज से बहुतआशा की जाती है। कांग्रेस, समाजवादी तथा दूसरे राजनैतिक दलों को गाव की उन्नति के लिये विशेष रूप से यत्न करना चाहिये।

परिशिष्ट

राज्य की नीति के निर्देशक सिद्धान्त

२२ जनवरी १९४७ ई० के भारतीय विधान सभा ने अपने प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया है कि:-"यह सभा भारत को स्वाधीन सर्वसत्ताधारी प्रजातन्त्रात्मक राज्य घोषित करने के लिये तथा भारत के भावी शासन की परिचालना के लिये एक ऐसा शासन-विधान प्रस्तुत करने का दृढ़ तथा पवित्र सकल्प करती है; जिस (विधान) के द्वारा (१) ब्रिटिश भारत, (२) भारतीय राज्य-सघ, (३) अन्य राज्य, जिन्होने सघ बना कर या स्वतन्त्र इकाई रूप में भारत संघ में योगदान किया है, तथा योगदान करने की इच्छा प्रकट की है, उन सभी को लेकर एक भारत सघ राज्य सघटित किया जायगा; और उल्लिखित सभी तरह के राज्य (स्टेट्स) उनकी वर्तमान सीमा के अनुसार या इस विधान सभा द्वारा निर्धारित सीमा के अनुसार भावी विधान की विधियो के अन्तर्गत रहते हुये अनिर्दिष्ट विषय सम्बन्धी अधिकारो के साथ स्वायत्तशाली शासन (गवर्मेंट) के सभी अधिकारो का उपभोग करेंगे एवं शासन सबन्धी कार्यों का अनुष्ठान कर सकेंगे; केवल भारत-सघ के अधिकार में जो शक्तिया रहेगी, या दी जायेंगी, या इनसे उद्भूत होगी उन शक्तियों का उपभोग नही कर सकेंगे; तथा इस स्वाधीन सर्व सत्ताधारी भारत सघ की तथा सघ के योगदानकारी राज्यों की समस्त शक्ति का उत्स भारत का जन साधारण (आम जनता) होगा; एव जिस (विधान) के द्वारा भारत सघ के सभी स्त्री-पुरुष सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों में न्यायका, और मर्यादा तथा सुयोग के विषय में समता का उपभोग करेंगे; तथा विधान के प्रावधानों के अन्तर्गत रहते हुए प्रत्येक स्त्री-पुरुष को आजीविका, अभिव्यक्ति, विचार, विश्वास धर्म और उपासना की स्वाधीनता का उपभोग करेगा; तथा जिस (विधान)के द्वारा अल्प सख्यकों, अनुन्नत अनुसूचित जातियों, तथा पददलित जातियो (हरिजनों) की स्वार्थ रक्षा के लिये यथेष्ट सरक्षण की व्यवस्था की जायगी; तथा जिस (विधान) के द्वारा, सभी सभ्य देशों द्वारा स्वीकृत अन्तर्राष्ट्रीय विधान के अन्तर्गत रहते

हुए, भारत संघ के क्षेत्रान्तर्गत प्रदेशों की भौगोलिक अखण्डता और उनके सार्व-भौम अधिकारों की रक्षा की जायगी; तथा जिस (विधान) के द्वारा यह प्राचीन महादेश पृथ्वी पर अपने गौरव के अनुरूप पद प्राप्त कर सकेगा तथा विश्व शान्ति और मानवता के कल्याण कार्यों में स्वेच्छापूर्वक सहयोग कर सकेगा।

भारतीय नागरिकों के मूलाधिकार

भारत संघ के प्रत्येक नागरिकों के लिये सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में न्यायसंगत समानाधिकार को लक्ष्य मानकर भारत के विधान की रचना की गई है।

राजनैतिक अधिकार

राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, प्रजाति, जाति, वर्ण तथा लिंग (सेक्स) अथवा इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।

सब नागरिकों को अधिकार होगा—

(क) भाषण और अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का;

(ख) शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का,

(ग) पार्षद् (एसोसियेशन) अथवा संघ (यूनियन) बनाने का;

(घ) भारत के समस्त राज्यक्षेत्र में अबाध पर्यटन का,

(ड.) भारत के राज्यक्षेत्र के किसी भी भाग में निवास करने तथा बस जाने का;

(च) संपत्ति की प्राप्ति रक्षा तथा वितरण का;

(छ) कोई व्यवसाय वृत्ति और वाणिज्य अथवा व्यापार का।

धार्मिक अधिकार

लोक व्यवस्था, शील तथा स्वास्थ्य के नियमों का पालन करते हुए प्रत्येक नागरिक को धर्मविश्वास स्वातंत्र्य तथा किसी भी धर्म को मानने तथा प्रचार करने का समान अधिकार होगा।

प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय अथवा उसके किसी विभाग को—

(क) धार्मिक और परोपकारी कार्यों के लिये संस्थाओं के स्थापन तथा संधारण का;

(ख) अपने धार्मिक कार्यों सम्बन्धी विषयों के प्रबन्ध का;
(ग) चल और अचल संपत्ति की प्राप्ति तथा स्वामित्व का; अधिकार होगा।

सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार

(१) भारत के किसी भाग के निवासी नागरिकों को, जिनकी अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति है, इनके समारक्षण का अधिकार होगा।

(२) धर्म, समुदाय या भाषा के आधार पर किसी भी अल्पसंख्यक वर्ग के विरुद्ध सरकारी शैक्षिक संस्था में विभेद का व्यवहार नहीं किया जायगा। अवैध रीति से कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायगा।

भारत पृथ्वी के प्राचीनतम राष्ट्रों में से एक है। विभिन्न देशों के साथ इसका सम्बन्ध हजारों वर्ष पहले से था।

१५ अगस्त १९४९ ई० को स्वाधीन भारत राज्य के वय के दो वर्ष पूरे हुए। इस अल्पकाल में ही भारत ने विश्व के विभिन्न देशों के साथ मैत्री पूर्ण सबन्ध की स्थापना कर ली है।

भारत की वैदेशिक नीति

भारत सभी देशों की स्वाधीनता तथा समानाधिकार का पक्षपाती है। इस थोड़े समय में ही भारत ने एशिया, योरोप तथा अमेरीका के विभिन्न राष्ट्रों से मित्रता स्थापित की है।

२६ जनवरी १९५० को भारत विश्व के सभी स्वाधीन देशों के समान समस्त सत्ताधारी साधारण तंत्र राज हो गया है।

———